श्रीकृष्णचरितामृत

(जन जन की भाषा में)

राजेन्द्र कुमार गुप्ता

श्रीकृष्णचरितामृत

जन जन की भाषा में

“हरे राम, हरे राम, राम-राम, हरे, हरे,
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे, हरे”

‘श्रीकृष्णचरितामृत’ जन जन की भाषा में भगवान की श्रीकृष्ण अवतार में की गई लीलाओं का काव्यात्मक प्रस्तुतिकरण करने का एक प्रयास है । भगवान के श्रीराम अवतार में की गई लीलाओं का वर्णन तो श्रीरामचरितमानस ने घर-घर में पहुँचाने और उसे लोकप्रिय बनाने में बहुत सफलता प्राप्त की, लेकिन भगवान श्रीकृष्ण को जन-साधारण श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेशक के रूप में ही अधिक जानते हैं । श्रीमद्भागवतमहापुराण के दशम स्कन्ध में भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है, लेकिन उसे उतनी लोकप्रियता नहीं मिली । श्रीकृष्णचरितामृत भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं और उनके जीवन की मुख्य घटनाओं को जन-जन तक उन्हीं की भाषा में पहुँचाने का एक प्रयत्न है ।

भगवान श्रीकृष्ण का अवतार द्वापर युग के लगभग अन्त में हुआ था और वे लगभग एक सौ पच्चीस वर्ष इस मृत्यलोक में लीलारत रहे । घोर विपरीत परिस्थितियों में बन्दी माता-पिता के यहाँ जन्म लेकर उन्होंने अपने बाल्यकाल के 10-11 वर्ष गोकुल-वृन्दावन में अपने जन्म देने वाले माता-पिता से दूर नन्दबाबा और यशोदा मैया की वात्सल्यमय छत्रछाया में बिताए । इस अवधि में उन्होंने कंस द्वारा प्रेरित कई असुरों का उद्धार किया और गोकुलवासियों की अनेक संकटों से रक्षा की । यहाँ तक की इन्द्र द्वारा कुपित होने पर ब्रजवासियों को प्रलयंकारी वर्षा से बचाने के लिए गिरिराज पर्वत को सात दिनों तक एक ऊँगली पर उठा रखा ।

ग्यारहवें वर्ष में राजनीतिक जीवन में प्रवेश कर श्रीकृष ने अतातायी कंस का वध कर अपने स्वजनों को उसके अत्याचार से मुक्त कराया । उनके चरित्र में जीवन के सभी लौकिक और अलौकिक रंगों की सर्वोपरि उत्कृष्टता देखने को मिलती है । सत्रह बार प्रबल शत्रु जरासन्ध को हराने के पश्चात भी अठारहवीं बार प्रजा की भलाई को ध्यान में रख, वे मथुरा को छोड़ एक नई नगरी द्वारका बना उसमें रहने में संकोच नहीं करते ना ही जरासन्ध के उन्मूलन के लिए उसके द्वार पर जा युद्ध की भिक्षा माँगने में । अपने गुरु सान्दीपनि और ब्राह्मण के मृत पुत्रों को लौटाने जैसे अद्भुत कर्म भी उनके चरित्र में परिलक्षित होते है । दूसरी ओर अपने निर्धन मित्र सुदामा को बिना उसे अहसास दिलाए अतुल सम्पदा दे उसका मान रखते हैं । अपने भक्तों को दिव्य ज्ञान और भक्ति का उपदेश देने में भी उनकी सिद्धहस्तता जगह-जगह दृष्टिगोचर होती है । युद्धक्षेत्र में श्रीमदगवद्गीता का उपदेश तो दर्शनशास्त्र और भक्ति का एक अलौकिक ग्रन्थ है ही ।

इस रचना में जगह-जगह देवताओं और अन्यों ने श्रीकृष्ण भगवान की स्तुति की है जो मेरे विचार से शास्त्रों का सार और भक्तिसुत्रों का निचोड़ है । भक्त-हृदयों को यह रुचिकर लगेंगी, ऐसा मेरा मानना है ।

इस कार्य का शुभारम्भ अनायास ही श्रीकृष्ण जन्माष्टमी 30 अगस्त 2021 को भगवद प्रेरणा से ही हुआ और लगभग ढाई महीनों में पूर्ण हुआ, जिसके लिए यह दास श्रीगुरुचरणों में कोटिश-कोटिश

प्रणाम निवेदन करता है । इस कार्य में जो कुछ भी त्रुटी रह गयी हो, वह मेरी अपात्रता के कारण, जिसके लिये मैं विज्ञ पाठकों से क्षमाप्रार्थी हूँ । मैं उन्हें वेब-साईट www.sufisaints.net देखने और अपने सुझाव 9899666200/011-22718010 और rkgupta51@yahoo.com पर देने के लिये आमंत्रित भी करता हूँ ।

दासानुदास,
राजेन्द्र कुमार गुप्ता

श्रीकृष्णचरितामृत

भगवान श्रीकृष्ण का अवतरण

अत्याचार बढ़ा जब असुरों का,
और बहुत त्रस्त हो उठी पृथ्वी,
ब्रह्माजी की शरण चली दुखी हो,
पर बात न थी यह उनके वश की ।

पृथ्वी को साथ ले गए प्रभु के पास,
प्रभु बोले, देवता जन्म लें यदुवंश में,
अपनी परम शक्तियों सहित मैं भी,
लूँगा अवतार शीघ्र उसी कुल में ।

महाराज शूरसेन थे मथुरा के राजा,
राजधानी समस्त यदु राजाओं की,
वसुदेव थे महाराज शूरसेन के पुत्र,
और देवकी पत्नी थीं वसुदेव की ।

देवकी से ब्याह रचाकर वसुदेव,
जब जा रहे थे घर वापस अपने,
प्रथानुसार देवकी का भाई कंस[1],
लगा उन दोनों का रथ हाँकने ।

देवकी के पिता महाराज देवक ने,
प्रचुर दहेज़ दिया अपनी पुत्री को,
अनगिनत हाथी, घोड़े, हीरे-मोती,
और सैंकड़ों स्वर्णजड़ित रथों को ।

गाजे-बाजे और धूम-धाम से,
चले जा रहे थे जब वो मथुरा को,
तभी घटी एक घटना विचित्र,
एक आकाशवाणी सुनाई दी उनको ।

हे कंस ! कितना मूर्ख है तू,
हाँक रहा है तू रथ जिसका,
इसी देवकी की आठवी संतान,
उसके हाथों ही वध होगा तेरा ।

सभी भोजवंशीय राजाओं में से,
सर्वाधिक आसुरी प्रवृति का था कंस,
तुरन्त देवकी के केश पकड़,
उसके वध को उद्दत हुआ कंस ।

किसी तरह समझा-बुझाकर,
मनाना चाहा वसुदेव ने उसे,
कहा, मृत्यु तो सबको आनी है,
शोभा नहीं देता ऐसा करना उसे ।

रक्षा करनी चाहिए उसे बहन की,
उससे द्वेष करने से अपयश होगा,
लोक और परलोक दोनों बिगड़ेंगे,
बहन के वध का वह दोषी होगा ।

पर प्रबल थी आसुरी वृति कंस की,
कोई प्रभाव समझाने का ना हुआ,
बुद्धिमान व्यक्ति आधा दे देते,
जब देखते वो सब जाता हुआ ।

कहा वसुदेव ने हे कंस ! सुनो,
अभी तुम्हें देवकी से खतरा नहीं,
कौन जाने उसे पुत्र हो, ना हो,
गर होंगे, तुम्हें सौंप दूँगा मैं सभी ।

आश्वस्त हुआ कंस यह सुनकर,
वसुदेव के वचन पर था विशवास,
प्राण बचे किसी तरह देवकी के,
गहन अँधेरे में कुछ दिखा प्रकाश ।

[1] कंस-देवक के भाई महाराज उग्रसेन, मथुरा के राजा, का पुत्र और देवकी का चचेरा भाई ।

यों युक्ति से प्राण बचा देवकी के,
वसुदेव आए देवकी संग घर अपने,
जब जन्मा देवकी को पहला पुत्र,
ले चले वसुदेव उसे कंस को देने ।

हालांकि दुखदायी था यह उनके लिए,
पर वसुदेव अपने वचन के थे पक्के,
दयार्द्र हो आया कंस यह आचरण देख,
सोचा क्या मिलेगा प्रथम पुत्र मार के ?

कहा कंस ने कोई खतरा नहीं है,
मुझे तुम्हारे इस प्रथम पुत्र से,
क्यों इसको मैं व्यर्थ स्वीकार करूँ,
ले जाओ तुम अपने साथ इसे ।

प्रसन्न तो हुए वसुदेव बहुत,
पर विश्वास कंस पर हो न सका,
वश में न था किसी के कंस,
मुश्किल था बात पर रहे टिका ।

फिर नारद ऋषि आये कंस के पास,
उत्सुक थे श्रीकृष्ण जल्दी लें अवतार,
कहा कंस को सावधान रहे वो,
सब कर रहे प्रतीक्षा कब होगा अवतार ?

उसके सगे-सम्बन्धी, वसुदेव, नन्द,
गोकुल के ग्वाले और पिता उसके,
सावधान रहे इन सबसे कंस,
सब देवता जन्में हैं रूप में इनके ।

कंस, उसके मित्र और सलाहकार,
असुर लोग थे ये सब के सब,
देवताओं से सदा भयभीत रहते थे,
इन्हें चोकन्ना कर गए नारद ।

यह जान देवता जन्म ले चुके,
सोचा शीघ्र प्रकट होंगे भगवान भी,
तुरन्त वसुदेव और देवकी को पकड़,
उन दोनों को बना लिया बंदी ।

डाल दिया उन दोनों को कारागार में,
पहना दी गयीं लौहे की सांकलें,
ना जाने कौन हो विष्णु का अवतार,
सो मारता रहा उनकी सब संतानें ।

जन्मता था हर वर्ष पुत्र उन्हें,
जिन्हें तुरन्त मार देता था कंस,
पर देवकी की आठवीं संतान से,
विशेष रूप से भयभीत था कंस ।

नारद की कृपा से हुआ अवगत,
असुर कंस अपने पूर्व जन्म से,
कालनेमि नामक असुर था वह,
विष्णु ने मारा उस जन्म में उसे ।

भोज[2] परिवार में लेकर जन्म,
निश्चय किया था यह उसने,
यदुवंश का घोर शत्रु बनेगा वो,
होगा जन्म श्रीकृष्ण का जिसमें ।

डरता था कंस पूर्व जन्म की भांति,
श्रीकृष्ण के हाथों वध होगा उसका,
बना लिया पिता उग्रसेन को भी बंदी,
यदु, भोज और अंधक वश के राजा ।

वसुदेव के पिता शूरसेन का राज भी,
कर लिया कंस ने अधिकार में अपने,
घोर अत्याचार करना शुरू कर दिया,
स्वयं को राजा घोषित कर उसने ।

अनेक आसुरी राजाओं[3] से कंस ने,
मैत्री सम्बन्ध कर लिए स्थापित,
जरासंध के संरक्ष्ण में उसने,
शक्तिशाली राज्य कर लिया सुगठित ।

---

[2] भोजवंश-उग्रसेन और शूरसेन दोनों ही महाराज चित्ररथ के वंशज थे जो सात्वत के वंशज थे । इन्ही सात्वत के एक पुत्र महाभोज के वंश में भोजवंशी यादव हुए ।

[3] आसुरी राजा-प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अधासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी और धेनुक ।

बाणासुर और भौमासुर राजाओं से भी,
कर ली प्रगाढ़ मित्रता कंस ने,
बन गया अत्यंत प्रबल राजा वह,
यदु वंश से शत्रुता लगा बरतने ।

भगवान का गर्भ में प्रवेश

कंस द्वारा सताए जाने के कारण,
यदु, भोज, अंधक वंशी राजाओं ने,
ले ली शरण अन्य राजाओं की,
कुरु, पंचाल, शाल्व आदि थे इनमें ।

वसुदेव और देवकी के छः पुत्रों की,
एक-एक कर हत्या कर दी कंस ने,
सातवीं बार प्रकट हुआ प्रभु का,
'अनन्त[4]' नामक अंश देवकी के गर्भ में ।

भगवान विष्णु ने आश्रय लिया गर्भ में,
यह जान हर्ष था माता देवकी को,
लेकिन साथ में विषाद भी था,
जन्म लेते ही मार देगा कंस उसको ।

वसुदेव की एक पत्नी रोहिणी,
निवास कर रही थीं वृन्दावन में,
राजा नन्द और रानी यशोदा के घर,
रखा हुआ था उन्हें वसुदेव ने ।

तब श्रीकृष्ण ने यह आदेश दिया,
अपनी अंतरंगा शक्ति योगमाया को,
कि 'अनन्त' को स्थानान्तरित कर दे,
देवकी से खींच रोहिणी के गर्भ में वो ।

और कहा वृन्दावन में हो वो अवतरित,
नन्द और यशोदा की पुत्री के रूप में,
लोग करेंगे बहुविधि पूजा क्योंकि,
समर्थ होंगी वो मुँहमाँगा वर देने में ।

बलपूर्वक स्थानान्तरण के कारण,
'संकर्षण' नाम से 'शेष' जाएँगे जाने,
बल और आनन्द का सोत्र होने से,
प्रसिद्द होंगे वो 'बलराम' नाम से ।

समस्त लोकों को किए रहती धारण,
'अनन्त' या 'शेष' उस शक्ति का नाम,
वो ही वसुदेव-पत्नी देवकी और रोहिणी,
दोनों माताओं के पुत्र होंगे बलराम ।

देवकी से रोहिणी में अनन्त को,
जब स्थानान्तरित किया जा रहा था,
दोनों योगनिद्रा में लीन हो गयीं,
किसी ने कुछ जाना ना समझा ।

लोगों ने सोच लिया कि देवकी का,
सातवाँ गर्भ विनष्ट हो गया,
उधर रोहिणी से जन्मने के कारण,
उनका पुत्र बलराम को कहा गया ।

तब श्रीकृष्ण ने वसुदेव के मन में,
प्रवेश किया सृष्टि के स्वामी के रूप में,
और फिर उनके मन से वह भव्य रूप,
स्थानान्तरित हुआ देवकी के हृदय में ।

जैसे अस्त होते सूर्य की किरणें,
लक्षित होतीं उदित होते चन्द्र में,
उसी तरह सारी सृष्टि के कारण,
प्रकटे श्रीकृष्ण स्वयं देवकी में ।

जहाँ-जहाँ प्रकट होते हैं स्वयं श्रीकृष्ण,
उनके सब पूर्ण अंश भी प्रकट होते,
देवकी क्योंकि कारागार में बंद थीं,
लोगों को दिव्य चिन्ह लक्षित नहीं होते ।

[4] अनन्त- अनन्त या श्रीशेषजी । रामावतार में वे श्रीराम के छोटे भाई बने थे लेकिन कृष्णावतार में वे बड़े भाई के रूप में अवतरित हुए ।

लेकिन कंस ताड़ गया इस बात को,
कि भगवन प्रविष्ट हुए उसके गर्भ में,
इसके पहले कभी प्रकटी नहीं थी,
ऐसी अलौकिक दिव्यता बहन देवकी में ।

होने लगा विचलित कंस यह देख,
उसके वध के बानक सजने लगे,
सोचने लगा क्या करे देवकी का,
किस तरह से यह भारी विपदा टले ।

यदि करता है वह देवकी का वध,
तो उसकी ख्याति को दाग लगेगा,
बहन, स्त्री, गर्भवती और क़ैद में,
सब तरह उस पर कलंक लगेगा ।

अत्यंत क्रूर कर्म जो जीवन में करता,
जीते-जी वो मरा हुआ सा हो रहता,
मरने के बाद लोग कोसते उसे,
और घोर गहनतम नरक उसे मिलता ।

सो जीवित रहने दिया देवकी को उसने,
और प्रतीक्षा करने लगा अपरिहार्य की,
पर मन भर गया घोर शत्रुता से,
बाट जोहने लगा शिशु-जन्म की ।

सोच रहा था जन्म होते ही,
वध कर देगा वह नवजात शिशु का,
लेकिन इस तरह हर घड़ी कंस,
करने लगा था स्मरण प्रभु का ।

श्रीभगवान को गर्भ में स्थित जान,
ब्रह्मा, शिव, नारद आदि पधारे,
करने लगे वो स्तुति भगवान की,
जिन्होंने भक्तों के सब काज सँवारे ।

अपने प्रण के सच्चे भगवान्,
करते अपने भक्तों का कल्याण,
दुष्टों का संहार करते हैं वो,
और भक्तों के कष्टों का परित्राण ।

'सत्यम परम' कह किया सम्बोधित,
सब देवों ने भगवान श्रीकृष्ण को,
बल, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि के सोत्र,
और सब कारण के कारण हैं जो ।

कहा, संसार है एक सनातन वृक्ष,
जिसका आधार हैं हे प्रभु ! आप,
प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता,
सारी सृष्टि के कर्ता-धर्ता हैं आप ।

दुष्कर है आपका शाश्वत रूप समझना,
सामान्यजनों की समझ से बाहर,
अवतार किसी तरह समझे जा सकते,
पर कृष्णरूप आपका समझ से बाहर ।

आपका यह रूप मोहता भक्तों को,
पर भयकारक यह असुरों के लिए,
आपके चरण-कमल आनन्द का सोत्र,
और मुक्तिदायक, भक्तों के लिए ।

हे कमलनयन ! भक्ति से शून्य,
वो ज्ञानाभिमानी नीचे गिर सकते,
पर आपके भक्त, आपके निज-जन,
चरणों की शरण पा, कभी न गिरते ।

हे प्रभु ! आपका दिव्य कृष्ण रूप,
है सब भौतिक उपमाओं से परे,
हे सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण ! आप हैं,
प्रकृति के तीनों गुणों से परे ।

लेते जब अलग-अलग अवतार आप,
जाने जाते अलग-अलग नाम से,
अपनी लीलाओं और रूपों के अनुसार,
आकर्षक होने से, श्रीकृष्ण नाम से ।

ढके रहता योगमाया का आवरण,
सो अभक्त आपको समझ नहीं सकते,
आपका नाम और रूप अभिन्न है,
श्रवण, स्मरण मात्र मुक्त कर देते ।

आप अजन्मा पर अवतार लेते हैं,
भक्तों के लिए लीला करने को,
सर्वश्रेष्ठ यदुवंश में प्रकट हो रहे,
प्रणाम करते हम हे प्रभु ! आपको ।

फिर कहा, हे माता देवकी ! आपको,
कंस कोई हानि पहुँचा नहीं सकता,
स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो रहे,
पूर्ण अंश बलराम रूप ले बड़े भाई का ।

भगवान श्रीकृष्ण का जन्म

स्तुति कर लौट गए देवता गण,
और जब प्राकट्य का समय आया,
सब ग्रह शुभ स्थिति में आ गए,
रोहिणी नक्षत्र प्रबल हो आया ।

मंगलमय हो उठा सारा वातावरण,
सब चराचर में उत्साह छा गया,
मन्द, सुगन्धित, शीतल हुई हवा,
संतों के हृदय में उल्लास छा गया ।

फूल बरसने लगे गगन से,
और फिर बादल लगे गरजने,
उपस्थित हुआ जब ऐसा संयोग,
भगवन् प्रकट हुए माता के गर्भ से ।

हालांकि वो तिथि अष्टमी की थी,
पर ऐसे दिख रहे थे भगवान्,
पूर्व दिशा में सोलहों कला सहित,
ज्यों पूर्ण चंद्र हुआ हो उदयमान ।

वसुदेव ने देखा उनके सामने,
खड़ा हुआ है एक अद्भुत बालक,
कमल नयन और चार भुजाओं वाला,
शंख, चक्र, गदा और पदम् लिए बालक ।

वक्ष: स्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह,
कौस्तुभमणि धारण किए गले में,
सजल घन जैसा श्यामल शरीर,
वैदूर्यमणि के किरीट, कुण्डल कानों में ।

पीताम्बर धारी, कमर में करधनी,
बाँहों में बाजूबंद, कंकण कलाइयों में,
अंग-अंग से छिटकती अनोखी छटा,
स्वयं भगवान देखे उन्होंने पुत्र रूप में ।

आश्चर्य हुआ, फिर खिल उठी आँखें,
रोम-रोम परमानन्द में मग्न हो गया,
जाता रहा सब भय उनके हृदय से,
हाथ जोड़ चरणों में सिर नवा दिया ।

करने लगे वसुदेव स्तुति उनकी,
और उनके दिव्य गुणों का गुणगान,
सृष्टिकर्ता, अन्तर्यामी, आत्मस्वरूप,
लघु से लघु, महानतम से भी महान ।

न आप में भीतर है, न बाहर है,
अनुप्रविष्ट लगते, पर पृथक सबसे,
क्रियाओं, गुणों, विकारों से रहित,
फिर भी सृष्टि, स्थिति, प्रलय आपसे ।

त्रिलोकी की रक्षा हेतु अपनी माया से,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप करते स्वीकार,
आप सर्वशक्तिमान, सबके स्वामी है,
जगत उद्धार हेतु लिया आपने अवतार ।

बहुत बलशाली हो चले हैं असुर,
बड़ी-बड़ी सेनाएं हैं उनके पास,
आप उन सबका संहार करेंगे,
मेरे मन में है यह विश्वास ।

यह कंस बड़ा ही दुष्ट हो रहा,
मार डाला आपके बड़े भाईयों को,
अभी उसके दूत उसे देंगे ये सूचना,
दौड़ता चला आएगा मारने वो आपको ।

उधर देवकी ने देखा मेरे पुत्र में,
हैं सभी पुरुषोतम भगवान के लक्षण,
पहले तो उन्हें कुछ भय सा लगा,
फिर उनका चित्त शांत हो गया तत्क्षण ।

करने लगीं वो मुस्कुराकर स्तुति,
कहा, वेदों में वर्णित विष्णु हैं आप,
सब सृष्टि के लय हो जाने पर भी,
एकमात्र शेष रह जाते हैं आप ।

अनेक विभागों में विभक्त काल,
जिसकी चेष्टा से विश्व सचेष्ट हो रहा,
वह बस आपकी एक लीला मात्र है,
आपसे सारा जगत आश्रय पा रहा ।

हो रहा है यह जीव मृत्युग्रस्त,
भयभीत हो भटका अनेक लोको में,
कहीं भी निर्भीक हो रह न सका,
अब शरण मिली इसे श्रीचरणों में ।

हे प्रभो ! आप हैं भक्त भयहारी,
रक्षा कीजिए हमारी दुष्ट कंस से,
उसको यह बात मालूम न हो,
कि आपने जन्म लिया मेरे गर्भ से ।

हे विश्वात्मन् ! आपका अलौकिक रूप,
छिपा लीजिए इसे दुनिया की नजर से,
यह आपकी अद्भुत लीला नहीं तो क्या,
कि परमपुरुष परमात्मा मेरे गर्भ में बसे ।

भगवान ने कहा, स्वायम्भुव मन्वन्तर में,
जब तुम्हारा पहला जन्म हुआ था,
तुम पृश्नि, वसुदेव सुतपा प्रजापति थे,
तुम दोनों का हृदय बड़ा शुद्ध था ।

ब्रह्माजी ने आज्ञा दी सन्तान के लिए,
तब तुम दोनों ने बड़ी घोर तपस्या की,
अराधना की मेरी अभीष्ट वर पाने को,
मुझसा पुत्र पाने की तुमने इच्छा की ।

पर मुझसा कोई दूसरा जगत में नहीं,
सो यह वर हो सकता था पूरा नहीं,
इसलिए तीन बार यह वर फलित किया,
जन्मा तुम्हारे गर्भ से मैं स्वयं ही ।

पहली बार जन्मा पृश्निगर्भ नाम से,
फिर दूसरी बार लिया वामन अवतार,
अब तुम्हारे इस तीसरे जन्म में,
मैंने फिर जन्म लिया है तीसरी बार ।

दिखलाया तुम्हें मैंने अपना यह रूप,
अपने पूर्व अवतारों का स्मरण कराने को,
पुत्रभाव और ब्रह्मभाव रखना मुझमें,
मेरा परम पद प्राप्त होगा तुमको ।

धारण कर लिया फिर शिशु रूप,
तब बाहर निकलना चाहा वसुदेव ने,
उसी समय नन्द और यशोदा के घर,
पुत्री का रूप धरा योगमाया ने ।

बंद थे सब दरवाजे बन्दीगृह के,
मोटी जंजीरे और ताले लगे हुए थे,
पर स्वत: ही खुल गए सब दरवाजे,
जब वसुदेव कृष्ण को लिए निकले ।

धीरे-धीरे गरजकर बरस रहे थे बादल,
शेषजी पीछे चले फनों से जल रोकते,
तेज प्रवाह और बढ़ आई थी यमुना,
पर वसुदेव को मार्ग दे दिया यमुना ने ।

उधर योगमाया के प्रभाव से गोकुल में,
द्वारपाल और पुरवासी सोये हुए थे,
यशोदा की शैय्या से योगमाया को उठा,
कृष्ण को छोड़, वसुदेव बन्दीगृह लौटे ।

नन्दजी और यशोदा को पता न था,
कि पुत्र या पुत्री, क्या हुआ है उन्हें,
एक तो उन्हें बड़ा परिश्रम हुआ था,
दूसरे अचेत किया योगमाया ने उन्हें ।

योगमाया की भविष्यवाणी

जब वसुदेव लौट आए योगमाया को ले,
सब दरवाजे बंद हो गए जैसे पहले थे,
तब नवजात शिशु का रुदन सुन,
द्वारपाल गए कंस के पास दौड़ते ।

कंस तो कर रहा था इसी की प्रतीक्षा,
तुरन्त दौड़ पड़ा वो मारने शिशु को,
कंस को देख देवकी ने कहा उससे,
छोड़ दो मेरी इस आखिरी संतान को ।

पर सुनी न उसने देवकी की याचना,
छीन लिया कन्या को उसके हाथ से,
पैर पकड़ जोर से चट्टान पर मारा,
पर वह छिटक गयी उसके हाथ से ।

तुरन्त आकाश में चली गयी वह,
और दिखी आयुध लिए आठ हाथों में,
दिव्य माला, वस्त्र आदि से विभूषित,
सिद्ध, चारण आदि लगे स्तुति करने में ।

कहा देवी ने, ऐ मूर्ख कंस ! सुन,
क्या मिलेगा मुझे मारने से तुझे,
तेरा मारनेवाला तो जन्म ले चुका,
और अन्तर्धान हो गयी वो वहाँ से ।

बहुत आश्चर्य हुआ कंस को यह सुन,
किया तुरन्त देवकी-वसुदेव को आज़ाद,
कहने लगा बहुत बड़ा पापी हूँ मैंने,
अन्याय किया अपने हितैषियों के साथ ।

यह प्रभाव था देवकी-वसुदेव का,
साक्षात दर्शन हुआ जिन्हें श्रीकृष्ण का,
खड़ा हुआ था कंस उनके सम्मुख,
सो मन उसका तब बदल गया था ।

करने लगा वह ज्ञान की बातें,
अनेक तरह समझाया उन दोनों को,
अपने स्वरूप को न जानने से जीव,
समझता मरने-मारने वाला अपने को ।

कहा, केवल मनुष्य ही नहीं झूठे,
वरन् झूठ बोलते हैं विधाता भी,
अब तुम दोनों मुझे क्षमा करो,
और चरणों में गिर माँगी माफ़ी ।

महल में लौट अगले दिन उसने,
करी मंत्रणा अपने मन्त्रियों के साथ,
कही उन्होंने सभी नवजात शिशुओं की,
ढूंढ-ढूंढकर हत्या करने की बात ।

करी प्रशंसा अनेक तरह कंस की,
कहा, कैसे देवता भय खाते उससे,
फिर भी उनकी उपेक्षा ठीक नहीं,
क्योंकि हैं तो वे शत्रु ही, सदा से ।

उचित नहीं शत्रु और रोग की उपेक्षा,
समाप्त कर देना चाहिए उन्हें जड़ से,
क्योंकि शत्रु जब अपना पाँव जमा ले,
कठिन हो जाता है तब जीतना उसे ।

देवताओं की जड़ है स्वयं विष्णु,
वो रहता है जहाँ सनातनधर्म रहता,
वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या और यज्ञ,
सनातनधर्म है इन स्तम्भों पर टिका ।

सो हे भोजराज ! यदि आप आज्ञा दें,
तो नाश कर दें हम इन सबका,
इनकी जड़ पूर्णतया नष्ट हो जाने से,
किसी तरह की रहेगी न कोई शंका ।

गोकुल में जन्म महोत्सव

उधर नन्दबाबा ने आनन्दित हो,
जातकर्म-संस्कार करवाया पुत्र का,
विधि-विधान सहित किया दान-पुण्य,
सारे ब्रजमण्डल में आनन्द छा गया ।

सारी गोपियाँ भी सज-धजकर,
भेंटे ले यशोदा से मिलने चलीं,
आशीर्वाद दिए नवजात शिशु को,
ऊंचे स्वर में मंगलगान करने लगीं ।

भेंटे-उपहार दिए सबको नन्दबाबा ने,
और सबका यथोचित सत्कार किया,
उसी दिन से नन्दबाबा के ब्रज में,
ऋद्धि-सिद्धियों ने वास कर लिया ।

कुछ दिनों बाद वार्षिक कर चुकाने,
नन्दबाबा कंस की मथुरा को गए,
वसुदेवजी ने पूछी उनकी कुशलता,
फिर वे गोकुल की चिंता करने लगे ।

पूतना उद्धार

पूतना एक भयानक राक्षसी थी,
जिसका काम था बच्चों को मारना,
कंस की आज्ञा से जगह-जगह,
थाह लेने घूमा करती थी पूतना ।

आकाश मार्ग से घूमा करती थी वो,
और इच्छा अनुसार रूप धर लेती,
एक दिन नन्दबाबा के गोकुल में,
घुस गयी बनकर सुन्दर युवती ।

बच्चों को ढूंढती अनायास एक दिन,
घुस गयी वो नन्दबाबा के घर में,
सो रहे थे वहाँ श्रीकृष्ण शैय्या पर,
उठा लिया पूतना ने उन्हें गोद में ।

उसकी सौन्दर्यप्रभा से हतप्रतिभ-सी हो,
रोहिणी-यशोदाजी ने रोका न उसे,
लगा रखा था स्तन पर भयानक विष,
दे दिया उसने कृष्ण के मुख में उसे ।

क्रोध को अपना साथी बना भगवान,
हाथों से स्तनों को दबा दूध पीने लगे,
प्राण पीने लगा उनका साथी क्रोध,
दूध के साथ उसके प्राण निकलने लगे[5] ।

फटने लगे पूतना के मर्मस्थल,
और वो पीड़ा से लगी चिल्लाने,
छिपा न सकी अपना असली रूप,
उसका राक्षसी रूप आगया सामने ।

निकल गए उसके प्राण शरीर से,
मुँह फट गया, बिखर गए बाल,
इन्द्र के वज्र से घायल वृत्रासुर सा,
ऐसा हो गया था पूतना का हाल ।

उसका निष्प्राण शरीर गिरा आकर बाहर,
कुचल डाला छः कोस में लगे वृक्षों को,
ऐसा भयानक और विशाल तन था उसका,
डरा दिया जिसने गोपियों और ग्वालों को ।

खेल रहे थे बालक श्रीकृष्ण छाती पर,
झटपट उठा लिया गोपियों ने उन्हें,
किया उनके अंगों की रक्षा का उपाय,
कहा, देवता अपनी रक्षा में रखें उन्हें ।

[5] प्राण निकलने लगे-बहुत संभव है कि वह भयानक विष त्वचा द्वारा पूतना के शरीर में प्रवेश कर गया हो ।

तभी नन्दबाबा और साथी आ पहुँचे,
आश्चर्यचकित हुए मृत पूतना को देख,
वसुदेवजी की बात स्मरण हो आई,
जैसा कहा उन्होंने वैसा उत्पात देख ।

ब्रजवासियों ने टुकड़े-टुकड़े कर डाले,
और जला दिया पूतना का कलेवर,
अगरकी-सी सुगन्ध निकली उसमें से,
श्रीकृष्ण के स्पर्श का था यह असर ।

सत्पुरुषों को मिलने वाली परमगति,
सहज ही पा गयी पूतना जैसी राक्षसी,
फिर क्यों न भक्तिभाव से जो भजते,
परम पद पाने के हों वो अधिकारी ?

<u>तृणावर्त का उद्धार</u>

शिशु के 'करवट बदलने' के अवसर पर,
भव्य आयोजन किया नन्द-यशोदा ने,
छकड़े के नीचे लेटाए गए थे कृष्ण,
लगे दूध के लिए पाँव पटकने ।

अतिथियों में व्यस्त थीं माता यशोदा,
कृष्ण की ओर ध्यान दे न सकीं,
लोमेश ऋषि के शाप से उबरने,
'उत्कच[6]' ने शरण छकड़े में ली थी ।

कोमल पाँव लगने से कृष्ण का,
छकड़ा टूट-फूटकर नष्ट हो गया,
उलट गया सब दूध-दही उसपर से,
और उत्कच का श्राप मिट गया ।

[6] उत्कच-वह हिरण्याक्ष का पुत्र था जो लोमेश ऋषि के श्राप के कारण देहरहित हो गया था और इस श्राप से उबरने का उपाय था श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श ।

समझ न पाया कोई यह कैसे हुआ,
ग्रह-शान्ति, हवन आदि कराया गया,
गौएँ और दक्षिणा दी ब्राह्मणों को,
बालक को उन्होंने आशीर्वाद दिया ।

एक दिन माता की गोद में कृष्ण,
सहसा बहुत भारी उन्हें लगने लगे,
बैठा दिया माता ने उन्हें जमीं पर,
चकित थीं, कुछ आया न समझ में ।

कंस का एक निजी सेवक था तृणावर्त,
एक दैत्य, जो बवंडर बनकर आया,
उड़ा ले गया कृष्ण को आकाश में,
भयंकर शोर कर सारा गोकुल हिलाया ।

व्याकुल थे सब कृष्ण को न पाकर,
आँधी और धूल से कुछ दिखा नहीं,
जब बवंडर का वेग शांत हो गया,
कृष्ण को खोजा, पर पाया नहीं ।

उधर चट्टान से भारी हुए श्रीकृष्ण ने,
ऐसे पकड़ लिया था गला तृणावर्त का,
कर न सका वह उन्हें अपने से अलग,
निष्प्राण हो उनके साथ ब्रज में गिरा ।

एक-एक अंग उसका चूर-चूर हो गया,
श्रीकृष्ण लटक रहे थे उसके गले से,
सब गोकुलवासी आश्चर्यचकित थे,
बालक बच गया किस के भाग्य से ?

एक दिन माता यशोदा दूध पिलाकर,
देख रही थीं जब कृष्ण की ओर,
तभी श्रीकृष्ण को जँभाई आ गयी,
जो देखा उसका मिला न छोर ।

माँ यशोदा ने देखा उनके मुख में,
सारा ब्रह्माण्ड और चराचर स्थित,
तुरन्त कर लिए अपने नेत्र बंद,
यह दृश्य देख कर हो गयीं चकित ।

नामकरण संस्कार और बाललीला

यदुवंशियों के कुल-पुरोहित श्रीगर्गाचार्यजी,
वसुदेवजी की प्रेरणा से गोकुल आए,
पूजन-सत्कार किया उनका नन्दबाबा ने,
विनती की बालकों का नामकरण करवाएँ ।

वे बोले यदुवंशियों का कुल-पुरोहित हूँ मैं,
कहीं इससे कोई यह लगे न समझने,
कि यह तो देवकी का पुत्र है क्योंकि,
आठवीं संतान होनी थी पुत्र रूप में ।

तब नन्दबाबा के कहने पर उन्होंने,
चुपचाप गौशाला में संस्कार कर दिया,
रोहिणी के पुत्र का रौहिणेय, बलराम,
और संकर्षण भी एक नाम रख दिया ।

साँवले-सलोने छोटे पुत्र को उन्होंने,
कृष्णवर्ण के कारण कृष्ण नाम दिया,
पहले कभी वसुदेव के घर जन्मने से,
'वासुदेव' भी उसको एक नाम दिया ।

बहुत गुण बतलाए उन्होंने कृष्ण के,
और कितने ही नाम बतलाए उनके,
लोगों का परम कल्याण करने वाला,
और दुःख हरने वाला लोगों के ।

भाग्यवान हैं इससे प्रेम करनेवाले,
कोई शत्रु उन्हें जीत नहीं सकता,
गुण, कीर्ति, सौन्दर्य, एश्वर्यादि में,
यह बालक है स्वयं नारायण सा ।

समय पा कुछ बड़े हुए दोनों भाई,
माताएँ बाल-लीला देख होतीं हर्षित,
वात्सल्य प्रेम हृदय में उमड़ आता,
कैसे कोई उसे कर सकता वर्णित ।

चंचल थे बहुत दोनों ही भाई,
तरह-तरह की लीलाएँ करते रहते,
गोपियाँ घर का काम-काज छोड़,
यही सब देखती रहतीं, हँसते-हँसते ।

फिर अनायास ही पैरों चलने लगे दोनों,
हमउम्र ग्वालों संग खेलते ब्रज में,
मन मोह लेतीं उनकी क्रीडाएँ सबका,
गोपियाँ निछावर होतीं मन-ही-मन में ।

ऊपर से तो वो रोष दिखातीं,
पर मन के भीतर होतीं मुदित,
करती थीं उन्हें बरजने का नाटक,
पर नैनों में श्यामल छवि रहती अंकित ।

एक बार सब गोपियाँ मिलकर,
देने लगीं यशोदा मैया को उलाहना,
हमारा माखन, दही सब चुरा लेता है,
बड़ा नटखट हो गया है तुम्हारा कान्हा ।

ग्वालों के संग, पीढ़ों पर चढ़,
फोड़ डालता है मटकी माखन की,
खुद खाता, ग्वालों को खिलाता,
पर पकड़ी नहीं जाती चोरी इसकी ।

इधर गोपियाँ कर रही थीं शिकायत,
उधर कृष्ण खड़े हुए थे मासूम बने,
उनकी इस भोली सूरत को देख,
मैया यशोदा से कुछ कहते न बने ।

एक दिन जब सब ग्वाल-बाल संग,
खेल रह थे कृष्ण और बलराम,
कृष्ण ने खायी है मिटटी, कहने लगे,
यशोदा मैया से, ग्वाले और बलराम ।

पकड़ कृष्ण का हाथ मैया ने,
कहा, तू बहुत ढीठ हो गया,
छिपकर क्यों मिटटी खाई तूने,
देख मुझे ये सब कह रहे हैं क्या ?

नाच रही थी कृष्ण की आँखें डर से,
कहा, ये सब झूठ कह रहे हैं तुझसे,
मेरा मुँह तेरे सामने ही है, मैया,
क्यों नहीं देख लेती अपनी आँखों से ?

खोल दिखाया मुँह, माता के कहने से,
मुँह को देख मैया भर गयीं अचरज से,
चर-अचर, और सारा ब्रह्माण्ड इत्यादि,
सब कुछ दीख पड़ा, छोटे से मुख में ।

आकाश, पर्वत, द्वीप, सागर, ग्रह,
वायु, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि,
चित्त, अहंकार, बुद्धि, देवता, त्रिगुण,
इन्द्रियविषय, और जो कुछ है वो सभी ।

विभिन्न रूपों में दीखनेवाला संसार,
सम्पूर्ण ब्रज और अपनेआप को भी,
देखा कृष्ण के खुले मुख में उन्होंने,
जिससे चकित हो गयी बुद्धि उनकी ।

सोचा संभव है योगसिद्ध हो मेरा पुत्र,
यह सोच, प्रणाम किया जगदीश्वर को,
जिनकी माया से घेरे हुए मुझे कुमति,
ग्रहण करती हूँ मैं उन्हीं की शरण को ।

जैसे ही हुआ उन्हें यह तत्त्व-ज्ञान,
प्रभु ने प्रेरित किया योगमाया को,
मैया वह घटना तुरन्त भूल गयीं,
और उठा लिया गोद में लल्ला को ।

जैसे उमड़ता रहता था प्रेम हृदय में,
मैया के हृदय में फिर उमड़ पड़ा प्रेम,
जिनको वेद-पुराण कहते हैं नेति-नेति,
पुत्र मान मैया उनसे करती है प्रेम ।

पूर्वजन्म में नन्दबाबा एक वसु थे,
यशोदाजी का तब नाम था 'धरा',
दोनों ने ब्रह्माजी से पाया था वर,
सो प्रभु ने उनके पुत्र का रूप धरा ।

श्रीकृष्ण का ऊखल से बाँधा जाना

एक समय दही मथ रही थीं माता,
करते हुए स्मरण मन में प्रभु का,
तभी श्रीकृष्ण गोद में आ चढ़े,
उमड़ आई माँ के हृदय में ममता ।

पर अँगीठी पर दूध उफनता देख,
मैया कान्हा को उतार चलीं उधर,
क्रुद्ध कृष्ण मटकी फोड़ माखन लेने,
खड़े हो गए एक उलटे ऊखल पर ।

छीके पर का माखन लेकर कृष्ण,
खूब लूटा रहे थे वानरों को उसे,
साथ ही कहीं खुल जाए न चोरी,
चोकन्ने हो इधर-उधर रहे ताकते ।

देखा मैया आ रही छड़ी लेकर तो,
डरे हुए के भाँती वो लगे दौड़ने,
पीछे-पीछे दोड़ रहीं उनके मैया,
किसी तरह मैया ने पकड़ा उन्हें ।

लगीं कृष्ण को वो डराने-धमकाने,
और वो भी डरने की लीला करने लगे,
आँखें मलने से काजल फैला मुख पर,
और मैया से विनती करने लगे ।

पर मैया ने सोचा एक बार तो,
बाँध देना चाहिए कान्हा को रस्सी से,
उनका ऐश्वर्य न जान, बालक समझ,
मैया ने बाँधना चाहा उन्हें ऊखल से ।

बाँधने लगी जब मैया कृष्ण को,
दो अंगुल छोटी पड़ गयी रस्सी,
दूसरी रस्सियाँ ला-लाकर जोड़ी उसमे,
पर हर बार छोटी ही पड़ जाती रस्सी ।

जिसमें न बाहर है न भीतर,
न आदि है न कोई अन्त जिसका,
समस्त जगत समाया है जिसमें,
उसे बाँध के रखना चाहती मैया ।

घर की सारी रस्सियाँ जोड़ डाली,
फिर भी बाँध सकी न वे कृष्ण को,
जब देखा मैया पस्त हो रही है,
तो बंधवा लिया कृष्ण ने अपने को ।

प्रेम के वश हो गए भगवान्,
और बंध गए मैया के प्रेमपाश में,
ब्रह्मा, शंकर, लक्ष्मी जो पा न सके,
वह कृपाप्रसाद पाया माता ने प्रेम में ।

वहीँ लगे थे दो अर्जुन के वृक्ष,
जो पहले पुत्र थे यक्षराज कुबेर के,
घमंड के कारण, नारद के शाप से,
वे दोनों बन गए थे वृक्ष अर्जुन के ।

नलकूबर तथा मणिग्रीव का उद्धार

कुबेर के पुत्र, रूद्र भगवान के अनुचर,
नलकूबर और मणिग्रीव हो गए घमंडी,
ऊपर से पीकर वारुणी मदिरा दोनों,
जलक्रीडा करने लगे, संग स्त्रियाँ युवती ।

संयोगवश तभी वहाँ देवर्षि नारद आ गए,
जिन्हें देख स्त्रियाँ तो लगीं तन ढकने,
लेकिन वे कुबेरपुत्र इतने मदमस्त थे,
भूल गए वो अपने वस्त्र पहनने ।

नारदजी ने देखा देवता के पुत्र होकर,
ये दोनों उन्मत्त हो रहे मद-मदिरा से,
तब नारदजी ने सोच उनके उद्धार की,
उन्हें शाप देते हुए यह कहा उनसे ।

श्रीमद यानि धन-सम्पत्ति का नशा,
बुद्धि भ्रष्ट करने में बड़ा सबसे,
जो शरीर एक दिन नष्ट हो जाएगा,
उसी के लिए द्रोह करते जीवों से ।

बतलाओ तो यह शरीर सम्पत्ति किसकी,
माँ की, पिता की, या अन्न देनेवाले की,
या जो इससे धन देकर काम लेता है,
जलानेवाले, या इसे खा जानेवाले की ?

साधारण सी वस्तु, प्रकृति से उपजती,
और उसी में समा जाएगा यह शरीर,
फिर कौन जो इसे आत्मा मानकर,
कष्ट में डाले औरों का शरीर ?

दरिद्रता ही एक ऐसा अंजन है,
जिससे दूसरे दिखते अपने ही जैसे,
जब प्राणी स्वयं पीड़ा सहता है,
और की पीड़ा लगती अपनी जैसे ।

भूखे की इन्द्रियाँ वश में रहतीं,
सतसंग अंत:करण शुद्ध कर देता,
संतों को क्या काम दुराचारियों से,
दुराचारियों का संग नाश कर देता ।

सो तुम दोनों जाओगे वृक्षयोनि में,
पर तुम्हारी भगवद्स्मृति बनी रहेगी,
द्वापर में श्रीकृष्ण का सान्निध्य पा,
अपने लोक जाओगे, भक्ति मिलेगी ।

ऐसा कह चले गए देवर्षि नारद,
और वे दोनों भाई वृक्ष बन गए,
वृक्ष बन नलकूबर और मणिग्रीव,
यमलार्जुन नाम से प्रसिद्द हुए ।

नारदजी के वचन सत्य करने को,
भगवान चले धीरे-धीरे वृक्षों की ओर,
रस्सी से बंधे उस ऊखल को खींचते,
वृक्षों के बीच फँसा, लगाया जरा सा जोर ।

जड़ों सहित उखड़ गए तुरन्त वृक्ष,
और गिर पड़े दोनों वृक्ष पृथ्वी पर,
अग्नि से तेजस्वी दो पुरुष निकले,
अपने शीश रखे प्रभु के चरणों पर ।

करने लगे स्तुति भगवान कृष्ण की,
कहा, प्रकृति से अतीत पुरुषोत्तम हैं आप,
व्यक्त, अव्यक्त जगत सब रूप आपका,
प्राणियों के सर्वस्व के स्वामी हैं आप ।

आप ही महतत्त्व और त्रिगुणात्मक प्रकृति,
आप ही सर्वज्ञ, सबके साक्षी परमात्मा,
इन्द्रियों द्वारा आप जाने नहीं जा सकते,
नमस्कार, हे समस्त प्रपंच के विधाता !

प्राकृत शरीर से रहित हैं आप,
आपके पराक्रम अवतारों का पता देते,
समस्त शक्तियों सहित अवतीर्ण आप,
नमस्कार आपको हम बारम्बार करते ।

देवर्षि नारद के अनुग्रह से ही,
हुआ है हमें दर्शन, हे प्रभु ! आपका,
मन लग जाए आपके श्रीचरणों में,
स्मरण, पूजन करते रहें हम आपका ।

तब कहा श्रीकृष्ण न हँसते से,
भक्तों के दर्शन से बंधन कैसा,
नारदजी ने चाहा था तुम्हारा कल्याण,
सूर्य उदित होने पर अँधेरा कैसा ?

सो नलकूबर और मणिग्रीव अब तुम,
मेरे परायण हो, जाओ घर अपने,
संसारचक्र से छुड़ाने वाली मेरी भक्ति,
जो तुम्हें अभीष्ट है, पा ली तुमने ।

परिक्रमा की उन दोनों ने कृष्ण की,
और बार-बार उन्हें किया प्रणाम,
ऊखल से बंधे सर्वेश्वर से आज्ञा ले,
फिर उत्तर की ओर किया प्रस्थान ।

वत्सासुर तथा बकासुर का उद्धार

वृक्षों के गिरने से जो हुआ शोर,
नन्दबाबा आदि गोप दोड़े-दोड़े आए,
सोच रहे थे कहीं बिजली तो न गिरी,
आकर देखा तो दोनों वृक्ष गिरे पाए ।

वहीं श्रीकृष्ण ऊखल से बंधे खड़े थे,
और कुछ बालक भी खेल रहे थे,
पूछने पर बताया पेड़ गिराए कृष्ण ने,
और दो पुरुष भी निकलते देखे थे ।

विश्वास न आया उनकी बातों पर,
सोचा बालक पेड़ गिरा नहीं सकता,
रस्सी खोल दी बाबा ने कृष्ण की,
देखा जो कृष्ण को ऊखल से बंधा ।

कभी-कभी गोपियों के फुसलाने से,
साधारण बालक से नाचते-गाते कृष्ण,
उनके हाथ की कठपुतली बन कर,
भक्ति के अधीन हो रहते कृष्ण ।

तरह-तरह की लीलाएं करते हैं,
और मोह लेते हैं मन वो सबका,
धन्य हैं वे सब गोकुलवासी जो,
यह रूप देख रहे श्री*कृष्ण का ।

बालकों के साथ कृष्ण और बलराम,
चले गए एक दिन यमुना तट पर,
बुलाने से भी जो वे वापस न आए,
यशोदाजी बुलाने गयीं चिंतित होकर ।

वात्सल्य स्नेह से व्याकुल होकर,
कृष्ण और बलराम को लिया साथ में,
पुत्र समझती हैं वे जगदीश्वर को,
मगन रहती हैं उनके प्रेम में ।

इधर महावन में उत्पात होते देखकर,
नन्दबाबा ने मंत्रणा की गोपों से,
उपनन्द नामक एक वरिष्ठ गोप थे,
अधिक विचारशील थे जो औरों से ।

कहा उन्होंने बहुत उत्पात हो रहे यहाँ,
विशेषकर कृष्ण पर कितनी विपत्तियाँ आईं,
पूतना, छकड़ा, बवंडररुपी दैत्य, यमलार्जुन,
किस-किस विपत्ति से बचे कृष्ण, गिनवाईं ।

फिर सुझाया 'वृन्दावन' नाम का वन है,
पवित्र पर्वत, कोमल घास, वनस्पति युक्त,
गोप-गोपी और हम सबके सेवन योग्य,
गायों व पशुओं के लिए अत्यंत उपयुक्त ।

सो यदि तुम्हें यह बात जँचती हो,
तो आज ही हम सब कर दें कूच,
देर न करें, गाड़ी-छकड़े जोतें,
और पहले गायें जाएँ वहाँ पहुँच ।

सभी गोपों ने सहमती जताई,
तुरन्त कूच की तैयारी करने लगे,
छकड़ों पर बैठा बड़े-बूढ़े, सामान लाद,
पीछे-पीछे धनुष-बाण ले चलने लगे ।

सज-धजकर गोपियाँ और रानियाँ,
चलीं अपने-अपने छकड़ों पर बैठकर,
आगे-आगे पुरोहित, सींग-तुरही बज रहे,
गूँज रहा कृष्ण की लीलाओं का स्वर ।

अर्धचन्द्राकार मण्डल बाँध खड़ा किया,
वृन्दावन में गोपों ने अपने छकड़ों को,
मनोहर गोवर्धन और यमुना के पुलिन,
मोह लिया वृन्दावन ने सबके मन को ।

फिर बछड़े चराने लगे कृष्ण, बलराम,
खेल खेलत, बाँसुरी पर तान छेड़ते,
तरह-तरह की लीलाएँ करते दोनों,
साधारण बालक से बन रहते ।

एक दिन वत्सासुर दैत्य बछड़ा बन,
मिल गया उनके बछड़ों के झुण्ड में,
चुपके से बलरामजी को इशारा कर,
कृष्ण पहुँच गए उसके समीप में ।

ऐसे दिखा रहे जैसे उसे जानते नहीं,
और जैसे हो रहे हों मुग्ध उस पर,
पूँछ और पिछले पैर पकड़ घुमाया,
पटका कैथ वृक्ष पर मर जाने पर ।

उसका दैत्य शरीर प्रकट हो गया,
लम्बा-चौड़ा, कई वृक्षों को गिराया,
पड़ गए ग्वाल-बाल आश्चर्य में,
देवताओं ने भी फूलों को बरसाया ।

तड़के ही चले जाते बछड़ों को चराने,
ले जाते उन्हें एक वन से दूसरे वन में,
एक दिन बछड़ों को जलाशय पर ले गए,
वहाँ एक असुर बैठा था बगुले के रूप में ।

बड़ी तीखी थी उस बगुले की चोंच,
कंस का मित्र, बकासुर, बड़ा बलवान,
निगल लिया कृष्ण को उसने झपटकर,
ग्वाल-बाल तो जैसे हो गए निष्प्राण ।

उधर बगुले के तालू के नीचे पहुँच,
कृष्ण, जगत्पिता, जलाने लगे उसे,
झटपट उगल दिया उन्हें बगुले ने,
और टूट पड़ा वार करने को चोंच से ।

कृष्ण ने उसकी चोंच के ठोर पकड़,
खेल ही खेल में चीर डाला उसे,
जैसे कोई बीरण[7] को चीर डाले,
बकासुर को चीर डाला उन्होंने वैसे ।

करने लगे देवता स्तुति उनकी,
ग्वालबाल सब आश्चर्यचकित हो गए,
घर लौटकर जब बड़ों को बताया,
तो वे भी सब आश्चर्य में पड़ गए ।

कहने लगे कृष्ण का अनीष्ट करने,
जो भी आया उसका ही अनीष्ट हुआ,
किया होगा उन्होंने औरों का बुरा,
सो हो जाते पतिंगों से आग में स्वाहा ।

झूठे नहीं होते महात्माओं के वचन,
कहा था जो-जो गर्गाचार्यजी ने,
उतर रहीं सब सोलहों आने ठीक,
ऐसी बातें करते रहते आपस में ।

अधासुर का उद्धार

एक दिन प्रात: ग्वालबालों संग,
निकल पड़े श्याम ब्रजमण्डल से वन में,
तरह-तरह के साजो-सामान लिए,
छींकें, बेत, सींग, बाँसुरी लिए साथ में ।

खेल खेलते तरह-तरह के,
हो रहे सब ग्वालबाल आनन्दित,
कोई गा रहा, कोई नाच रहा,
कोई वन की सुन्दरता देख चकित ।

अनेक कौतुक कर रहे ग्वालबाल,
खेल रहे श्रीकृष्ण भगवान के साथ,
योगियों के लिए भी अप्राप्य हैं जो,
ग्वालबाल को वो सहज हैं प्राप्त ।

तभी वहाँ अधासुर दैत्य आ पहुँचा,
छोटा भाई पूतना और बकासुर का,
देवताओं के लिए भी अत्यंत दुखदायी,
कंस ने ही उसे भेजा था वहाँ ।

सोचा भाई-बहन का वध करने वाले,
इस कृष्ण को यदि मैं दूँगा मार,
सभी ब्रजवासी मृततुल्य हो जाएँगे,
संतान ही प्राणियों की प्राणाधार ।

ऐसा निश्चय कर वह दुष्ट दैत्य,
लेट गया रूप धारण कर अजगर का,
पर्वत सम विशाल और मोटा शरीर,
चाहता था सब ग्वालों को निगलना ।

सो फाड़ लिया गुफा के समान मुख,
उसके होठ पृथ्वी और बादल से लगे,
दाढ़ें लग रही थीं पर्वत के शिखर सी,
और कन्दराओं सम जबड़े थे उसके ।

घोर अन्धकार था मुँह के भीतर,
जीभ एक चोड़ी लाल सड़क सी,
साँस चल रही मानो आँधी हो,
आँखें दहक रही दावानल सी ।

ग्वालों ने समझा वृन्दावन की शोभा,
तुलना करी उसकी अजगर के मुख से,
सूर्य के प्रकाश से लालिमा लिए बादल,
होठ लग रहे उनके प्रतिबिम्ब से ।

जबड़ों को कन्दराएँ, शिखरों को दाढ़ें,
और सड़क की तुलना की जीभ से,
गर्म, तेज आँधी, अजगर की साँस,
ऐसे अजगर की तुलना की अजगर से ।

[7] बीरण-गाँड़र, जिसकी जड़ का खस होता है ।

फिर मंत्रणा कर सब भीतर घुस गए,
अनीष्ट की कृष्ण के होते क्या आशंका,
लेकिन अधासुर ने मुँह बन्द न किया,
कृष्ण भी आ जाए, कर रहा था प्रतीक्षा ।

देख उन्हें अजगर के मुख में घुसते,
कृष्ण का हृदय द्रवित हो उठा,
कोई ऐसा उपाय करना चाहते थे जिससे,
दैत्य तो मरे पर बच जाएँ सारे सखा ।

निश्चय कर अजगर के मुख में,
स्वयं कृष्ण अपने आप घुस गए,
हाय, हाय करने लगे देवता भयवश,
दैत्य और असुर हर्षित हो गए ।

अधासुर चाहता था उन्हें चूर-चूर करना,
परन्तु कृष्ण अपना शरीर लगे बढ़ाने,
और इतना बढ़ा लिया उसे उन्होंने,
कि अधासुर का लगा दम निकलने ।

रुँध गया अधासुर का गला,
साँस रुक गयी, निकल गए प्राण,
ग्वालबाल जो निष्प्राण हो गए थे,
श्रीकृष्ण ने फूँक दिए फिर से प्राण ।

सबके साथ बाहर निकल आए श्रीकृष्ण,
देवता उन पर फूल लगे बरसाने,
अजगर से एक दिव्य ज्योति निकल,
समा गई कृष्ण में सबके सामने ।

देवताओं ने की जो मंगल ध्वनि,
पहुँच गई वह ब्रह्मलोक तक,
ब्रह्माजी तुरन्त चलकर वहाँ आए,
श्रीकृष्ण की महिमा देखी प्रत्यक्ष ।

श्रीकृष्ण उस समय पाँच वर्ष के थे,
जब यह घटना घटी थी ब्रज में,
पर ग्वालबालों ने किया उसका वर्णन,
जब श्रीकृष्ण थे छठवें वर्ष में ।

अधासुर मूर्तिमान पाप ही था,
लेकिन श्रीकृष्ण के स्पर्शमात्र से,
धुल गए उसके सब पाप तुरन्त,
सारुप्य मुक्ति प्राप्त हुई उसे ।

ब्रह्माजी का मोहभंग और स्तुति करना

ग्वालबालों को अधासुर से बचाकर,
श्रीकृष्ण ले आए यमुना के किनारे,
अत्यंत रमणीय पुलिन, कोमल बालू,
सब ग्वालबाल लगे भोजन करने ।

बैठ गए श्रीकृष्ण सबके बीच में,
ग्वालबाल अनेक मण्डलों में बैठे थे,
भोजन और आपस में विनोद करते,
सब कृष्ण की ओर देख रहे थे ।

वे जब भोजन करने में व्यस्त थे,
बछड़े चले गए कहीं दूर उनसे चरने,
भोजन का ग्रास हाथ में लिए श्रीकृष्ण,
अकेले ही चल दिए बछड़ों को ढूँढने ।

ब्रह्माजी थे आकाश में ही उपस्थित,
आश्चर्यचकित थे अधासुर की मुक्ति से,
सोचा लीला से मनुष्य बने भगवान की,
कोई और भी लीला देखने को मिले ।

सो पहले बछड़ों फिर ग्वालबालों को,
रख दिया उन्होंने अन्यत्र ले जाकर,
फिर वे स्वयं अन्तर्धान हो गए,
भला ब्रह्माजी ऐसा करते न क्योंकर[8] ?

[8] ब्रह्माजी अन्ततः हैं तो जड़ कमल की ही संतान ।

बछड़े न मिले तो लौट आए कृष्ण,
ढूँढा ग्वालबालों को घूम-घूमकर,
जान गए वे किसकी करतूत है ये,
तब लीला रचने लगे लीलाधर ।

तब बछड़ों और ग्वालबालों के रूप में,
बना लिया श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने को,
वो सब जितने थे और जैसे थे, वैसे ही,
प्रकट कर लिया उन्होंने स्वयं अपने को ।

सम्पूर्ण जगत के कर्ता, सर्वशक्तिमान,
मुश्किल न था ऐसा करना कृष्ण को,
यह सम्पूर्ण जगत विष्णुरूप है,
मूर्तिमान कर दिखलाया वेदवाणी को ।

बछड़े और ग्वाले बने स्वयं अपने संग,
खेल खेलते ब्रज में पहुँचे श्रीकृष्ण,
बछड़ों को बाँध, अपने-अपने घर में,
ग्वालों के रूप में चले गए श्रीकृष्ण ।

बाँसुरी की तान सुन, उनकी माताएँ,
ले गयीं उन्हें अपने-अपने घर में,
और दिनों जैसे ही खिलाया-पिलाया,
भोर में नहला-धुला फिर भेजा उन्हें ।

प्रतिदिन यही क्रम चलता रहा,
पता चला न कोई भेद किसी को,
ग्वालों की माताओं की तरह ही,
पता न चला बछड़ों का गायों को ।

लेकिन अपने-अपने बच्चों के प्रति,
अधिक बढ़ गया उनका प्रेम-भाव,
जैसा असीम श्रीकृष्ण के प्रति था,
वैसा ही इनके साथ होगया प्रेम-भाव ।

सर्वात्म श्रीकृष्ण उनके रूप में,
एक वर्ष यूँ ही क्रीड़ा करते रहे,
ग्वालिनें और गौ-माताएँ बछड़ों की,
उन पर अपना प्रेम लुटाते रहे ।

एक वर्ष से पाँच-छ: रातें पहले,
कृष्ण, बलराम बछड़े ले गए वन में,
गौएँ चर रही थीं गोवर्धन पर्वत पर,
दूर अपने बछड़े चरते दिखे उन्हें ।

बलरामजी आश्चर्यचकित थे देखकर,
गोप, ग्वालिन और गौओं का प्रेम,
जो दूध पीना छोड़ चुके थे वे भी,
प्रतिक्षण पा रहे और अधिक प्रेम ।

ब्रजवासियों और स्वयं बलरामजी का,
जैसा अपूर्व प्रेम था श्रीकृष्ण पर,
वैसा ही जो उन पर बढ़ रहा था,
बलरामजी चकित थे इस माया पर ।

मालूम करने क्या था इसका कारण,
देखा बलरामजी ने ज्ञानदृष्टि से,
सब बछड़े और ग्वालबाल भी,
सबके रूप में श्रीकृष्ण ही दिखे ।

यह देख श्रीकृष्ण से कहा उन्होंने,
न कोई देवता, न ऋषि हैं ये,
एकमात्र आप ही हो रहे प्रकाशित,
इन सभी भिन्न-भिन्न रूपों में ।

बछड़े, बालक, सींग और रस्सी आदि,
क्यों प्रकाशित हैं आप इन रूपों में,
तब श्रीकृष्ण ने बतलाई उन्हें,
ब्रह्माजी ने जो की सारी करतूतें ।

तब तक लौट आए थे ब्रह्माजी,
ब्रह्मलोक से वापस ब्रज में,
एक त्रुटि[9] समय व्यतीत हुआ था,
तब तक उनके कालमान से ।

[9] त्रुटि-समय का माप; जितनी देर में पैनी सुई से कमल की पंखुड़ी छिदे ।

देखा ग्वालबाल और बछड़ों के साथ,
क्रीडा कर रहे श्रीकृष्ण पहले सी ही,
सोचा छिपा दिया था मैंने तो उन्हें,
फिर कहाँ से आ गए यहाँ ये सभी ?

दोनों स्थानों पर दोनों को देखा,
तो रहस्य खोजना चाहा ब्रह्माजी ने,
समझ न पाए वो किसी तरह भी,
कौन पहले बने और कौन पीछे बने ?

हो रहे सभी श्रीकृष्ण की माया से मुग्ध,
पर कोई उन्हें मोहित कर नहीं सकता,
ब्रह्माजी उन्हें मोहित करने चले थे,
पर स्वयं ही मोहित हो गए ब्रह्मा ।

जैसे घोर अन्धकार में कुहरे का अँधेरा,
दिन में जुगनू का प्रकाश नहीं दिखता,
वैसे ही क्षुद्र जनों की माया का वश,
महापुरुषों पर किसी तरह नहीं चलता ।

ब्रह्माजी अभी सोच ही रहे थे,
कि सभी ग्वालबाल और वे बछड़े,
उनके देखते-देखते ही दिखने लगे,
उन सबकी जगह स्वयं श्रीकृष्ण खड़े ।

सब-के-सब सजल घन श्यामवर्ण,
चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिए,
माथे पर मुकुट, कानों में कुण्डल,
पीताम्बरधारी और सब चिन्ह लिए ।

उन्हीं के जैसे दूसरे ब्रह्मा से लेकर,
तृण तक सभी चराचर जीव जगत के,
अलग-अलग भगवान के उन रूपों की,
कर रहे थे पूजा अनेक प्रकार से ।

घेरे हुए भगवान् को चारों ओर से,
सभी सिद्धियाँ, माया, महतत्त्व आदि,
चौबीस तत्त्व, काल, कर्म, संस्कार,
कर रहे उपासना उनके सभी रूपों की ।

धूमिल थी उनकी सत्ता और महत्ता,
भगवान की सत्ता और महत्ता के सामने,
काल से परे, स्वयंप्रकाश, आनंदस्वरूप,
और जड़-चेतन का भेद नहीं था उनमें ।

यह अत्यंत आश्चर्यमय दृश्य देख,
क्षुब्ध और स्तब्ध हो रह गए ब्रह्माजी,
जिनका वेद भी असमर्थ करने में वर्णन,
उन्हें तनिक भी समझ न सके ब्रह्माजी ।

ब्रह्मा का मोह और असमर्थता देख,
अपनी माया समेट ली श्रीकृष्ण ने,
इससे ब्रह्माजी को ब्राह्यज्ञान हुआ,
और चारों ओर वो लगे देखने ।

जब दिखाई दिया उन्हें वृन्दावन,
स्वयं भगवान की जो थी लीलाभूमि,
सब तरह से हो रही शोभायमान,
धन्य, धन्य फिर धन्य वो भूमि ।

फिर देखा अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्ण,
गोपवंश के बालक का सा नाट्य कर रहे,
पहले जैसे ढूँढ रहे थे वो बछड़ों को,
वैसे ही वो उनको अब भी खोज रहे ।

तुरन्त अपने वाहन हंस से कूद ब्रह्माजी,
दण्डवत गिर पड़े प्रभु के चरणों में,
नहला दिया उनके चरणों को अश्रुओं से,
बारम्बार उठ फिर गिरते चरणों में ।

फिर करने लगे वो स्तुति श्रीकृष्ण की,
कहा, वर्षाकालीन मेघसम श्यामल आप,
बिजली सा पीताम्बर शोभा पा रहा,
मोर मुकुट सर पर धारण किए आप ।

कानों में कुण्डल, गले में माला,
दिव्य कान्ति से शोभित आप,
हथेली पर रखे दही-भात का कौर,
बगल में बेत और सींग लिए हैं आप ।

कमर की फेंट में शोभा पा रही,
पहचान बतानेवाली बाँसुरी आपकी,
आपके कमल से कोमल चरण,
मैं शरण लेता हूँ इन चरणों की ।

आपका यह अप्राकृत शुद्ध सत्वमय रूप,
महिमा नहीं जानी जा सकती इसकी,
फिर कैसे जानी जा सकती महिमा,
आपके साक्षात् आत्मानन्दानुभवस्वरूप की ?

ज्ञान को छोड़, जो प्रेम करते आपसे,
और करते श्रवण आपकी लीलाकथा का,
यद्दपि आप त्रिलोकी में अविजित,
पर स्वीकार लेते आप उनकी अधीनता ।

आपकी भक्ति कल्याण का मूलस्रोत,
उसे छोड़ श्रम उठाते जो ज्ञान पाने का,
दुःख भोगते, क्लेश-ही-क्लेश पाते वो,
जैसे थोथी भूसी से चावल नहीं मिलता ।

पहले भी योगादि से जो पा न सके,
भक्ति से पा गए आपको वो योगी,
भक्ति से आपके स्वरूप का ज्ञान पा,
परमपद सहज ही पा गए वो योगी ।

कठिन आपके सगुण-निर्गुण रूप का ज्ञान,
फिर भी ज्ञेय है निर्गुण रूप की महिमा,
पर समर्थ पुरुषों में भी ऐसा कौन है जो,
सगुण रूप के अनन्त गुण गिन सकता ?

अवतीर्ण हुए जगत के कल्याण के लिए,
बड़ा कठिन ही ज्ञान आपकी महिमा का,
आपकी कृपा का आभारी, निर्विकारी मन,
आपको समर्पित, वही आपको जान सकता ।

प्रेमपूर्ण हृदय, गद्गद वाणी से,
समर्पित होते जो चरणों में आपके,
पिता की सम्पत्ति में पुत्र के जैसे,
अधिकारी होते वो परमपद पाने के ।

आप अनन्त, आदिपुरुष, परमात्मा,
मुझ जैसे मायावी भी आपके वश में,
पर मेरी कुटिलता तो देखिये, प्रभो !
दिखाना चाहा ऐश्वर्य आपके सामने ।

रजोगुण से उत्पन्न हुआ मैं, भगवन !
नहीं जानता ठीक-ठीक स्वरूप आपका,
हो गया अजन्मा जगत्कर्ता का अभिमान,
मोह के अन्धकार वश हो गया अंधा ।

अपना भृत्य समझकर कृपा कीजिए,
और कीजिए सब अपराध क्षमा मेरे,
मात्र यह ब्रह्माण्ड ही मेरा क्षुद्र शरीर,
रोम-रोम में आपके अनेक ब्रह्माण्ड बसे ।

क्या माता अपने गर्भस्थ शिशु के,
किसी अपराध को अपराध समझती,
'है' और 'नहीं है', ऐसी कोई वस्तु,
है क्या जो आपकी कोख में नहीं ?

श्रुतियाँ कहती हैं तीनों लोक,
लीन थे जब प्रलयकालीन जल में,
उस जल में स्थित श्रीनारायण के,
नाभिकमल से तब ब्रह्मा जन्में ।

हो नहीं सकता असत्य उनका कहना,
सो कहिए क्या मैं पुत्र नहीं आपका,
आप सब जीवों के आश्रय, नारायण,
आप ही समस्त जीवों के आत्मा ।

नारायण हैं आप सभी प्रकार से,
अधीश्वर सभी जीवों और जगत के,
सब लोकों को जानते, सबके साक्षी,
सर्वत्र दर्शन कर रहा, नारायण आपके ।

यदि आपका यह विराट स्वरूप,
सचमुच उस समय जल में ही था,
तो क्यों नहीं दिखा सौ वर्ष मुझे जब,
कमलनाल में घुस मैं ढूँढता रहा ?

फिर मैंने जब तपस्या की तब,
कैसे हो गया दर्शन हृदय में उसका,
फिर कुछ ही क्षणों में वह पुनः,
क्यों नहीं दिखा, अन्तर्धान हो गया ?

अभी इसी अवतार में आपने दिखाया,
माता यशोदा को उदर में सारा जगत,
इससे तो यही सिद्ध होता है कि,
माया ही माया है यह सारा जगत ।

जब आपके सहित यह सारा विश्व,
जैसा बाहर वैसा दिखा उदर में,
तब क्या आपकी माया के बिना,
यह सब प्रतीत हुआ आप में ?

और अभी आप पहले अकेले थे,
फिर जो कुछ था सब आप हो रहे,
फिर मैंने देखा चतुर्भुज हैं सब रूप,
मेरे सहित सब तत्त्व सेवा कर रहे ।

धारण कर लिया था अलग-अलग,
आपने उतने ही ब्रह्मांडों का रूप,
परन्तु बस अब शेष रखा है आपने,
अपना अपरिमित, अद्वितीय ब्रह्मरूप ।

जो जानते नहीं आपका स्वरूप अज्ञानवश,
उन्हें जीव के रूप में आप होते प्रतीत,
उन पर अपनी माया का पर्दा डालकर,
सृष्टिकाल में ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र होते प्रतीत ।

हे प्रभो ! अजन्मा होने पर भी आप,
जीवों के रूप में ग्रहण करते अवतार,
सारे जगत के स्वामी और विधाता,
संतों पर कृपा, दुष्टों का हरते अहंकार ।

अपनी योगमाया का विस्तार कर जब,
करने लगते हैं विभिन्न लीलाएँ आप,
उस समय कौन त्रिलोकी में ऐसा जो,
जान सके, हे प्रभो ! आपका प्रताप ।

स्वप्न सा असत्य और अज्ञानरूप,
दुःख पर दुःख देनेवाला है जगत,
माया से प्रकट और विलीन होने पर भी,
आपकी सत्ता से आपमें सत्य लगता जगत ।

हे प्रभो ! आप ही एकमात्र सत्य हैं,
देश, काल और वस्तु से परे,
सबके प्रकाशक, अविनाशी, नित्य,
पूर्ण हैं आप, सब अभावों से परे ।

गुरुरूप सूर्य से प्राप्त हो जाती,
तत्त्वज्ञानरूप दिव्य दृष्टि जिन्हें,
साक्षात्कार हो जाता है आपका,
अपने स्वरूप के रूप में उन्हें ।

जानते नहीं परमात्मा को जो पुरुष,
अपने स्वयं के आत्मा के रूप में,
अपने ही उस अज्ञान के कारण,
पड़े रहते इस प्रपंच के भ्रम में ।

जैसे हो जाता रस्सी में साँप का भ्रम,
और भ्रम की निवृति से निवृति उसकी,
वैसे ही संसार सम्बंधी बंधन और मोक्ष,
ये दोनों ही बातें हैं उपज अज्ञान की ।

जिस प्रकार सूर्य में नहीं है,
कोई भेद दिन और रात का,
चित्तस्वरूप शुद्ध आत्मतत्त्व में,
अस्तित्व नहीं बंधन या मोक्ष का ।

आश्चर्य, अपना आत्मा होने पर भी,
लोग आपको मानते है पराया,
किन्तु शरीरादि को आत्मा मान बैठते,
जो कि वास्तव में है ही पराया ।

ढूँढने लगते आपको कहीं अलग,
अज्ञानी जीवों का यह घोर अज्ञान,
आप विराजमान सबके अंतःकरण में,
संतजन करते ग्रहण यह ज्ञान ।

आपके सिवाय सबका परित्याग करते,
ढूँढते संतजन आपको अपने भीतर ही,
जैसे बिना मिथ्या जाने भ्रम के साँप को,
नहीं जाना जा सकता सच में है रस्सी ही ।

आपके ज्ञान के द्वारा हो जाता,
नाश इस अज्ञान-कल्पित जगत का,
आपके युगल चरणकमलों का प्रसाद,
सच्चिदानंद रूप का तत्त्व दर्शाता ।

सम्भव नहीं ज्ञान-वैराग्यादि साधन से,
जानना आपकी यथार्थ महिमा को,
विनती है आपका दास बन मैं,
सेऊं आपके युगल चरणकमलों को ।

धन्य हैं नन्द और गोपों के भाग्य,
धन्य ब्रज की गाएँ और ग्वालिनें,
परमानंदस्वरूप परिपूर्ण ब्रह्म आप,
उनके सगे सम्बन्धी और सुहृद् बने ।

ग्यारह इन्द्रियों[10] के अधिष्ठाता देवता,
महेशादि हम हैं बड़े भाग्यवान,
उनकी एक-एक इन्द्रिय द्वारा हम,
करते आपके चरणकमलों का रसपान ।

फिर क्या कहा जाए ब्रजवासियों के लिए,
उनके भाग्य की सराहना हो सकती कैसे,
धन्य हो रहे हम एक इन्द्रिय से पान कर,
वे रसपान करते ग्यारहों इन्द्रियों से ।

ब्रज, विशेषकर गोकुल में जन्मना,
होगी हमारे लिए बड़े भाग्य की बात,
क्योंकि यहाँ किसी रूप में भी जन्मने से,
आपके प्रेमियों की चरणधूल होगी प्राप्त ।

आपके प्रेमी ब्रजवासियों के जीवन के,
आप ही हैं एकमात्र सर्वस्व, हे प्रभो !
इसलिए उनके चरणों की धूल मिलना,
आपकी चरणधूल ही मिलना है, प्रभो !

ब्रजवासियों को इनकी सेवा के बदले,
क्या फल देंगे हे प्रभु ! आप इन्हें,
सम्पूर्ण फलों के फलस्वरूप स्वयं आप,
वो आप तो सहज ही प्राप्त हैं इन्हें ।

हो रहा मेरा चित्त मोहित यह सोच,
उऋण नहीं हो सकते आप कैसे भी,
क्योंकि आपका दुर्लभ स्वरूप तो,
प्राप्त कर लिया पूतनादि असुरों ने भी ।

कर दिया इन्होंने सर्वस्व समर्पित,
हे प्रभु ! आपके श्रीचरणकमलों में,
फिर इनको भी वही फल देकर,
कैसे उऋण हो सकते आप इनसे ?

मोह तभी तक बेड़ियों में जकड़ता,
जब तक जीव न हो जाता आपका,
सर्वथा रहित आप विश्व के बखेड़े से,
अवतार आपका भक्तों को रिझाता ।

और अधिक क्या बखान करूँ मैं,
असमर्थ कहने में मैं आपकी महिमा,
सबके साक्षी, समस्त जगत के स्वामी,
स्वीकार कीजिए, शरणागत हूँ आपका ।

अपनी रूप माधुरी से लुभाने वाले,
यदुवंशरुपी कमल के लिए सूर्य से,
पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और सागर,
उनकी अभिवृद्धि के लिए चन्द्र से ।

राक्षसों को नष्ट करनेवाले आप,
परम पूजनीय सभी देवताओं के लिए,
महाकल्पपर्यन्त करता रहूँ आपको प्रणाम,
अब आज्ञा दें अपने लोक जाने के लिए ।

[10] ग्यारह इन्द्रियाँ-पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक मन ।

बछड़ों और ग्वालबालों को उन्होंने,
पहले ही पहुँचा दिया था यथास्थान,
इस प्रकार स्तुति कर ब्रह्माजी ने,
तीन बार परिक्रमा कर किया प्रणाम ।

तब ब्रह्माजी को विदा कर श्रीकृष्ण,
आए यमुनाजी के उसी पुलिन पर,
यद्दपि एक वर्ष बीत गया था लेकिन,
ग्वालबालों को लगा आधे क्षण भर ।

असम्भव नहीं उन्हें ऐसा लगना,
सब मोहित हैं प्रभु की योगमाया से,
जीव यहाँ क्या-क्या भूल नहीं जाते,
मोहित होकर प्रभु की माया से ?

फिर अधासुर का ढाँचा दिखाते,
लौटा लाए श्रीकृष्ण सबको ब्रज में,
ग्वालबालों ने घर जाकर बतलाया,
कैसे भारी अजगर मार डाला कृष्ण ने ।

ब्रजवासियों के कृष्ण अपने पुत्र नहीं थे,
पर अपने पुत्र से बढकर प्रेम था उनपर,
क्योंकि सभी प्राणियों को होता है,
प्रेम अपनी आत्मा[11] से सबसे बढ़कर ।

पुत्र, स्त्री, धन आदि लगती हैं,
सभी प्राणियों को इसलिए प्रिय,
क्योंकि ये सब वस्तुएं लगती है,
उनके अपने आत्मा को प्रिय ।

मानते जो अपनी देह को ही आत्मा,
वे भी अपनी देह से करते जितना प्रेम,
देह से सम्बन्धित पुत्र-मित्र आदि से,
नहीं करते वे भी उतना ही प्रेम ।

जब विचार से यह मालूम हो जाय,
'मैं शरीर नहीं' पर शरीर है मेरा,
तब प्राणी को इस शरीर से भी,
आत्मा समान प्रेम नहीं रहता ।

सभी वस्तुओं का अन्तिम रूप,
स्थित होता है अपने कारण में,
उस कारण का भी परम कारण,
प्रभु श्रीकृष्ण है स्वयं अपने में[12] ।

बछड़े के खुर से बने गड्ढे समान है,
यह भवसागर उन सत्पुरुषों के लिए,
जो प्रभु श्रीकृष्ण के पदपल्व रुपी,
नौका का दृढ़ता से हैं आश्रय लिए ।

धेनुकासुर का उद्धार; कालिय दमन

छठे वर्ष में प्रवेश करने पर,
कृष्ण-बलराम को मिली अनुमति,
अब वे गौएँ चराने ले जाते,
पावन कर रहे वृन्दावन की भूमि ।

सबसे आगे-आगे गौएँ चलती,
उनके पीछे कृष्ण, फिर बलराम,
और सबसे पीछे चलते ग्वालबाल,
करते हुए श्रीकृष्ण के यश का गान ।

[11] अपनी आत्मा-श्रीकृष्ण तो सभी प्राणियों के आत्मा हैं, अर्थात सभी आत्माओं के आत्मा हैं, सो उन पर सर्वाधिक प्रेम स्वाभाविक ही है । श्रीकृष्ण का वास्तविक स्वरूप जानने वालों के लिए संसार के समस्त चराचर और इससे परे परमात्मा, ब्रह्म, नारायण आदि भी सभी श्रीकृष्णस्वरूप है । श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई प्राकृत-अप्राकृत वस्तु है ही नहीं ।

[12] फिर कैसे कोई वस्तु उनसे भिन्न कही जा सकती है ?

बहुत सुन्दर और पल्लवित वह वन,
भौरें करते रहते जिसमें मधुर गुंजन,
झुंड के झुंड हरिन चौकड़ी भर रहे,
नित नई शोभा से शोभित वृन्दावन ।

बड़े-बड़े वृक्ष फल-फूलों से झुके,
कर रहे स्पर्श उनके श्रीचरणों का,
तब बड़े आनन्द से कुछ मुस्कुराते से,
श्रीकृष्ण ने बड़े भाई बलरामजी से कहा ।

हे देवशिरोमणे ! आपके चरणकमलों की,
यों तो बड़े-बड़े देवता करते हैं पूजा,
इन वृक्षों ने उनकी पूजा के लिए ही,
स्वीकार किया वृक्ष योनि में जन्मना ।

यद्दपि आप अपना ऐश्वर्यरूप छिपाकर,
आदिपुरुष ! बालकों की सी लीला कर रहे,
फिर भी भक्त-मुनिगण आपको पहचान,
भौरें बन आपके यश का गान कर रहे ।

वस्तुत: आप ही हैं स्तुति करने योग्य,
वन का हर तृण आपके आगे है नत,
आपके चरणों के स्पर्श से धन्य हो,
वन का कण-कण कर रहा हर्ष प्रकट ।

वन में तरह-तरह की लीलाएँ कर,
सबका मन मोह लेते हैं श्रीकृष्ण,
और कभी जब बलरामजी थक जाते,
उनके पाँव दबाने लगते हैं श्रीकृष्ण ।

और कभी जब श्रीकृष्ण स्वयं थक जाते,
कोई भाग्यशाली ग्वाल लगता पाँव दबाने,
भगवती लक्ष्मी सेवती जिनके चरणों को,
उन्हें सहज ही पा लिया ग्वालबालों ने ।

श्रीदामा और कुछ ग्वालबालों ने,,
कहा एक दिन कृष्ण, बलराम से,
कुछ दूर पर एक बड़ा भारी वन है,
भरा हुआ पाँत-के-पाँत ताड़ वृक्षों से ।

गिरते रहते उनसे फल पक-पककर,
और बहुत से गिरे हुए पहले से,
लेकिन धेनुक नामक एक दुष्ट दैत्य,
रहता है वहाँ एक गधे के रूप में ।

बहुत बलवान है वह दैत्य स्वयं,
और बहुत से वैसे ही साथी उसके,
जाता नहीं वहाँ कोई पशु या पक्षी,
खा जाते हैं वो लोगों को मार के ।

हालांकि वे फल हैं बहुत सुगन्धित,
लेकिन खाए नहीं कभी हमने,
फैल रही है उन्हीं की सुगन्ध यहाँ,
उन्हें खाने की इच्छा है मन में ।

उन्हें प्रसन्न करने के लिए दोनों भाई,
उनके साथ तालवन के लिए चल पड़े,
तनों को बाहों में जकड़, पेड़ों को हिला,
बलरामजी ने बहुत से फल गिरा दिए ।

शोर को सुन, दौड़ा चला आया धेनुक,
अपने बल से कँपाता पृथ्वी को सारी,
वेग से बलरामजी के सामने आकर,
पिछले पाँवों से छाती में दुलत्ती मारी ।

फिर पीछे हट पुन: दौडकर आया,
और दुलत्ती चलाई बलरामजी पर उसने,
एक ही हाथ से उसके दोनों पाँव पकड़,
घूमाकर पेड़ पर दे मारा उसे उन्होंने ।

हवा में ही उसके प्राणपखेरू उड़ गए,
उसके गिरने से वह पेड़ भी गिरा,
बहुत विशाल था वह ताड़ का वृक्ष,
अपने साथ कई पेड़ों को ले गिरा ।

बलरामजी के लिए तो था यह खेल,
पर ऐसा लगा की झंझावात आ गया,
कई पेड़ गिरे, बाकी सब हिल गए,
ताड़ के फलों से सारा वन पट गया ।

बलरामजी स्वयं जगदीश्वर हैं जिनसे,
सारा संसार ओतप्रोत सूतों में वस्त्र सा,
तब दैत्य धेनुकासुर का आनायास वध,
उनके हाथों होने में आश्चर्य कैसा ?

दौड़ते आए धेनुकासुर के भाई-बन्धु,
टूट पड़े सब-के-सब दोनों भाइयों पर,
उनमें से जो-जो उनके पास आए,
दे मारा दोनों भाइयों ने पेड़ों पर ।

मुक्त हो गया तालवन दैत्यों से,
निडर हो लोग ताड़फल खाने लगे,
आसमान से बरसाए देवताओं ने फूल,
ग्वालबाल उन दोनों का यश गाने लगे ।

एक दिन बलराम के बिना श्रीकृष्ण,
ग्वालबालों संग गए यमुनातट पर,
गर्मी से व्याकुल ग्वालबालों और गौएँ,
सोचा प्यास बुझा लें जल पीकर ।

बहुत विषैला[13] हो गया था यमुना जल,
पर प्यास के मारे रहा न ध्यान,
निष्प्राण हो गिर पड़े विषैला जल पीकर,
पर श्रीकृष्ण ने फिर फूँक दिए प्राण ।

कालिय नाग का एक कुण्ड था यमुना में,
विष की गर्मी से खोलता रहता जल उसका,
झुलस जाते ऊपर से उड़ते पक्षी भी,
हवा भी दूषित हो जाती स्पर्श कर उसका ।

कालिय के विष का प्रभाव देख,
और उसके कारण दुर्दशा यमुना की,
एक दिन ऊँचे कदम्ब पेड़ पर चढ़,
कृष्ण ने कुण्ड में छलांग लगा दी ।

[13] विषैला-वैज्ञानिक दृष्टि से शायद यह मीथेन गैस के कारण हो, जो प्राय: गन्दे जल में जल के नीचे जमा हो जाती है और दवाब अधिक होने पर विस्फोट के साथ बाहर निकल जाती है ।

खौल रहा था यमुनाजी का जल,
लाल-पीली भयंकर तरंगों के साथ,
श्रीकृष्ण के उसमें कूदने के कारण,
और अधिक होने लगा उत्पात ।

फ़ैल गया जल दूर-दूर उछलकर,
श्रीकृष्ण और भी जल उछालने लगे,
बलशाली मतवाले गजराज से श्रीकृष्ण,
गर्जन-तर्जन कर जल बहाने लगे ।

उस घोर ध्वनि को सुन कालिय,
चिढ़कर श्रीकृष्ण के आ गया सामने,
उनका साँवला पीताम्बरधारी रूप देख,
सम्मोहित सा हो उनको लगा देखने ।

पर देखा जब श्रीकृष्ण खड़े निडर,
तब बढ़ गया और भी क्रोध उसका,
डंसकर श्रीकृष्ण को मर्मस्थानों में,
अपने शरीर के बन्धन में जकड़ा ।

नागपाश में बंध निष्चेष्ट कृष्ण को देख,
मूर्छित हो ग्वालबाल गिर पड़े पृथ्वी पर,
उधर त्रितापों ने घेर लिया ब्रज को,
समझे घोर विपत्ति आ पड़ी कृष्ण पर ।

अत्यन्त दीन और कातर हो ब्रजवासी,
निकल पड़े ढूँढने सब श्रीकृष्ण को,
बलराम तो जानते थे कृष्ण का प्रभाव,
मन-ही-मन हँसे, पर कुछ बोले न वो ।

श्रीकृष्ण के पदचिन्हों को देखते,
पहुँच गए ब्रजवासी यमुना तट पर,
कुण्डली में जकड़े कृष्ण को देख,
व्याकुल हो गिर पड़े अचेत होकर ।

यशोदाजी और नन्दबाबा दोनों तो,
स्वयं कालियदह में लगे घुसने,
प्रेम, विनय और समझा-बुझाकर,
किसी तरह बलरामजी ने रोका उन्हें ।

ब्रजवासियों को अधीर होता देख,
और जान स्वयं ही को सम्बल उनका,
एक घड़ी तक तो वे बन्धन में रहे,
फिर छूटना क्या मुश्किल था उनका ?

फुला लिया कृष्ण ने शरीर अपना,
जिससे कालिय का बदन लगा टूटने,
तुरन्त श्रीकृष्ण को बन्धन से छोड़,
एक तरफ खड़ा हो लगा देखने ।

नथुनों से निकल रही विष की फुहार,
आँखे लाल-लाल, भट्टी में तपी सी,
चाट रहा होठों को दुहरी जीभ से,
मुँह से निकल रहीं लपटें आग की ।

खेलने लगे श्रीकृष्ण पैंतरा बदल,
कालिय भी दाँव लगाने की ताक में,
उसे थका और बल क्षीण कर उसका,
चरणों तले दबा लिया उसे कृष्ण ने ।

उसके बड़े-बड़े सिरों को तनिक दबा,
सवार हो गए श्रीकृष्ण उछल उस पर,
मस्तक पर की मणियों के कारण,
चरणों की लालिमा आई और उभर ।

नृत्य करने लगे मुरलीधर फनों पर,
देवता गाने और वाद्य बजाने लगे,
करने लगे श्रीकृष्ण पर फूलों की वर्षा,
ब्रजवासी हर्षित हो उन्हें देखने लगे ।

एक सौ एक सिर थे कालिय नाग के,
नृत्य कर रहे थे श्रीकृष्ण उन पर,
झुकाता नहीं था जो सिर वह नाग,
चढ़ जाते थे श्रीकृष्ण उसी पर ।

बहुत क्षीण हो गयी जीवनशक्ति उसकी,
उगलने लगा खून मुँह और नथुनों से,
फिर भी जरा सा चैतन्य होने पर,
उगलने लगता वह विष आँखों से ।

अन्ततः ताण्डव नृत्य से पीड़ित हो,
मुख से खून कालिय लगा उलटने,
तब स्मृति हुई उसे भगवान की,
लगा मन-ही-मन उनकी स्तुति करने ।

सम्पूर्ण विश्व है भगवान् के उदर में,
उनका भारी बोझ कालिय सह न सका,
सारा शरीर चूर-चूर, फन छिन्न-भिन्न,
उसकी पत्नियाँ व्याकुल हुई देख दशा ।

तुरन्त भगवान की शरण ली उन्होंने,
बालकों को आगे कर, प्रणाम किया उन्हें,
विनती करने लगीं अपने पति के लिए,
सबका सुहृद, शरणागतवत्सल जान उन्हें ।

कहा, आपका यह अवतार हुआ है,
दुष्टों को दण्ड देने के लिए ही,
सर्वथा उचित है इस अपराधी को दण्ड,
आपका दण्ड देना भी कल्याण हेतु ही ।

अनुग्रह है यह आपका हम पर,
आपके दण्ड से पाप नष्ट हो जाते,
सन्देह नहीं इसके अपराधी होने में,
आपकी कृपा से अपराधी भी तर जाते ।

नहीं जानतीं हम क्या साधना करी,
कि आपकी चरण रज पायी इसने,
सर्वथा दुर्लभ जो देवों के लिए भी,
सहज, अनायास ही, पा ली इसने ।

सबके आश्रय, सब पदार्थों में विद्यमान,
प्रकृति से परे, स्वयं परमात्मा हैं आप,
अनन्त आपकी शक्ति और महिमा,
आप ही ब्रह्म, दिव्य चिन्मय हैं आप ।

प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न करनेवाले काल,
विश्वरूप होकर भी पृथक, दृष्टा हैं आप,
पञ्चभूत, उनकी तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, प्राण,
मन, बुद्धि और चित्त भी, सब हैं आप ।

देश, काल आदि की सीमा से बाहर,
सब विकारों से रहित, सर्वज्ञ हैं आप,
जो जैसा मानता, आपके दर्शन पाता,
सब प्रमाणों को प्रमाणित करते आप ।

सब शास्त्रों के स्रोत हैं आप ही,
स्वत: सिद्ध है प्रभु ! आपका ज्ञान,
वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध,
यों चतुर्भुज रूप में यदुवंश के प्राण ।

स्थूल, सूक्ष्म, समस्त गतियों के ज्ञाता,
सबके साक्षी हैं आप, नमस्कार आपको,
विश्व की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय के कारक,
आपकी लीलाएँ अमोध, नमस्कार आपको ।

शान्तात्मन ! एक बार सह लेना चाहिए,
स्वामी को अपनी प्रजा का अपराध,
यह मूढ़ है, आपको पहचानता नहीं,
इसलिए इसे क्षमा कर दीजिए आप ।

हम अबलाओं पर सदा से ही,
साधु पुरुष दया करते ही आए,
दे दीजिए हमारे पति को हमें,
आपके शरणागत, अभय पाते आए ।

बेसुध हो गया था कालिय नाग,
फन भी हो गए थे छिन्न-भिन्न,
नागपत्नियों की आर्त पुकार सुन,
दया कर छोड़ दिया उसे तत्क्षण ।

उसकी इन्द्रियों और प्राणों में,
धीरे-धीरे लौटने लगी कुछ चेतना,
बड़ी कठिनाई से थोड़ा श्वास ले,
हाथ जोड़कर करने लगा प्रार्थना ।

हे नाथ ! जन्म से ही तमोगुणी हम,
बड़े क्रोधी और बदला लेनेवाले जीव,
फँसे रहते नाना प्रकार के दुराग्रहों में,
अपना स्वभाव बदल न पाते जीव ।

हे विश्वविधाता ! आपने ही बनाए,
सभी जीव जगत में गुणों के भेद से,
हो रहे सब आपकी माया से मोहित,
कैसे निकल सकते हम इसके फंदे से ?

आप सर्वज्ञ, समस्त जगत के स्वामी,
हमारे स्वभाव और माया के भी कारण,
अब आप जैसा ठीक समझें कीजिए,
क्षमा कीजिए या दण्ड का अनुपालन ।

नागपत्नियों और उसकी विनती सुन,
अब तुम रहों न यहाँ, बोले श्रीकृष्ण,
अपनी पत्नियों, पुत्र, जातिभाइयों को ले,
चले जाओ समुद्र में यहाँ से तत्क्षण ।

कर सकेंगे लोग इस जल का उपयोग,
पूजन-तर्पण जो करेगा, पाप-मुक्त होगा,
तुम्हारे शरीर पर मेरे पदचिन्हों के कारण,
अब से तुम्हें गरुड़ का भय न होगा ।

पूजा और परिक्रमा कर कृष्ण की,
सपरिवार चला गया कालिय वहाँ से,
रमणक द्वीप, समुद्र में सर्पों का निवास,
भाग आया था गरुड के कारण जहाँ से ।

दावानल का शमन

माताओं में परस्पर वैर[14] के कारण,
एक सर्प की भेंट मिलती थी गरुड़ को,
सर्पों के परिवार बारी-बारी से देते थे,
एक सर्प उन्हें प्रत्येक अमावस को ।

[14] गरुड़जी की माता विनता और सर्पों की माता कद्रू में परस्पर वैर के कारण गरुड़जी जो भी सर्प मिलता उसे खा जाते । ब्रह्माजी की शरण में जाने पर उन्होंने यह नियम किया कि प्रत्येक अमावस्या को सर्प परिवार बारी-बारी से गरुड़जी को एक सर्प की बलि दिया करे ।

उनमें कद्रू का पुत्र कालिय नाग,
बहुत विषैला और बलशाली भी था,
बलि देना तो दूर रहा गरुड़ को,
उनका भाग भी वो खा जाता था ।

बहुत क्रोध आया गरुड़जी को यह जान,
कर दिया उन्होंने आक्रमण कालिय पर,
एक सौ एक फन वाला कालिय भी,
फेन फैला डसने को टूट पड़ा उन पर ।

ढिठाई देखकर कालिय नाग की,
और भी अधिक क्रोधित हो उठे गरुड़,
तेज प्रहार किया सुनहले बाएँ पंख से,
फिर झटककर फेंक दिया उसे दूर ।

वहाँ से घबराकर कालिय नाग,
आकर रहने लगा यमुना के कुण्ड में,
सौभरि ऋषि के शाप के कारण,
जाते नहीं थे गरुड़जी उस कुण्ड में ।

सौभरि ऋषि के मना करने पर भी,
क्षुधातुर गरुड़ खा गए मत्स्यराज को,
दुखी मछलियों की प्रार्थना सुनकर,
ऋषि ने दे डाला था शाप गरुड़ को ।

"यदि गरुड़जी इस कुण्ड में आकर,
खायेंगे कभी फिर किसी मछली को,
तो मैं यह सत्य-सत्य कहता हूँ,
प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा उनको ।"

कालिय नाग के सिवा दूसरे सर्प,
जानते नहीं थे इस शाप के विषय में,
सो रहने लगा उस कुण्ड में कालिय,
जब तक समुद्र में उसे भेजा कृष्ण ने ।

इधर श्रीकृष्ण निकले यमुना से बाहर,
दिव्य माला, आभूषण आदि से सुशोभित,
उन्हें देख ब्रजवासी उठ खड़े हो गए,
हो रहे थे सभी के हृदय आनन्दित ।

मृत्यु के मुख से लौटा देख कृष्ण को,
नन्दबाबा ने सोना और गौएँ दान दीं,
क्योंकि गौएँ और ब्रजवासी थके थे,
सो उस रात वे सब सो रहे वहीं ।

गर्मियों के दिन और सूखा वन,
आधी रात लग गयी उसमें आग,
सोये हुए ब्रजवासियों को घेरकर,
चारों ओर से जलाने लगी आग ।

आग की आँच लगने पर ब्रजवासी,
घबराकर कृष्ण-बलराम की शरण गए,
उन्हें इस तरह से व्याकुल देख,
जगदीश्वर श्रीकृष्ण अग्नि को पी गए ।

प्रलम्बासुर उद्धार

अग्नि का पान कर अन्नत शक्तिवाले,
भगवान श्रीकृष्ण लौट आए ब्रज में,
यद्दपि वे गर्मियों के दिन थे, फिर भी,
वसन्त ऋतु सी छायी रहती थी ब्रज में ।

एक दिन जब वन में गौएँ चरा रहे थे,
ग्वालबालों संग श्रीकृष्ण और बलराम,
ग्वाला बन प्रलम्ब नामक असुर आया,
श्रीकृष्ण उसे देखते ही गए पहचान ।

हालांकि श्रीकृष्ण ने पहचान लिया था,
पर स्वीकार किया प्रस्ताव मित्रता का,
सोच रहे थे मन ही मन में श्रीकृष्ण,
क्या करें उपाय उसका वध करने का ?

दो दलों में बँट गए खेल के लिए,
श्रीकृष्ण और बलराम बन गए नायक,
पीठ पर चढ़ाकर दूसरे दल वाले को,
ले जाना था एक निर्दिष्ट स्थान तक ।

जीतने वाले दल के लोग चढ़ते थे,
हारने वाले दल की पीठों पर,
इस प्रकार खेलते, गौओं को चराते,
जा पहुँचे वे भाण्डीर नामक वट पर ।

असमर्थ जान श्रीकृष्ण को हराने में,
प्रलम्ब शामिल हुआ दल में उन्हीं के,
मौक़ा पा बलरामजी को पीठ पर चढ़ा,
प्रलम्ब भाग चला दूर उन्हें ले के ।

भारी पर्वत से बोझवाले थे बलराम,
सो जा न सका प्रलम्ब बहुत दूर तक,
सांस फूल गयी, उसकी चाल रुक गयी,
हो गया उसका असली दैत्य रूप प्रकट ।

उसके काले शरीर पर गौरे बलराम,
ज्यों श्यामल मेघ चन्द्रमा किए धारण,
अपने विशाल शरीर पर बलराम को ले,
आकाश की तरफ करने लगा गमन ।

पहले तो कुछ अचम्भित हुए बलराम,
फिर याद हो आया उन्हें अपना स्वरूप,
वज्र सा एक घूँसा मारा उसके सिर पर,
तुरन्त ही उसका सिर गया टूट-फूट ।

खून उगलता, भयंकर शब्द के साथ,
प्राणहीन हो गिर पड़ा प्रलम्ब जमीं पर,
ग्वालबाल करने लगे वाह-वाह चकित हो,
फूल बरसाने लगे देवता प्रसन्न होकर ।

दावानल से गोपों का बचाव

खेल-कूद में लगे थे जब ग्वालबाल,
गौएँ चली गयीं वहाँ से दूर वन में,
गर्मी के ताप से बेसुध सी, व्याकुल हो,
जा घुसीं वो मुन्जाटवी[15] नामक वन में ।

कृष्ण, बलराम और गोपों ने देखा,
दूर चली गयीं हैं गौएँ उनकी,
खोजने पर भी पता लगा न सके,
माथे पर उभर आयीं लकीरें चिंता की ।

चरी घास और खुरों के निशान देखते,
वे सब भी जा पहुँचे उसी वन में,
थकी, प्यासी डकराती गौओं को देख,
श्रीकृष्ण पुकारने लगे नाम ले-ले उन्हें ।

तभी उस वन में दावाग्नि लग गयी,
ऊपर से आँधी बढ़ावा देने लगी उसे,
भस्मसात करने लगी सभी चराचर को,
वह प्रचण्ड अग्नि अपनी लपटों से ।

चारों ओर से दावानल को बढ़ता देख,
गौएँ और ग्वाल डरकर लगे पुकारने,
हे कृष्ण ! हे बलराम ! रक्षा करो,
यह दावानल जलाना ही चाहता है हमें ।

कहा कृष्ण ने उन्हें आँखें मूँद लो,
और पी गए वो भीषण दावानल को,
जब ग्वालों ने आँखें खोलकर देखा,
पाया भाण्डीर वट के पास अपने को ।

यों गौओं और स्वयं को बचा देख,
ग्वालबाल हो गए बहुत ही विस्मित,
सोचने लगे श्रीकृष्ण हैं कोई देवता,
उनके आश्चर्यकर्म करते थे चकित ।

वर्षा और शरद ऋतु

बालकों के मुख से सारी बात जान,
बहुत आश्चर्य हुआ सब गोपों को,
करने लगे कृष्ण-बलराम का गुणगान,
और मानने लगे देवता वो उनको ।

[15]मुन्जाटवी-सरकंडों का वन ।

फिर वर्षा ऋतु का हुआ शुभागमन,
नीले, घने बादल घिर आते गगन में,
बिजली की कौंध, गर्जन बादलों का,
मयूर और कोयल की कूक वन में ।

सूर्य, चन्द्र और तारों के ढकने से,
ऐसी शोभा होती इससे आकाश की,
जैसे ब्रह्मस्वरूप होने पर भी होती,
गुणों से ढके हुए होने पर जीव की ।

राजा की तरह पृथ्वीरूपी प्रजा से,
आठ माह किया सूर्य ने जल ग्रहण,
लेकिन समय आने पर अब वे फिर,
कर रहे अपने किरण-करों से वर्षण ।

प्रजा को पीड़ित देख दयालु पुरुष,
निछावर कर देते जैसे प्राण तक अपने,
वैसे ही प्राणियों के कल्याण हेतु,
जलरूपी प्राण बादलों के लगे बरसने ।

गर्मी से सूख गयी थी जो पृथ्वी,
हरी-भरी हो गयी जल से सिंचकर,
जैसे तपस्या से दुर्बल हुआ शरीर,
हृष्ट-पुष्ट हो जाता फल पाने पर ।

पाखण्ड मतों का प्रचार हो जाता,
जैसे कलियुग में पाप की प्रबलता से,
वैसे ही जुगनू अब चमकने लग गए,
सायंकाल, ग्रह और तारों के छिपने से ।

चुपचाप सो रहे थे जो मेंढक,
करते टर्र-टर्र, बादलों के गरजने से,
जैसे वेदपाठ करने लगते ब्रह्मचारी,
नित्य-नियम से निवृत हो गुरुआज्ञा से ।

जेठ-आषाढ़ में जो सूख चली थीं,
बहने लगीं वो नदियाँ तट तोड़कर,
जैसे अजितेन्द्रिय पुरुषों की सम्पत्ति,
लुट जाती व्यर्थ ही कुमार्ग में लगकर ।

कहीं-कहीं हरी घास की हरियाली,
लालिमा कहीं-कहीं बीरबहूटियों की,
कहीं बरसाती कुकुरमुत्तों की सफेदी,
मानों रंग-बिरंगी सेना राजा की ।

फूले न समाते किसान आनन्द से,
फसलों से भरे-पूरे खेत देखकर,
पर धनिकों के चित्त में जलन हो रही,
रख सकेंगे अब इन्हें वश में क्योकर ?

सभी प्राणियों की सुन्दरता बढ़ गयी,
नये बरसाती जल के सेवन से,
बाहर-भीतर दोनों रूप सुघड़ हो जाते,
ज्यों भगवान् की सेवा करने से ।

और भी क्षुब्ध हो उठा उत्ताल समुद्र,
अब उफनती नदियों के संगम से,
जैसे वासनायुक्त योगी का चित्त,
विचलित हो जाता, विषयों से ।

व्यथा नहीं होती कोई पर्वतों को,
मूसलाधार वर्षा सहने पर भी,
जैसे भगवान को समर्पित भक्त,
होते नहीं व्यथित कैसे भी ।

भूल गए वो मार्ग घास छाने से,
होते नहीं थे जो कभी साफ़,
जैसे वेदाभ्यास न करने से,
द्विजाति को वेद नहीं रहते याद ।

यद्दपि बादल हैं बड़े परोपकारी,
पर बिजलियाँ उनमें स्थिर नहीं रहती,
जैसे चपल अनुरागिनी, कामिनी स्त्रियाँ,
गुणियों संग भी स्थिरभाव से नहीं रहती ।

मेघों के गर्जन-तर्जन से भरे आकाश में,
बिना प्रत्यंचा के इन्द्रधनुष ऐसे शोभ रहा,
जैसे त्रिगुणों से क्षोभित विश्व के बखेड़े में,
निर्गुण ब्रह्म निरन्तर शोभायमान हो रहा ।

यद्दपि चाँदनी में दिखते हैं बादल,
पर ढक लेते वे ही चाँद को ऐसे,
पुरुष के आभास से आभासित अहंकार,
ढक लेता स्वयं पुरुष को ही जैसे ।

कुहक रहे मोर मेघों को देख,
भक्तों को देख गृहस्थ खुश होते जैसे,
पल्लवित, फलित हो रहे वृक्ष,
फल पाकर सकाम तपस्वी होते जैसे ।

अशान्त होने पर भी जाते नहीं सारस,
तालाबों का तट छोड़ एक भी क्षण को,
जैसे विषयी पुरुष छूटते नहीं झंझटों से,
फिर भी पड़े रहते हैं घरों में ही वो ।

मूसलाधार वर्षा से टूट-फूट जाते हैं,
नदियों के बाँध और मेड़ें खेतो की,
जैसे कलियुग में मिथ्या मतवादों से,
ढीली पड़ जाती मर्यादा वैदिक मार्ग की ।

वायु की प्रेरणा से घने बादल,
अमृतमय जल की वर्षा करने लगते,
जैसे ब्राह्मणों की प्रेरणा से धनी लोग,
दान दे लोगों की अभिलाषा पूरी करते ।

वर्षा ऋतु में वृन्दावन शोभित हो रहा,
पके हुए खजूर और जामुनों से लदा,
कृष्ण, बलराम गौओं और ग्वालों संग,
वन में जा निरखते मनलुभावनी छटा ।

वर्षा ऋतु गयी, शरद ऋतु आ गयी,
बादल छट गये, वायु मंद हो गयी,
शरद ऋतू में कमलों की उत्पत्ति से,
जलराशियों में निर्मलता आ गयी ।

शरद ऋतु बढ़े जीव नष्ट कर देती,
मटमैलापन जल का, पृथ्वी का कीचड़,
जैसे भगवद भक्ति नष्ट कर देती,
सब लोगों के सभी अशुभों को झटपट ।

अपने सर्वस्व, जल का दान कर बादल,
उज्ज्वल कान्ति से होने लगे सुशोभित,
जैसे घर-परिवार, लोक-परलोक आदि का,
परित्याग कर सन्यासी होते सुशोभित ।

कहीं-कहीं झरते पर्वतों से झरने,
जैसे सुपात्रों को ज्ञान-दान देते ज्ञानी,
छोटे गड्ढ़ों का पानी सूखता दिन भर,
जैसे क्षण-क्षण आयु क्षीण करते प्राणी ।

थोड़े जल में रहनेवाले जीवों को,
सताने लगीं सूर्य की प्रखर किरणें,
पृथ्वी छोड़ने लगी अपना कीचड़,
घास-पात लगे अपनी कचाई छोड़ने ।

शरद ऋतू में समुद्र का जल,
हो गया स्थिर, गम्भीर और शान्त,
जैसे मन के नि:संकल्प हो जाने पर,
योगी कर्मकाण्ड छोड़ हो जाता शान्त ।

खेतों की मेड़ मजबूत कर किसान,
जल का खेतों से बहना लगे रोकने,
जैसे योगी इन्द्रियनिग्रह, प्रत्याहार से,
क्षीण होते ज्ञान की रक्षा लगते करने ।

कड़ी धूप दिन में पर रातें सुहानी,
तारों की रौशनी से आसमान जगमगाता,
यदुवंशियों के बीच जैसे भगवान श्रीकृष्ण,
तारों के बीच पूर्ण चाँद पूर्णिमा का ।

कामना करने लगे वंशवृद्धि की प्राणी,
पकने लग गया अनाज खेतों में,
वर्षा में रुके पथिक फिर निकल चले,
श्रीकृष्ण, बलराम आनन्द धाम ब्रज में ।

वेणुगीत

बड़ा सुन्दर हो रहा था वह वन,
वायु सनी हुई कमलों की गन्ध से,
जगह-जगह गुनगुना रहे मतवाले भौंरें,
सारा वन चहक रहा कलरव से ।

उस सुन्दर वन में गौएँ चराते,
छेड़ दी धुन बंसी की कान्हा ने,
तीनों लोकों को सम्मोहित करती,
प्रवेश कर गयी गोपियों के मन में ।

वंशी का स्मरण होते ही उन्हें,
विकल कर गयी कृष्ण की चितवन,
भौहों के इशारे, मधुर मुस्कान,
मिलने की आकांक्षा हो उठी गहन ।

निकल गया मन उनका हाथ से,
मन-ही-मन पहुँच गयीं कृष्ण के पास,
निहार रहीं वे छवि कृष्ण की,
असमर्थ संभाल रखने में होशो-हवास ।

जड़-चेतन, समस्त भूतों का मन,
चुरा लेती है यह ध्वनि वंशी की,
कर रहीं गोपियाँ आपस में चर्चा,
नटखट कान्हा के प्रेमपाश में बंधी ।

कहने लगीं, हमने तो बस समझा,
इसे ही आँखों के होने की सफलता,
तिरछी चितवन से जब वे देख रहे हों,
देखती रहें मुख हम कृष्ण, बलराम का ।

सजे हुए मोरपंख और फूलों से,
श्रीकृष्ण किये हुए पीताम्बर धारण,
और गोरवर्ण निलाम्बरधारी बलराम,
दोनों की छटा का कैसे हो वर्णन ?

छेड़ देते गोष्ठी में ग्वालबालों की,
ये दोनों जब कोई तान मधुर सी,
ऐसा लगता है मानों दो चतुर नट,
दिखा रहे हों पराकाष्ठा अभिनय की ।

न जाने क्या साधन-भजन कर चुका,
ये वेणु जो रहता अधरों पर टिका,
दामोदर के अधरों का सारा रस,
पीकर भी सदा अतृप्त ही रहता ।

कर रहा है अपनी कीर्ति का विस्तार,
यह बड़भागी वृन्दावन बैकुण्ठलोक तक,
चिन्हित हो श्रीकृष्ण के चरणकमलों से,
अपने सौभाग्य की महत्ता कर रहा प्रकट ।

वंशी की तान सुन मूढ़ हरिनियाँ भी,
मृगों के साथ आ जातीं पास कृष्ण के,
बड़ी-बड़ी आँखों से निहार मोहन को,
निछावर हो जाती चरणों में कृष्ण के ।

हमारे भाग्य कहाँ इन हरिनियों से,
कि निछावर हो जाएँ हम कृष्ण पर,
स्वर्ग की देवियाँ भी सुध-बुध खो देतीं,
गिर जाते पुष्प और वस्त्र पृथ्वी पर ।

यहाँ तक की गौएँ भी मधुर संगीत सुन,
आनन्द के आँसू छलकाने लगतीं नेत्रों से,
बछड़ों से भी दूध पीते न उगलते बनता,
खड़े ही रह जाते वो ठगे हुओ के जैसे ।

वृन्दावन के पक्षियों को कैसे कहें पक्षी,
बड़े-बड़े ऋषि-मुनि जन्में हैं पक्षी बन,
वृक्षों पर चुपचाप बैठकर निहारते रहते,
निर्निमेष नयनों से श्रीकृष्ण की चितवन ।

अरी सखी ! जीवों की क्या बात करती हो,
क्यों नहीं देखती इन जड़ नदियों के भँवर,
तीव्र आकांक्षा श्यामसुन्दर से मिलन की,
जिसके वेग से रह गया इनका प्रवाह रुककर ।

वृन्दावन और यहाँ के चराचर ही क्या,
मेघों के ह्रदय में भी प्रेम उमड़ आता,
जब देखते कृष्ण-बलराम धूप में चलते,
तान देते अपना शरीर ही बनाकर छाता ।

जब करते नन्हीं-नन्हीं फुहियों की वर्षा,
लगता जैसे श्वेत कुसुम चढ़ा रहे,
लेकिन सच में तो जल वर्षा के बहाने,
वे तो अपना सर्वस्व ही लुटा रहे ।

भीलनियों का सौभाग्य भी देखो,
कान्हा के चरण जो पड़ते घास पर,
उस पर लगी केसर वे चुन लेती,
मलती उसे मुख और वक्ष: स्थल पर ।

धन्य हैं गिरिराज गोवर्धन पर्वत,
कृष्ण और बलराम के छूते चरण,
कन्द-मूल फल और झरनों का जल,
प्रेमसहित करते वे उन्हें अर्पण ।

चीरहरण

हेमन्त ऋतु के प्रथम महीने मार्गशीर्ष में,
कात्यायनी का व्रत करने लगीं कुमारियाँ,
पूर्व दिशा में लालिमा छाने से पहले ही,
यमुना में स्नान कर लेतीं वो कुमारियाँ ।

तट पर ही बालू से मूर्ती बना,
देवी की कर लेतीं थी पूजा-अर्चना,
श्रीकृष्ण को ही उनका पति बनाएँ,
देवी से नित्य करतीं थी आराधना ।

निछावर कर चुकीं थी श्रीकृष्ण को मन,
करती रहतीं थी वे उनके गुणगान,
यों एक महीने, प्रतिदिन उषाकाल में,
यमुना में कर रहीं थी वे स्नान ।

प्रतिदिन की ही भाँति एक दिन वे,
वस्त्र उतार मग्न हो गयीं जल-क्रीडा में,
श्रीकृष्ण[16] से छिपी न थी उनकी अभिलाषा,
सो पहुँच गए वे ग्वालबालों के साथ में ।

स्वयं अकेले ही उठा गोपियों के वस्त्र,
फुर्ती से चढ़ गए एक कदम्ब पेड़ पर,
फिर बोले हँसी करते कि अरी कुमारियों !
ले लो अपने-अपने वस्त्र यहाँ आकर ।

मन-ही-मन निछावर हो चुकीं गोपियाँ,
सकुचाकर, परस्पर देख मुस्कुराने लगीं,
कंठ तक डूबीं, थर-थर काँपते हुए,
गोपियाँ श्रीकृष्ण से विनती करने लगीं ।

हे कृष्ण ! ऐसी अनीति मत करों,
हमारे वस्त्र हमें वापस लौटा दो,
ठिठुर रही हैं हम ठण्ड के मारे,
तुम्हारी दासी, करेंगी जो तुम कहो ।

तुम तो भलीभांति जानते हो धर्म,
अब और न दो तुम हमें कष्ट,
दे दो हमारे वस्त्र हमें वापस,
वरना नन्दबाबा से करेंगी शिकायत ।

बोले श्रीकृष्ण, जो मानती हो दासी,
करना चाहती मेरी आज्ञा का पालन,
तो फिर जो मैं कहता हूँ वो करो,
यहाँ आओ कर लो अपने वस्त्र धारण ।

[16] श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शंकर आदि योगेश्वरों के भी ईश्वर होने के कारण सब के मन की बात जानते हैं और उसे पूरी करने में समर्थ हैं ।

तब वे कुमारियाँ बाहर निकलीं[17],
दोनों हाथों से अपने अंग छिपाकर,
प्रसन्न हुए कृष्ण उनके शुद्ध भाव से,
रख लिए उनके वस्त्र अपने कंधे पर ।

बोले, निभाया अच्छी तरह व्रत तुमने,
पर विवस्त्र हो जल में स्नान किया,
इस तरह वरुणदेव और यमुनाजी का,
तुम कुमारियों ने अपराध किया ।

सो इस दोष की शान्ति के लिए,
अपने दोनों हाथ सिर से लगाकर,
झुककर करो प्रणाम दोनों को,
और ले जाओ अपने वस्त्र आकर ।

सुनकर भगवान श्रीकृष्ण की बात,
सच में त्रुटि हो गयी, समझा उन्होंने,
सो समस्त कर्मों के साक्षी श्रीकृष्ण को,
हाथ जोड़कर नमस्कार[18] किया उन्होंने ।

सारी त्रुटियों और अपराधों का मार्जन,
हो जाता श्रीकृष्ण को नमस्कार करने से,
अपनी आज्ञा का अनुपालन होता देख,
बहुत प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण उन सबसे ।

उमड़ आई उनके हृदय में करुणा,
कर दिए वापस कृष्ण ने वस्त्र उनके,
छल किया, उन्हें ऊँगली पर नचाया,
पर और प्रेम से भर गए हृदय उनके ।

धारण कर लिए वस्त्र गोपियों ने,
पर चित्त ऐसे हो रहा कृष्ण के वश में,
एक भी कदम वे चल न सकीं,
लजीली चितवन से निहारती रहीं उन्हें ।

श्रीकृष्ण जानते थे गोपियों का संकल्प,
व्रत रखा कि चरणस्पर्श मिले उनका,
कहा, होगा तुम्हारा संकल्प सत्य,
कर सकोगी तुम सब मेरी पूजा ।

जिनके मन और प्राण समर्पित मुझे,
कामनाएँ भोगों में प्रवृत नहीं करती,
जैसे भुने हुए या उबाले हुए बीजों से,
कोई पौध अंकुरित हुआ नहीं करती ।

सो लौट जाओ अब तुम घर को,
सिद्ध हो गयी है तुम्हारी साधना,
आनेवाली शरद ऋतु की रात्रियों में,
पूरी होगी तुम्हारी यह मनोकामना ।

ग्रीष्म ऋतु में गौएँ चराते एक दिन,
निकल गए कृष्ण के साथ सब दूर,
राहत मिली वृक्षों की छाया से तो,
कृष्ण ने की उनकी प्रशंसा भरपूर ।

कहा, उसका ही जीना है सार्थक,
जो लगा दूसरों की भलाई करने में,
जैसे वृक्ष अपने फूल, पत्ते, छाल लकड़ी
अपना सर्वस्व बाँट देते लोगों में ।

---

[17] गोपियों का विवस्त्र ही श्रीकृष्ण के सम्मुख आना-भक्त के लिए उसका स्वयं का अस्तित्व, उसका अपना होना, एक बहुत महीन पर्दा है, जिसे हटाए बिना समर्पण पूर्ण नहीं कहा जा सकता । भगवान तो वैसे भी सर्वज्ञ हैं, उनसे कुछ छिपा नहीं, लेकिन भक्त के लिए भी इस भाव को आत्मसात करना आवश्यक है । ब्रज के गोप-गोपियों के रूप में संत-महात्माओं ने ही जन्म लिया था, श्रीकृष्ण ने इस तरह उनके देहाभिमान का भाव भी मिटा दिया ।

[18] श्रीकृष्ण को नमस्कार-यद्दपि श्रीकृष्ण ने गोपियों को वरुण देव व यमुनाजी को नमस्कार करने को कहा था, लेकिन गोपियों ने श्रीकृष्ण को ही समस्त चराचर का सारभूत जान उन्हें नमस्कार किया और श्रीकृष्ण ने इसे स्वीकार भी किया । इससे गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति क्या भाव था, विदित होता है ।

यज्ञपत्नियों पर कृपा

भूख लग आई जो ग्वालबालों को,
तो कृष्ण, बलराम से करी प्रार्थना,
कृष्ण बोले कुछ दूरी पर ब्राह्मण,
आंगिरस यज्ञ की कर रहे साधना ।

जाकर उनकी यज्ञशाला में कहना,
कृष्ण, बलराम के भेजे आए हैं हम,
कहना और कुछ नहीं चाहते,
कुछ भात-भोजन ही बस चाहते हम ।

वहाँ ब्राह्मणों को दण्डवत प्रणाम कर,
ग्वालबालों ने सुनाया सन्देश कृष्ण का,
भगवान् ने अन्न माँगा है सुनकर भी,
ब्राह्मणों ने कर दिया उसे अनसुना ।

वे चाहते थे स्वर्गादि तुच्छ फल,
कर रहे जिसके लिए बड़े-बड़े कर्मों को,
सच में ज्ञानदृष्टि से तो थे वे बालक,
पर बड़ा ज्ञानवृद्ध समझते थे स्वयं को ।

कर्ता, कार्य, कारण आदि सभी रूपों मे,
यद्दपि प्रकट हो रहे स्वयं भगवान्,
पर अपने को शरीर ही मान बैठे जो,
किया नहीं उन्होंने प्रभु का सम्मान ।

लौटकर बताया निराश ग्वालबालों ने,
कृष्ण बोले, असफलता मिलती ही रहती,
इस बार जाकर माँगो उनकी पत्नियों से,
जितना चाहो तुम्हें वो भोजन देंगी ।

कहना राम और श्याम आए हैं,
बड़ा प्रेम करती हैं वे मुझसे,
उनका मन तो लगा रहता है,
सदा सर्वदा मुझमें सभी तरह से ।

जाकर जो बताया द्विजपत्नियों को,
कृष्ण, बलराम आए हुए हैं पास में,
तुरन्त सब भोजन सामग्री ले दौड़ीं वे,
यद्दपि रोकना चाहा उनके पतियों ने ।

बहुत दिनों से सुन रहीं थे वे,
श्रीकृष्ण की लीलाओं के बारे में,
आज जो मौक़ा मिला दर्शन का,
अगाध प्रेम उभर आया हृदय में ।

देखा नव-पल्लवित अशोक वन में,
शोभायमान हो रहे कृष्ण और बलराम,
अंग-अंग से झलकती अप्रतिम सुन्दरता,
मुख पर खिली मन्द-मन्द मुसकान ।

मन में बसाकर वह छवि मनोहर,
शीतल किया उन्होंने अपने मन को,
स्वागत, अभिनन्दन कर उनका,
श्रीकृष्ण ने कहा उन्हें लौट जाने को ।

कहा, अपनी भलाई जानने वाले सुजान,
करते मुझसे प्रेम अपने प्रियतम सा,
कामना, संकोच, द्वैत, दुविधा से रहित,
प्रेम करते मुझे वो अपनी आत्मा सा ।

उचित ही है तुम्हारा यहाँ आना,
पर अब लौट जाना चाहिए तुम्हें,
तुम्हारे पति गृहस्थ ब्राह्मण हैं,
यज्ञ पूर्ण करने हेतु ढूंढेंगे तुम्हें ।

सुनकर यह आज्ञा श्रीकृष्ण की,
वे बोलीं हम हैं शरण आपकी,
घर-बार सगे-सम्बन्धी त्याग प्रभु,
ली है हमने चरण-शरण आपकी ।

एक बार जो आपको प्राप्त हो जाता,
उसके लिए श्रुतियाँ कहती हैं ऐसा,
नहीं संसार में फिर लौटना पड़ता,
सत्य कीजिए प्रभु वेदवाणी का कहा ।

स्वीकारेंगे नहीं हमें अब घरवाले,
आ पड़ी हैं हम चरणों में आपके,
हमें और किसी का सहारा नहीं,
अब निर्णय है हाथ में प्रभु आपके ।

बोले श्रीकृष्ण, हे बड़भागिनी देवियों !
कोई भी करेगा न तुम्हारा तिरस्कार,
प्राप्त कर ली है तुमने मेरी भक्ति,
सब ओर पाओगी तुम आदर-सत्कार ।

लौट गयीं वे स्त्रियाँ अपने-अपने घर,
यज्ञ पूरा किया पतियों ने उनके साथ,
दोषदृष्टि करी न तनिक भी उनमें,
कृष्ण-कृपा से बन गयी सब बात ।

रोक लिया था एक ब्राह्मणपत्नी को,
बलपूर्वक उसके पति ने घर में,
श्रीकृष्ण का रूप वर्णन स्मरण कर,
त्याग दी देह उसने उनके प्रेम में ।

भगवद प्रेम देख पत्नियों के हृदय में,
उन ब्राह्मणों को हुआ बड़ा पछतावा,
जान गए वे श्रीकृष्ण हैं स्वयं भगवान,
व्यर्थ लगा अपनी विद्या का दिखावा ।

भगवद चरणों में प्रेम के बिना,
क्या मूल्य जप, तप, यज्ञादि का,
प्रशंसा कर रहे अपनी पत्नियों की,
मार्ग चुना जिन्होंने प्रभु प्रेम का ।

गोवर्धन पूजा

एक दिन देखा सब गोप लगे,
तैयारियाँ इन्द्र-यज्ञ की करने में,
हालांकि सब जानते थे श्रीकृष्ण,
फिर भी लगे उन लोगों से पूछने ।

पुछा क्या उत्सव मना रहे आप,
यदि बता सकें तो बताएँ मुझे,
अपनों से कुछ छिपाया नहीं जाता,
सफल होता कर्म समझ-बूझ से ।

नन्दबाबा बोले मेघों के स्वामी इन्द्र,
जीवन देने वाला जल बरसाते,
सो हम उन मेघपति इन्द्रदेव की,
यज्ञों द्वारा पूजा किया करते ।

जो सामग्री प्रयोग होती यज्ञ में,
वह सामग्री भी इन्द्र ही देते,
यज्ञ करने के बाद जो बच रहता,
उससे हम जीवन यापन करते ।

इन्द्रदेव की यज्ञ से पूजा करना,
चला आया हमारी कुल-परम्परा से,
अकारण परम्परागत धर्म छोड़ना,
मंगल नहीं होता ऐसा करने से ।

इन्द्र को क्रोध दिलाने के लिए,
बोले कृष्ण, महत्वपूर्ण हैं कर्म,
जीवन-मरण, सुख-दुःख आदि,
सबको निर्धारित करते हैं कर्म ।

कर्मों को ही सब कुछ न मान,
यदि माना जाए फलदाता ईश्वर,
तो वो भी कर्मों का ही फल देगा,
बिना कर्म, कुछ न दे सकता ईश्वर ।

जब सब भोग रहे कर्मों का फल,
फिर हमें क्या आवश्यकता इन्द्र की,
जब कर्म का फल बदल नहीं सकता,
फिर कर्म को छोड़, जरूरत किस की ?

स्वभाव का अनुसरण करते प्राणी,
यह सारा जगत स्थित है स्वभाव में,
अपने कर्मों के अनुसार ही जीव,
जन्मता रहता भिन्न-भिन्न देह में ।

शत्रु, मित्र, उदासीनता का भाव,
कर्मानुसार ही ऐसा करता व्यवहार,
कर्म ही गुरु, कर्म ही ईश्वर,
कैसे हो कर्म की महत्ता का विचार ?

वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्मों का,
पालन करते करे आदर कर्म का,
जिसके द्वारा सुगम चलती जीविका,
मनुष्य के लिए पूज्य वही देवता ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र,
वर्ण-धर्मानुसार अपनी जीविका चलाते,
हम वैश्य हैं, उनकी वृति के अनुसार,
गौपालन ही करते आए सदा से ।

उत्पति, स्थिति और अन्त संसार का,
प्रकृति के तीनों गुण हैं इनके कारण,
रजोगुण से प्रेरित मेघ जल बरसाते,
इन्द्र का इस सबसे क्या प्रयोजन ?

हमारे पास न राज्य, नगर न घर,
वन और पहाड़ ही हैं घर हमारे,
सो क्यों न हम गौओं, ब्राह्मणों का,
और गिरिराज पर्वत का यजन करें ?

इन्द्रयज्ञ हेतु की जो सामग्री एकत्रित,
अनुष्ठान करें उससे ही उसका,
सब तरह के पकवान बनाएँ,
सारा दूध इकठ्ठा कर ब्रज का ।

हवन करवाया जाए ब्राह्मणों द्वारा,
गौएँ इत्यादि दी जाएँ दक्षिणा उनको,
औरों को भी यथायोग्य दान देकर,
भोग लगाएँ गोवर्धन पर्वत को ।

इसके बाद ठीक से खा-पीकर,
और अच्छी तरह से सज-सजाकर,
गौ, ब्राह्मण और गिरिराज को,
करें प्रणाम उनकी परिक्रमा कर ।

इन्द्र का घमण्ड चूर-चूर करने की,
इच्छा थी यह भगवान कृष्ण की,
नन्दबाबा आदि गोपों ने सुनकर,
बड़ी प्रसन्नता से हामी भर दी ।

किया गया फिर सब वैसे ही,
जिस तरह कहा था श्रीकृष्ण ने,
गौओं को आगे कर गिरिराज की,
फिर करी परिक्रमा सब लोगों ने ।

गोपों को विश्वास दिलाने के लिए,
प्रकटे श्रीकृष्ण दूसरा विशाल रूप धर,
और आरोगने लगे वे सारी सामग्री,
'मैं गिरिराज हूँ', इस प्रकार कहकर ।

अपने उस स्वरूप को सबके साथ,
प्रणाम किया स्वयं उन्होंने भी,
कहने लगे देखो कैसा आश्चर्य है,
प्रकटे गिरिराज, कृपा हम पर की ।

गोवर्धन धारण

इन्द्र को जब यह पता चला,
कि बन्द कर दी गयी पूजा उनकी,
बहुत क्रोधित हुआ नन्द आदि पर,
सोचने लगा उन्हें दण्डित करने की ।

तिलमिलाकर क्रोध से इन्द्रदेव ने,
आह्वान किया सांवर्तक मेघों का,
और कहा उन प्रलयंकारी मेघों को,
ब्रज पर जाकर करें भयंकर वर्षा ।

बड़ा घमण्ड था उसे इन्द्रपद का,
सह न सका ब्रजवासियों की उपेक्षा,
सोचा जंगली ग्वालों को इतना घमण्ड,
सचमुच ही है उन्हें यह धन का नशा ।

एक साधारण मनुष्य कृष्ण के बल,
मुझ देवराज का कर डाला अपमान,
वह बकवादी, अभिमानी, मूर्ख कृष्ण,
समझता है ज्ञानी, पर सच में नादान ।

सहारा लेकर उसी कृष्ण का,
अवहेलना की इन अहीरों ने मेरी,
कहा बादलों को अब तुम जाकर,
मिटा दो उनका घमंड और हेकड़ी ।

मैं भी तुम्हारे ही पीछे-पीछे,
आता हूँ ऐरावत हाथी पर चढ़कर,
नन्द के ब्रज का नाश करने को,
महापराक्रमी मरुद्गणों को लेकर ।

प्रलयकारी मेघों को आज्ञा देकर,
खोल दिए उनके बन्धन इन्द्र ने,
बड़े वेग से वे चढ़ आए ब्रज पर,
और लगे मूसलाधार जल बरसाने ।

चमकने लगी बिजलियाँ चहूँ ओर,
बादल टकराकर लगे कड़कने,
और प्रचण्ड आँधी की प्रेरणा पा,
बड़े-बड़े ओले वो लगे बरसाने ।

जब दल के दल बादल आ-आकर,
लगे खंभे सी जल धारा बरसाने,
पानी-पानी हो गयी सारी ब्रजभूमि,
ऊँचा-नीचा कुछ न आता समझ में ।

मूसलाधार वर्षा और झंझावात से,
ब्रजवासी और पशु लगे ठिठुरने,
अत्यंत व्याकुल हो ठंड के मारे,
गए सभी श्रीकृष्ण की शरण में ।

विनती कर कहने लगे कृष्ण से,
रक्षक हो तुम ही एकमात्र हमारे,
इन्द्र का क्रोध असहनीय हो चला,
प्राणों पर बन आई वर्षा के मारे ।

जान चुके थे कृष्ण इन्द्र की करतूत,
बिन मौसम की बरसात कर रहा,
ऐश्वर्य और पद के अभिमान वश,
सत्वगुण से च्युत व्यवहार कर रहा ।

सोचा, उचित नहीं देवताओं के लिए,
करें इस तरह अपना क्रोध प्रकट,
अपनी योगमाया से मान भंग कर,
उचित ही है इन्द्र को देना सबक ।

तब एक ही हाथ से श्रीकृष्ण ने,
उखाड़ लिया गोवर्धन पर्वत को,
और जैसे बालक बरसाती छत्ता ले लेते,
वैसे ही हाथ में उठा लिया पर्वत को ।

कहा माता, पिता और ब्रजवासियों को,
आकर बैठ जाएँ पर्वत के गढ्ढे में,
गिरेगा नहीं उनके हाथ से वह पर्वत,
लाएँ न किसी तरह की शंका मन में ।

सबको आश्वासन दिया, ढाढ़स बंधाया,
कहा, तुम्हें बचाने को युक्ति रची मैंने,
अपनी गौओं, सामान और छकड़ों को ले,
तब सब ब्रजवासी आ घुसे उस गढ्ढे में ।

सात दिन तक सब कुछ छोड़ ,
एक पग तक भी हिले न कृष्ण,
ना कुछ खाया, ना कुछ पीया,
गोवर्धन धारण किए रहे कृष्ण ।

श्रीकृष्ण की योगमाया का प्रभाव देख,
इन्द्र के आश्चर्य का रहा न ठिकाना,
हो न सका उनका संकल्प पूरा,
रोका मेघों का जल बरसाना ।

जल बरसना थम गया देख,
कहा ब्रजवासियों को श्रीकृष्ण ने,
निडर हो सब निकल आएँ बाहर,
फिर पर्वतराज को टिका दिया उन्होंने ।

प्रेम के आवेग से अभिभूत ब्रजवासी,
करने लगे अभिनन्दन कृष्ण का,
बड़े-बूढ़े उन्हें आशीर्वाद दे रहे,
देवता करने लगे फूलों की वर्षा ।

गोप कर रहे चर्चा आपस में,
बड़े अलौकिक हैं कर्म कृष्ण के,
कमल धारण कर ले कोई गजराज,
वैसे ही कृष्ण अविचल पर्वत उठा के ।

बस सात ही वर्ष का बालक है यह,
बचपन से अद्‌भुत कर्म करता आया,
वध किया अनेक दैत्य-राक्षसों का,
दावानल और कालिय से भी बचाया ।

तब बोले नन्दबाबा, सुनो ध्यान से,
गर्गाचार्यजी ने कहा था ऐसा ही,
युग-युग में धारण करता है शरीर,
और जन्म लेता है यह इसलिए ही ।

भाग्यवान हैं इससे प्रेम करने वाले,
कोई शत्रु जीत नहीं सकता उन्हें,
कहा था नारायण सम है यह बालक,
सो इसे उनका ही अंश मानता हूँ मैं ।

नन्दबाबा के मुख से सब सुनकर,
जाता रहा विस्मय गोपों का,
भूरि-भूरि प्रशंसा की कृष्ण की,
और सराहा भाग्य नन्द का ।

श्रीकृष्ण का अभिषेक

कामधेनु बधाई देने आई गोलोक से,
और क्षमा माँगने आए इन्द्रदेव,
अपने मुकुट से चरणस्पर्श किया,
बहुत ही लज्जित थे इन्द्रदेव ।

जाता रहा घमण्ड इन्द्र का,
करने लगे वे स्तुति कृष्ण की,
परम शान्त, ज्ञानमय, गुणों से परे,
अज्ञान से आपमें प्रतीति होती इनकी ।

जब कोई सम्बन्ध नहीं आपका,
अज्ञान से प्रतीत होनेवाली देहादि से,
फिर देहादि से होने वाले दोष,
क्रोध, लोभादि आप में हो सकते कैसे ?

यद्‌दपि कोई सम्बन्ध नहीं आपका,
अज्ञान और उससे होने वाले जगत से,
धर्मरक्षा और दुष्टों के दमन हेतु,
फिर भी आप अवतार ग्रहण करते ।

पिता, गुरु और स्वामी जगत के,
नियन्त्रणकर्ता दुष्कर काल भी आप,
लीला शरीर धारण कर हम जैसों का,
मान मर्दन करते हैं, हे प्रभु ! आप ।

ऐश्वर्य मद से चूर होकर किया,
हे प्रभु ! मैंने आपका अपराध,
क्षमा करें और कृपा करें, हे प्रभु !
अब फिर न करूँ ऐसा अपराध ।

हुआ आपका यह अवतार इसलिए,
कि असुरों को मार मोक्ष दिया जाए,
और आपके सेवक, भक्तजनों को,
अभय मिले, उनकी रक्षा की जाए ।

नमस्कार करता हूँ, मैं आपको भगवन्,
सर्वान्तर्यामी, पुरुषोत्तम, सर्वात्मा वासुदेव,
यदुवंशियों के एकमात्र स्वामी, भक्तवत्सल,
नमस्कार आपको, हे सर्व देवों के देव ।

स्वेच्छा से धारण किया आपने यह शरीर,
विशुद्ध ज्ञानस्वरूप यह शरीर भी आपका,
बड़ा अनुग्रह किया प्रभु आपने मुझ पर,
मेरे घमण्ड की जड़ को ही उखाड़ फेंका ।

भगवन् तब यह बोले हँसते से,
तुम्हारा यज्ञ भंग कर अनुग्रह किया,
ऐश्वर्य और धन सम्पत्ति का मद,
किसको इसने अंधा ना किया ?

मंगल हो तुम्हारा, अमरावती जाओ,
मेरी सन्निधि का स्मरण करते रहना,
और अपने अधिकार के अनुसार, इन्द्र !
अपनी मर्यादा का पालन करते रहना ।

तभी कामधेनु कहने लगी, हे प्रभु !
आपको रक्षक पा, हम हुए सनाथ,
इन्द्र त्रिलोकी का इन्द्र हो तो हो,
हमारे इन्द्र तो आप हैं, हे नाथ !

अवतरित हुए पृथ्वी का भार उतारने,
हम गौएँ करेंगी अभिषेक आपका,
किया दूध से अभिषेक कामधेनु ने,
इन्द्र ने किया दिव्य जल से उनका ।

किया 'गोविन्द' नाम से उन्हें सम्बोधित,
नारद आदि करने लगे प्रभु का यशगान,
आनन्दित हो नृत्य करने लगीं अप्सराएँ,
देवताओं ने पुष्पवर्षा कर किया गुणगान ।

तीनों लोकों में छा गया परमानन्द,
सब ओर सुख समृद्धि छा गयी,
बिना जोते-बोये हो गयीं फसलें,
प्रभुमय सारी सृष्टि हो गयी ।

वरुण पाश से नन्दबाबा की मुक्ति

कार्तिक शुक्ल एकादशी का व्रत रख,
नन्दबाबा गए यमुना में नहाने,
रात का वक़्त, असुरों की बेला,
पकड़ लिया उन्हें एक असुर ने ।

वरुण का दूत था वह असुर,
ले गया उन्हें उनके पास पकडकर,
बेचैन हो गए सब ब्रजवासी,
पुकारा कृष्ण, बलराम को रोकर ।

जान गए श्रीकृष्ण असुर की करतूत,
तुरन्त ही वरुणदेव के पास गए वो,
सारे जगत के प्रवर्तक भगवान को देख,
बड़ा आदर सत्कार किया, पूजा उनको ।

कहा, सफल हुआ मेरा जीवन,
सम्पूर्ण पुरुषार्थ हो गया प्राप्त,
क्योंकि आज आपके चरणों की,
सेवा का अवसर मुझे हुआ प्राप्त ।

भवसागर से पार होने का साधन,
जिसने भी पा लिए आपके ये चरण,
भक्तों के भगवान्, वेदान्तियों के ब्रह्म,
और योगियों के परमात्मा, आप श्रीकृष्ण ।

मेरा यह सेवक मूढ़ और अनजान,
अपने कर्तव्य को भी नहीं जानता,
ले आया आपके पिता को अनजाने,
हे प्रभु ! कीजिए हम दोनों पर कृपा ।

यों स्तुति कर किया उन्हें प्रसन्न,
श्रीकृष्ण पिता को ले लौटे ब्रज में,
वरुणलोक में कृष्ण की महिमा देख,
नन्दबाबा पड़ गए बड़े विस्मय में ।

जब बतलाया उन्होंने अन्य गोपों को,
समझने लगे वो श्रीकृष्ण को भगवान,
मन-ही-मन सोचने लगे क्या उन्हें भी,
अपना स्वधाम दिखलाएँगे श्रीभगवान ।

जान गए श्रीकृष्ण उनकी अभिलाषा,
कृपा से भर वे यों लगे सोचने,
अज्ञानवश कामनाओं के पीछे भाग,
जीव अनेक योनियों में लगता भटकने ।

परम दयालु भगवान श्रीकृष्ण ने,
दिखलाया उनको अपना परमधाम,
पहले साक्षात्कार करवाया ब्रह्म का,
फिर ब्रह्महृद ले गए, तब परमधाम ।

दिव्य भगवत्स्वरूप वह लोक देख,
नन्द आदि परमानन्द में मग्न हो गए,
मूर्तिमान वेद श्रीकृष्ण की स्तुति कर रहे,
यह देख वे सब बड़े विस्मित हो गए ।

रासलीला

किया था जिन रात्रियों का संकेत,
चीरहरण के समय श्रीकृष्ण ने,
सब की सब पुंजीभूत होकर,
आ गयीं उस रात्रि के रूप में ।

शरद ऋतु की थी वह दिव्य रात,
रासलीला का संकल्प किया कृष्ण ने,
अमना होने पर भी मन स्वीकारा,
गोपियों के प्रेमवश हो श्रीकृष्ण ने ।

भगवान के संकल्प करते ही तुरन्त,
चन्द्रदेव उदित हो गए पूर्व दिशा में,
शीतल चाँदनी, लालिमा बिखेर रहे,
पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रदेव गगन में ।

रंग गया था अनुराग के रंग में,
सारा वन उनकी कोमल किरणों से,
मानों उड़ेल दिया अमृत का समुद्र,
वन के कोने-कोने में किरणों से ।

सुगन्धित पुष्पों से लदा हुआ वन,
गूँज उठा कृष्ण की वंशी की धुन से,
ऐसी मधुर, मन मोहने वाली धुन,
जाता रहा गोपियों का मन हाथों से[19] ।

पहले ही कृष्ण में लगा हुआ था मन,
अब मर्यादा और संकोच भी जाता रहा,
पति रूप में पाना चाहती थीं कृष्ण को,
जिसके लिए उन्होंने करी थी साधना ।

सब कुछ छोड़ चल पड़ी गोपियाँ,
जो कर रहीं थी उसे वैसे ही छोड़,
घर-परिवार, बाल-बच्चे और पति,
सब भूल, खिचीं मुरलीधर की ओर ।

गौओं को दुहती, दूध औंटाती,
कोई पति को भोजन करवाती,
कोई बच्चों को दूध पिलाती,
कोई खुद चन्दन आदि लगाती ।

दौड़ पड़ी जो जैसे भी थी,
रुक न सकी वंशी की धुन सुन,
रोके न रुकीं किसी के रोके,
कौन गिने अब गुण अवगुण[20] ।

---

[19] नदी किनारे लगे वृक्ष का प्रतिबिम्ब नदी के जल में उल्टा दिखता है । इसी तरह जिनके हृदय विषय रुपी जल से भरे हुए हैं, उन्हें श्रीकृष्ण की यह लीला अन्यथा नजर आ सकती है । इसके वास्तविक भाव को ग्रहण करने के लिए चैतन्य महाप्रभु जैसे प्रेम व समर्पण का भाव अपेक्षित है ।

[20] गोपियाँ देह भाव का त्याग कर आत्मलीन अवस्था प्राप्त कर चुकीं थी, अत; अब उनके लिए देह सम्बन्धित कोई कर्तव्य शेष नही बचा था । गीता में भी कहा गया

जो गोपियाँ निकल न सकीं घर से,
तन्मय हो गयीं ध्यान में उनके,
असहय विरह, तीव्र वेदना के ताप से,
भस्म हो गए सब अशुभ संस्कार उनके ।

मन ही मन बड़े प्रेम से उन्होंने,
बड़े आवेग से किया कृष्ण का आलिंगन,
जो सुख और शान्ति मिली उन्हें उससे,
पुण्य संस्कार भी क्षय हो गए तत्क्षण ।

हालांकि जार भाव था उनका कृष्ण में,
पर श्रीकृष्ण तो हैं स्वयं भगवान्,
किसी भी भाव से आलिंगन उनका,
कर देता गुणमय शरीर से परित्राण[21] ।

प्रकृतिसम्बन्धी वृद्धि-विनाश आदि,
गुणगुणीभाव से रहित हैं श्रीभगवान,
समस्त गुणों के एकमात्र आश्रय वे,
लीला से जीवों का करते कल्याण ।

काम, क्रोध, भय, स्नेह, सौहार्द,
सब भाव स्वीकार करते भगवान,
जिस भी भाव से हो सम्बन्ध,
प्रभु से सम्बन्ध करता कल्याण ।

लौट जाने को कहा गोपियों को,
बोले कृष्ण, देख लिया तुमने वन,
तुम्हें न पाकर अपने घर में,
व्याकुल होंगे तुम्हारे सब परिजन ।

कुलीन और सती स्त्रियाँ हो तुम,
स्त्रीधर्म का पालन उचित है तुम्हें,
निन्दनीय है जार पुरुष की सेवा,
अपयश मिलता सब जगह उन्हें ।

मेरी लीला और गुणों के श्रवण से,
रूप के दर्शन, कीर्तन व ध्यान से,
प्राप्ति होती जैसे अनन्य प्रेम की,
नहीं होती प्राप्ति पास रहने से ।

उदास हो गयीं यह सुन गोपियाँ,
डूबने लगीं चिंता के अथाह सागर में,
नेत्रों से आँसू बहने लगे उनके,
यह निष्ठुर बात बड़ी बुरी लगी उन्हें ।

कहने लगीं, त्यागो नहीं हमें कृष्ण,
माना ठीक है जो कहा तुमने,
लेकिन तुम ही हो साक्षात् भगवान,
तुम्हें ही प्रियतम जाना हमने ।

हमें अनित्य पति पुत्रादि से क्या प्रयोजन,
तुम नित्य प्रिय, अपने ही आत्मा हो,
विरह-व्यथा से जलाकर अपने शरीर हम,
ध्यान से पा लेंगी तुम्हारे चरणकमलों को ।

लक्ष्मी को भी दुश्वार तुम्हारी चरणरज,
आयी हैं हम उसी चरणरज की आस ले,
जिसने भी ली तुम्हारे चरणों की शरण,
उसके सारे कष्ट मिटा दिए तुमने ।

घर, गाँव, कुटुम्ब सब कुछ छोड़,
आयी हैं तुम्हारे चरणों की शरण में,
इस चराचर जगत में कौन ऐसा,
मोह न लिया जिसे तुम्हारी छवि ने ?

छिपी नहीं हमसे यह बात कि तुम,
प्रकटे हो ब्रज का कष्ट मिटाने को,
विदित तुम्हारा दीन-दुखियों पर प्रेम,
अपना लो हमें भी, जीवनदान दो ।

सुन उनकी व्यथा और देख व्याकुलता,
भर गया श्रीकृष्ण का हृदय दया से,
वे आत्माराम, अपने आप में सम्पूर्ण,
देखने लगे उन्हें प्रेमभरी चितवन से ।

है कि स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता । उसे कर्म करने न करने से कोई प्रयोजन नहीं रहता ।

[21] अर्थात उन्होंने भगवान की लीला में सम्मिलित होने के लिए दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया ।

आनन्द से प्रफ्फुलित हो गोपियाँ,
घेरकर खड़ी हो गयीं श्रीकृष्ण को,
हो रहे थे वे इस तरह शोभायमान,
मानों तारिकाओं से घिरे चन्द्रमा हों ।

गोपियों के बीच विचरने लगे कृष्ण,
कभी गोपियाँ, कभी कृष्ण लगते गाने,
फिर सुशोभित यमुना के पुलिन पर,
आनन्द विहार गोपियों संग लगे करने ।

श्रीकृष्ण का अलौकिक संग पा,
गोपियों के मन में आ गया अभिमान,
सोचने लगीं हम हैं सर्वश्रेष्ठ,
कौन स्त्री हो सकती हमारे समान ?

श्रीकृष्ण ने देखा इन्हें मान हो आया,
तो उनके बीच से हो गए अन्तर्धान,
उन्हें अपने बीच न पाकर वे हो गयीं,
गजराज के बिना हथिनियों के समान ।

जलने लगे उनके हदय विरह से,
चुरा लिया था उनका चित्त कृष्ण ने,
उनकी क्रीड़ाएँ, भाव-भंगिमाएँ याद कर,
वे मतवाली हो गयीं उनके प्रेम में ।

उनकी चेष्टाओं का अनुकरण कर,
बन गयीं गोपियाँ उनके ही समान,
खुद को भूल श्रीकृष्णस्वरूप हो गयीं,
और खुद को ही श्रीकृष्ण बैठीं मान ।

करने लगीं गुणगान श्रीकृष्ण का,
ढूँढने लगीं वे उन्हें वन-वन में,
जा रहीं एक-एक झाड़ी के पास,
और पत्ते-पत्ते से लगीं पूछने ।

पर श्रीकृष्ण तो कहीं गए नहीं थे,
सब जगह एकरस स्थित हैं कृष्ण,
समस्त जड़-चेतन में और बाहर भी,
वे वहीं थे और उन्हीं में थे कृष्ण ।

जाकर एक-एक वृक्ष के पास,
पूछ रहीं गोपियाँ श्रीकृष्ण का पता,
कह रहीं तुलसी, मालती आदि से,
श्रीकृष्ण बिन जीवन सूना हो रहा ।

क्या पुण्य किया, पूछ रहीं पृथ्वी से,
कि चरणों का स्पर्श पा आनन्दित हो रही,
या वामन और वराह रूप में संग मिला,
सो पुष्प-पल्लवित हो उल्लासित हो रही ?

पूछ रहीं हरिनियों से गोपियाँ,
क्या इधर से तो नहीं गए श्याम,
उनके हाथ में लीलाकमल होगा,
तुमने तो किया होगा प्रणाम ?

ऐसे ही प्रलाप करती रहीं गोपियाँ,
कातर हो रहीं, ढूँढ-ढूँढ कृष्ण को,
और भी गाढ़ आवेश होने पर वे,
दुहराने लगीं कृष्ण की लीलाओं को ।

रचने लगीं तरह-तरह का रूप गोपियाँ,
कोई पूतना, तो कोई कृष्ण बन रही,
कोई संहार कर रही बकासुर आदि का,
तो कोई कृष्ण बन दावानल पी रही ।

फिर भी पूछ रहीं श्रीकृष्ण का पता,
वृन्दावन के वृक्ष और लता आदि से,
एक जगह ध्वज, वज्रादि के चिन्ह देख,
कहने लगीं ये चरणचिन्ह हैं कृष्ण के ।

श्रीकृष्ण के पदचिन्हों के साथ ही,
देखा किसी और के भी पदचिन्हों को,
कहने लगीं वो कौन बड़भागिनी है,
श्रीकृष्ण ले गए अपने संग जिसको ?

अवश्य ही वह उनकी आराधिका होगी,
जिसके लिए छोड़ दिया कृष्ण ने हमें,
सोचो तो ज़रा वो कितनी धन्य है,
श्रीकृष्ण का यों संग पाया हो जिसने ?

आगे जाकर एक जगह गोपियों को,
वे दूसरे चरणचिन्ह दिखाई न दिए,
कहने लगीं यहाँ काँटों के कारण,
कंधे पर चढ़ाया होगा कृष्ण ने उसे,

एक जगह दिखे केवल पंजों के निशान,
सोचा, यहाँ फूल तोड़े होंगे श्रीकृष्ण ने,
अवश्य वहीं बैठ फिर गूँथे होंगे वे फूल,
अपनी प्रेयसी के बालों में उन्होंने ।

अखण्ड, अपने-आप में संतुष्ट और पूर्ण.
कैसे उनमें काम की कल्पना हो सकती,
फिर भी कामियों की दीनता, स्त्रीपरवशता,
दिखाने हेतु ही उन्होंने यह लीला रची ।

इधर श्रीकृष्ण दूसरी गोपियों को छोड़,
एकान्त में ले गए थे जिस गोपी को,
उसने समझा, मैं ही श्रेष्ठ हूँ गोपियों में,
इसलिए कृष्ण इतना मानते हैं मुझको ।

अपने प्रेम और सौभाग्य से मतवाली हो,
बोली और चलना हो रहा दूभर मुझे,
देखो, थक गए हैं मेरे सुकुमार पाँव,
कंधे पर चढ़ा जहाँ चाहो ले चलो मुझे ।

बोले श्रीकृष्ण चढ़ जाओ मेरे कंधे पर,
लेकिन तुरन्त ही हो गए वे अन्तर्धान,
रोने, पछताने लगी वह बड़भागी गोपी,
गर्व हर लेते तुरन्त गर्वहारी भगवान ।

तब तक आ पहुँची वे अन्य गोपियाँ,
बताया उसने जो उसके साथ घटा,
लौट आयीं सब यमुना के पुलिन पर,
रोम-रोम श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहा ।

गोपी-गीत और भगवान का प्राकट्य

विरह व्यथित हो गाने लगीं गोपियाँ,
तुम्हारे कारण बढ़ी ब्रज की महिमा,
बैकुण्ठ छोड़ लक्ष्मीजी यहाँ आ बसीं,
लेकिन दुःख में डूब रहीं हम गोपियाँ ।

हम तुम्हारी बिन-मोल की दासी,
घायल किया हमें तुमने चितवन से,
हार गयीं तुम्हें खोज-खोजकर हम,
सर्वव्यापी, पर छिप रहे हो हमसे ।

ब्रज की रक्षा को अवतरित हुए तुम,
बार-बार हमें विपदाओं से बचाया,
अभयदान मिल जाता उन भक्तों को,
मिल जाती जिन्हें चरणों की छाया ।

रख दो अपना वरद हस्त सिर पर,
दूर करो नाथ ! अब यह पीड़ा हमारी,
प्रेमीजनों का मान-मद चूर करने को,
पर्याप्त है मन्द-मन्द मुस्कान तुम्हारी ।

जल रहे हैं हमारे हृदय विरह से,
तुम्हारे मिलन की आकांक्षा सता रही,
रख दिया जिन्हे कालिय के सिर पर,
हम उन्हीं चरणों की बाट जोह रही ।

अमृतस्वरूप है तुम्हारी लीलाकथा भी,
भक्तों और संतों ने किया उसका गान,
सारे पाप-ताप तो मिटा ही देती,
करती परम मंगल और कल्याण ।

हो जाती थीं मग्न हम आनन्द में,
तुम्हारी लीला-क्रीडाओं का ध्यान कर,
मन क्षुब्ध कर रही, ओ कपटी मित्र !
अब वे सब बातें याद आ-आकर ।

जब तुम निकलते गौओं को चराने,
बेचैन हो जाते हमारे मन यह सोचकर,
देते होंगे कष्ट तुम्हारे युगल चरणों को,
कंकड़, तिनके, कुश-काँटे आदि चुभकर ।

समस्त अभिलाषा पूर्ण करते भक्तों की,
तुम्हारे चरण-कमल, लक्ष्मी पूजती जिन्हें,
शान्त कर दो हमारे हृदय की व्यथा,
रखकर हमारे वक्षःस्थल पर उन्हें ।

पान करती तुम्हारा अधरामृत यह वंशी,
समस्त शोक-संताप जो नष्ट कर देता,
एक बार भी पान कर लिया जिसने,
फिर और किसी रस का नाम न लेता ।

चले जाते जब तुम दिन में वन में,
एक-एक क्षण लगने लगता युग सा,
सन्ध्या को फिर तुम्हारा मुख देख,
पलकों का गिरना लगता भार सा ।

पति-पुत्र, कुल-परिवार आदि को त्याग,
आई हैं, हे कृष्ण ! हम पास तुम्हारे,
अब अपने बिछोह का दुःख दूर करो,
हे प्राणनाथ ! हम हैं तुम्हारे ही सहारे ।

फूट-फूटकर रोने लगीं गोपियाँ,
तभी श्रीकृष्ण वहाँ हो गए प्रकट,
मन्द-मन्द मुसकान से खिला मुख,
मानों स्वयं साक्षात् प्रकटे मन्मथ ।

विद्युत का सा संचार हो गया,
लगा गोपियों को लौट आए प्राण,
तरह-तरह की करने लगीं वे चेष्टाएँ,
मुखकमल मकरन्द का करती रसपान ।

परम आनन्दित और उल्लासित हो,
विरह व्यथा से वे मुक्त हो गयीं,
शोभित हो रहे श्रीकृष्ण उनके बीच,
गोपियाँ फिर उन्हें पा धन्य हो गयीं ।

शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी,
बिखरा रही थी अपनी छटा निराली,
चमक रहा यमुनापुलिन का कण-कण,
सर्वत्र आनन्द-मंगल की छा गयी लाली ।

फिर यमुनाजी के उस पावन पुलिन पर,
बिछा दी गोपियों ने अपनी ओढ़नियाँ,
जो योगियों के हृदय में भी न विराजते,
उन्हें अपनी ओढ़नी पर बैठा रहीं गोपियाँ ।

सहस्त्र-सहस्त्र गोपियों से पूजित हो,
बड़े शोभायमान हो रहे थे भगवान,
त्रिलोकी में भासित समस्त सौन्दर्य,
उनके सौन्दर्य का नहीं बिन्दु समान ।

फिर उनके छिपने से तनिक रूठी सी,
चाहती कृष्ण करें अपना दोष स्वीकार,
पूछने लगीं वे एक प्रश्न कृष्ण से,
जिसके उत्तर से हो सकें दोष-विचार ।

कुछ प्रेम करते प्रेम करनेवालों से,
कुछ उनसे भी जो प्रेम नहीं करते,
कोई-कोई नहीं करते दोनों से प्रेम,
तुम्हें इनमें से कौन अच्छे लगते ?

कहा कृष्ण ने, प्रेम के बदले प्रेम,
उनका तो सारा उद्योग स्वार्थ का,
उनमें न सौहार्द और ना ही धर्म,
ऐसा व्यवहार, व्यापार लेन-देन का ।

प्रेम न करने वालों से भी प्रेम,
सज्जन और करुणाशील, माता-पिता से,
ऐसा निश्छल, धर्मपूर्ण हृदय भरा रहता,
सौहार्द और सबकी हितैषिता से ।

प्रेम नहीं करनेवालों से भी प्रेम,
ऐसे लोग होते हैं चार प्रकार के,
अपने स्वरूप में मस्त रहने वाले[22],
इनमें से होते पहले प्रकार के ।

दूसरे प्रकार के वे लोग होते हैं,
द्वैत का विचार तो है जिनमें,
पर वे कृतकृत्य हो चुके होते,
कोई प्रयोजन नहीं किसीसे उन्हें ।

तीसरे प्रकार के वे लोग होते हैं,
जानते नहीं कौन प्रेम करता उनसे,
और चौथी प्रकार के वे होते,
द्रोह करते जो प्रेम करनेवाले से ।

मैं तो प्रेम करनेवालों से भी, गोपियों,
वैसा करता नहीं जैसा करना चाहिए मुझे,
ऐसा इसलिए ताकि उनकी चित्तवृति,
और भी मुझमें लगे, निरन्तर चाहें मुझे ।

खो जाए यदि निर्धन को मिला धन,
तो उसका चित्त उसी में लगा रहता,
वैसे ही मैं प्रमियों का प्रेम बढ़ाने,
मिल-मिलकर उनसे छिपता रहता ।

लोक-लाज, घर-परिवार छोड़ कर आयीं,
सो यह सोच तुम्हारा प्रेम प्रगाढ़ हो,
तुमसे प्रेम करते, मैं छिप गया था,
सो मेरे इस छिपने में दोष मत देखो ।

बड़े-बड़े योगी जो तोड़ नहीं पाते,
तोड़ कर आई हो वो बन्धन सारा,
सर्वथा निर्मल और पूर्ण निर्दोष है,
यह आत्मिक संयोग मुझसे तुम्हारा ।

तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्याग का बदला,
कैसे भी चाहूँ तो मैं चुका नहीं सकता,
तुम प्रेमवश मुझे उऋण कर सकती हो,
लेकिन मैं तुमसे उऋण हो नहीं सकता ।

<u>महारास</u>

भगवान की यह सुमधुर वाणी सुन,
जाता रहा गोपियों का विरहजन्य ताप,
श्रीकृष्ण का संग पा हुईं सफल मनोरथ,
जो उन्होंने चाहा कर लिया वो प्राप्त ।

बाँह-में-बाँह डाले खड़ी गोपियों संग,
प्रारम्भ किया महारास कृष्ण ने,
दो-दो गोपियों के बीच स्वयं को,
प्रकट कर लिया भगवान कृष्ण ने ।

सभी गोपियाँ सोच रहीं थी ऐसा,
कि श्यामसुन्दर तो हैं मेरे ही पास,
आकाश में विमानों की भीड़ लग गयी,
सभी देवता आ पहुँचे पत्नियों के साथ ।

अपने-आप बज उठीं दिव्य दुन्दुभियाँ,
और होने लगी स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा,
गन्धर्व करने लगे प्रभु का यशगान,
श्रीकृष्ण संग नृत्य करने लगीं गोपियाँ ।

यमुनाजी की रमणरेती पर उस समय,
ऐसे शोभित हो रहे श्रीकृष्ण भगवान,
मानों अगणित सुवर्ण मणियों के बीच,
ज्योतिर्मय नीलमणि हो प्रकाशमान ।

तरह-तरह की भाव-भंगिमाएँ नृत्य में,
अपनाकर रिझा रहीं गोपियाँ उन्हें,
लग रहा था मानों सहस्त्रों बिजलियाँ,
चमक रही हों घने श्यामल मेघों में ।

[22] इनमें द्वैत भाव नहीं होता; प्रेम के लिए दूसरे का होना तो आवश्यक है ।

भगवद प्रेम ही है गोपियों का जीवन,
श्रीकृष्ण संग से आनन्दित हो रहीं,
उनके राग-रागिनियों से पूर्ण गान से,
गूँज रहा है यह सारा संसार अभी भी ।

कर रहे श्रीकृष्ण भी उनका सम्मान,
उनके मधुर गान की प्रशंसा कर रहे,
जब थक जाती थी कोई-कोई गोपी,
श्रीकृष्ण उसे बाहों का सहारा दे रहे ।

इस समय गोपियों का सौभाग्य,
लक्ष्मीजी से भी था कहीं बढ़कर,
श्रीकृष्ण संग विहार कर रहीं गोपियाँ,
उन्हें परम प्रियतम रूप में पाकर ।

जितनी भी थीं गोपियाँ महारास में,
उतने ही रूप धारण किए कृष्ण ने,
खेल-खेल में आनन्द-विहार कर,
उन्हें प्रसंन्न किया श्रीकृष्ण ने ।

थका हुआ गजराज हथिनियों संग,
घुस जाता जैसे किनारे तोड़ नदी में,
वैसे ही गोपियों के संग श्रीकृष्ण,
घुस गए यमुनाजी के शीतल जल में ।

उछाल रहीं जल प्रसन्न हो गोपियाँ,
जल उलीच-उलीच खूब नहलाया कृष्ण को,
फिर ले गए कृष्ण उपवन में उन्हें,
सफल मनोरथ किया इस तरह गोपियों को ।

गोपियों, उनके पतियों और सब जीवों के,
अन्त: करण में आत्मरूप में जो विराज रहे,
अपना दिव्य-चिन्मय श्रीविग्रह प्रकटकर,
वही तो इस प्रकार सब लीला कर रहे ।

जीवों पर कृपा करने के लिए ही,
नर रूप में लेते अवतार भगवान,
प्राकृत व्यवहार का इस लीला में,
केवल अज्ञानी ही करते अनुसंधान ।

तनिक भी दोषबुद्धि करी नहीं,
ब्रजवासी गोपों ने भगवान् कृष्ण में,
योगमाया से मोहित समझ रहे थे,
हमारी पत्नियाँ हैं हमारे पास में ।

इच्छा न होने पर भी ब्राह्ममुहूर्त में,
गोपियाँ चली गयीं अपने-अपने घर,
प्रेमवश अपने भक्तों की सब इच्छाएँ,
पूर्ण करते हैं भगवान श्रीकृष्ण योगेश्वर ।

सुदर्शन उद्धार और शंखचूड़ का वध

शिवरात्रि पर अम्बिकावन गए सब गोप,
किया अम्बिका और शंकरजी का पूजन,
नन्दबाबा ने किया गौ आदि का दान,
चाहते थे भगवान शंकर रहें प्रसन्न ।

उपवास से शिथिल नन्द आदि गोप,
सो रहे जा सरस्वती नदी के तट पर,
सोते नन्दबाबा को पकड़ ले जाने लगा,
उस वन में रहने वाला एक अजगर ।

चिल्लाने लगे नन्दबाबा बचाने के लिए,
जाग गए गोप और दौड़े उन्हें बचाने,
मारा अधजली लकड़ियों से अजगर को,
पर छोड़ा नहीं मुँह से उन्हें अजगर ने ।

तभी श्रीकृष्ण ने आकर अजगर को,
बस छू भर दिया अपने चरणों से,
तुरन्त वह सुन्दर विद्याधर बन गया,
मुक्त हो गया अजगर योनि से ।

प्रणाम किया उस दैदीप्यमान पुरुष ने,
और श्रीकृष्ण के पूछने पर उसने कहा,
पहले था वह सुदर्शन नामक विद्याधर,
विमान से घूमता रहता था यहाँ-वहाँ ।

अंगिरा गोत्रिय कुरूप ऋषियों को देख,
एक दिन अपने सौन्दर्य के घमण्ड में,
हँसी उड़ाई जो मैंने उन ऋषियों की,
अजगर बनने का शाप दे दिया उन्होंने ।

वह शाप मेरे पाप का ही फल था,
पर बना मेरे लिए अनुग्रह का कारण,
पाया आज आपके चरणों का स्पर्श,
बना मेरे अशुभ नष्ट होने का कारण ।

अनुमती दीजिए अपने लोक जाने की,
हे भक्तवत्सल, पुरुषोत्तम, महायोगेश्वर !
ऐसा कह वह अपने लोक चल दिया,
नन्दबाबा सहित सब आ गए लौट कर ।

एक दिन कृष्ण और बलराम दोनों,
गए वन में विहार करने रात्रि में,
अभी-अभी हुआ था सायंकाल,
चाँदनी छिटकी, तारे उगे आकाश में ।

राग अलापा साथ मिल दोनों ने,
जिसने जीवों का मन मोह लिया,
आरोह, अवरोह, उतार-चढाव ने,
गोपियाँ का मन भी मोह लिया ।

तभी कुबेर का अनुचर शंखचूड़ यक्ष,
गोपियों को ले भाग चला उत्तर को,
उनका रोना-चिल्लाना सुन दोनों भाई,
दौड़े हाथ में ले एक शाल वृक्ष को ।

बड़े वेग से अपनी ओर आते देख,
गोपियों को वहीँ छोड़ वह भागा,
बलराम रुके गोपियों की रक्षा हेतु,
पर कृष्ण ने पीछा छोड़ा ना उसका ।

पकड़ लिया उसे कुछ दूर जा कृष्ण ने,
और मारा जोर से एक घूँसा सिर में,
चूड़ामणि सहित सिर अलग कर दिया,
और दे दी मणि बलरामजी को उन्होंने ।

गोपियों का वियोग

कृष्ण जब चले जाते वन में गौएँ चराने,
गोपियों का चित्त भी चला जाता साथ में,
करता रहता मन श्रीकृष्ण का चिन्तन,
वाणी लगी रहती उनकी लीला गान में ।

श्रीकृष्ण की मनमोहिनी छवि पर,
गोपियाँ करती अपने प्राण निछावर,
तुलसी माला, मोर-मुकुट, कुण्डल,
और हर चेष्टा उनकी अति मनोहर ।

चाल और चितवन पर श्रीकृष्ण की,
ब्रज के गोप-गोपियाँ मुग्ध हो जाते,
ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र आदि भी,
वंशी की धुन सुन तल्लीन हो जाते ।

सिद्धों को भी मोह लेती थी वंशी,
पशु-पक्षी हो जाते चित्रलिखित से,
नदियों की भी गति रुक जाती,
स्तम्भित हो जाती प्रेमावेश से ।

भाग्य सराहती यशोदाजी का गोपियाँ,
कहतीं उन्हें, मिले हैं तुम्हें पुत्र ऐसे,
त्रिलोकी में उन जैसा कहीं कोई नहीं,
फिर उनसे बढ़कर कोई होगा कैसे ?

बाट जोहती गोपियाँ सांयकाल का,
अब लौट के आते ही होंगे कृष्ण,
ग्वालबाल संग गौएँ चराकर,
दिनभर का विरहताप हरेंगे कृष्ण ।

गौओं के चलने-फिरने के कारण,
उनके खुरों से पीड़ित हुई ब्रजभूमि,
वो भी श्रीकृष्ण का चरणस्पर्श पा,
अपना भाग्य सराहती ब्रजभूमि ।

बड़भागिनी गोपियों का मन सदा,
लगा रहता श्रीकृष्ण के चिन्तन में,
एक-दूसरे को कहती-सुनती गोपियाँ,
लगी रहतीं उनकी लीला गान में ।

अरिष्टासुर वध; कंस का अक्रूर को भेजना

मची हुई थी जब आनन्दोत्सव की धूम,
बैल का रूप धर अरिष्टासुर वहाँ आया,
अति विशाल, खुरों से धरती को कँपाता,
खड़ी पूँछ, सब तहस-नहस करता आया ।

उसके गरजने और जोर से हँकड़ने से,
गिरने लगे गर्भ गौओं और माताओं के,
उस तीक्ष्ण सींग वाले बैल से भयभीत,
सब गोप-गोपियाँ आए शरण कृष्ण के ।

ताल ठोक और उसे ललकार श्रीकृष्ण,
खड़े हो गए वृर्षासुर की राह रोककर,
आँखें लाल और पूँछ उठाकर, वज्र सा,
झपटा वो सींगों को तान कृष्ण पर ।

दोनों हाथों से सींग पकड़ कृष्ण ने,
गिरा दिया उसे अठारह पग धकेलकर,
पसीने से लथपथ, लंबी साँसे छोड़ता,
झपटा फिर से वह श्रीकृष्ण पर ।

जब देखा वह प्रहार करना ही चाहता,
गिरा दिया भूमि पर उसे लात मारकर,
फिर जैसे कोई गीला कपड़ा निचौड़े,
पैरों से दबा उसका निकाला कचूमर ।

उखाड़ डाले उसके सींग कृष्ण ने,
पैर पटकने, खून उगलने लगा असुर,
पीछे उलट गयीं उसकी दोनों आँखे,
और बड़े कष्ट से मरा वो असुर ।

भगवान की लीला है अद्भुत,
झटपट करते भक्तों का कल्याण,
नारदजी भी प्रभु कार्य के लिए,
देते रहते उसमें अपना योगदान ।

सो नारदजी ने जा कंस को बताया,
कि जो कन्या उसने मारनी चाही,
वह कन्या तो यशोदा की पुत्री थी,
और कृष्ण आठवीं संतान देवकी की ।

बलराम हैं रोहिणी-वसुदेव के पुत्र,
कृष्ण के साथ पल रहे ब्रज में,
उससे डर कृष्ण, बलराम दोनों को,
नन्दबाबा के पास रखा हुआ ब्रज में ।

अत्यंत क्रोधित हो तलवार उठा,
वसुदेव को मारना चाहा कंस ने,
पर नारदजी के समझाये रुक गया,
डाल दिए देवकी-वसुदेव कैद में ।

तब कंस ने केशी को बुलाया,
कहा, तुम तुरन्त ही जाओ ब्रज में,
मार डालो कृष्ण, बलराम दोनों को,
पल रहे दोनों नन्द के घर में ।

उसके जाने के बाद कंस ने बुलवाए,
मुष्टिक, चाणूर, शल आदि पहलवान,
कहा उनसे नन्द के ब्रज में रहते हैं,
वसुदेव के पुत्र कृष्ण और बलराम ।

वसुदेव के इन्हीं पुत्रों के हाथों,
बतलाया गया है मेरी मृत्यु होगी,
सो कुश्ती लड़ने-लड़ाने के बहाने,
तुम्हें उनकी हत्या करनी होगी ।

सो भांति-भांति के मंच बनाकर,
उन्हें अखाड़े के चारों ओर सजा दो,
और प्रजा को उन मंचों पर बैठकर,
देखने दो इस स्वच्छन्द दंगल को ।

फिर महावत से कहा, तुम चतुर हो,
कुवलयापीड हाथी को फाटक पर रखना,
और जब मेरे शत्रु वहाँ से निकलें,
उसी के द्वारा उन्हें मरवा देना ।

कहा, धनुष यज्ञ प्रारम्भ कर दो,
विधिपूर्वक इस आनेवाली चतुर्दशी को,
और उसकी सफलता के लिए चढाओ,
बहुत सी बलियाँ भूतनाथ भैरव को ।

फिर उसने बुलवाया यदुवंशी अक्रूर को,
अपनी मित्रता का वास्ता दे कहा उनसे,
आपसे बढ़कर कोई मेरा शुभेच्छु नहीं,
मेरा बहुत बड़ा काम, बस बनेगा आपसे ।

जाइये आप नन्दराय के ब्रज में,
उनके पास हैं दो पुत्र वसुदेव के,
उन्हें इसी रथ पर चढ़ा लाइए,
क्योंकि मेरी मृत्यु लिखी हाथों उनके ।

उन दोनों के साथ ही ले आइये,
नन्द आदि अन्य गोपों को भी,
यहाँ दोनों भाइयों को मरवा डालूँगा,
कुचल देगा उन्हें कुवलयापीड हाथी ।

यदि बच गए वो हाथी से तो,
पहलवानों के हाथों मरवा डालूँगा,
उनके मरने के बाद नन्द आदि को,
मैं अपने ही हाथों से मार डालूँगा ।

मेरे पिता उग्रसेन बूढ़े हो चले,
पर राज्य का लोभ बाकी है उनमें,
उनको और उनके भाई देवक को,
मार डालूँगा मैं उनके बाद में ।

फिर तो मैं होऊँगा और आप होंगे,
और अकण्टक राज्य इस पृथ्वी का,
जरासन्ध हमारे बड़े-बूढ़े ससुर है,
साथ मिलेगा हमें अन्य मित्रों का ।

देवताओं के पक्षपाती नरपतियों को मार,
भोगूँगा अकण्टक राज्य इस पृथ्वी का,
बतला दी मैंने आपको सब गुप्त योजना,
शीघ्रता से प्रबन्ध कीजिए उन्हें लाने का ।

कृष्ण और बलराम तो अभी बच्चे हैं,
क्या लगता है उन्हें मार डालने में,
कुछ और मत कहना इसके सिवा,
कि चलो धनुयज्ञ और राजधानी देखने ।

बोले अक्रूर ठीक ही है आपका सोचना,
मनुष्य अपना अनिष्ट टालना चाहता,
बाँधता रहता बड़े-बड़े मनोरथ के पुल,
पर प्रारब्ध का लिखा वो नहीं जानता ।

केशी और व्योमासुर का उद्धार

केशी बड़े भारी घोड़े का रूप धर,
बड़े वेग से दौड़ता आया ब्रज में,
अपनी टापों से खोद रहा धरती को,
भयानक रूप से लग रहा हिनहिनाने ।

अपनी अयाल से छितरा रहा बादल,
पूँछ घूमा रहा, विशाल मेघ सा हवा में,
गोकुलवासियों को भयभीत देख श्रीकृष्ण,
सिंह से ललकारते उसे, आ डटे सामने ।

मानों आकाश को भी निगल जाएगा,
ऐसे मुँह फैला वो दौड़ा कृष्ण की ओर,
उनके पास पहुँच उसने दुलत्ती झाड़ी,
पर श्रीकृष्ण पर चला ना उसका जोर ।

दोनों हाथों से उसके पैर पकड़कर,
हवा में घुमा, दे मारा धरती पर,
पर थोड़ी देर में सचेत होकर केशी,
फिर मुँह खोल झपटा श्रीकृष्ण पर ।

मुसकुराते हुए श्रीकृष्ण ने अपना,
बायाँ हाथ डाल दिया केशी के मुँह में,
और श्रीकृष्ण का वह कोमल हाथ,
लौहे सा तपता, बढ़ने लगा मुँह में ।

टूट-टूटकर गिरने लगे दांत उसके,
साँसों का मार्ग अवरुद्ध हो गया,
पीटने लगा पैर वो दम घुटने से,
थोड़ी ही देर में निष्प्राण हो गया ।

कंस के यहाँ से लौटकर नारदजी,
अनायास ही आए श्रीकृष्ण के पास,
आकर स्तुति करने लगे श्रीकृष्ण की,
एकान्त में ले जा उन्हें अपने साथ ।

कहा, हे योगश्वर ! आपका स्वरूप,
विषय नहीं वो मन और वाणी का,
सब निवास करते आपके हृदय में,
और सबके हृदय में निवास आपका ।

हे प्रभो ! आप सबके अधिष्ठान हैं,
पर कोई नहीं है अधिष्ठान आपका,
अपने आप को आप छिपाए रखते हैं,
हालांकि आप हैं सब जीवों की आत्मा ।

माया से त्रिगुणों की सृष्टि कर,
स्वीकार कर लेते आप गुणों को,
सृष्टि, पालन और प्रलय के लिए,
कुछ न चाहिए अपने सिवा, आपको ।

दैत्य, प्रमथ और विनाश राक्षसों का,
और धर्म की मर्यादा की रक्षा करने,
हुए हैं आप यदुवंश में अवतीर्ण,
हे प्रभो ! सज्जनों को दुष्टों से बचाने ।

आज मार डाला आपने केशी को,
आगे चाणूर, कंसादि को मारेंगे,
उखाड़ लाएँगे स्वर्ग से कल्पवृक्ष,
और इन्द्र को भी सबक देंगे ।

कृपा, वीरता आदि का शुल्क दे,
विवाह करेंगे आप वीर-कन्याओं से,
स्यमन्तक मणि और जाम्बवती को,
ले आएँगे आप जाम्बवान से ।

इसके बाद ब्राह्मण के मरे पुत्र को,
ला देंगे आप अपने धाम से,
पौण्ड्क-वासुदेव, शिशुपाल आदि का,
हे प्रभो ! वध होगा आपके हाथों से ।

और भी करेंगे तरह-तरह की लीलाएं,
गायी जाएँगी जो समस्त विश्वभर में,
पृथ्वी का भार उतारने के लिए आप,
अर्जुन के सारथि बनेंगे युद्ध में ।

करेंगे अक्षोहिणी सेनाओं का संहार,
बिना शस्त्र उठाए अपने हाथों से,
हे प्रभो ! आपकी ये सब लीलाएँ,
देखूँगा मैं अपनी आँखों से ।

स्थिर रहते हैं नित्य-निरंतर,
आप अपने परमानन्द स्वरूप में,
सारे पदार्थ आपको नित्य प्राप्त हैं,
नमस्कार करता हूँ मैं श्रीचरणों में ।

चले गए तब नारदजी प्रणाम कर,
और श्रीकृष्ण लगे गौ पालन में,
जब वे ग्वालबालों संग खेल रहे थे,
व्योमासुर आया ग्वाले के रूप में ।

मायावी आचार्य मयासुर का पुत्र,
बड़ा ही मायावी था वह स्वयं भी,
खेल में बहुधा वह चोर ही बनता,
बालकों को चुरा छिपा आता कहीं ।

बार-बार उन्हें ले जाकर वह असुर,
पहाड़ की एक गुफा में डाल आता,
ऊपर से उस गुफा का दरवाजा,
एक बड़ी चट्टान से ढक आता ।

बस चार-पाँच बालक ही बच रहे,
श्रीकृष्ण भी जान गए करतूत उसकी,
जब ले जा रहा था और बालकों को,
श्रीकृष्ण ने पकड़ ली गरदन उसकी ।

यों धर दबाया उसे जब कृष्ण ने,
अपना असली रूप प्रकट कर दिया उसने,
बड़ा बली था वह व्योमासुर दैत्य,
पर उसका वध कर दिया कृष्ण ने ।

तब गुफा द्वार पर लगी चट्टान तोड़,
निकाल लिया श्रीकृष्ण ने ग्वालबालों को,
स्तुति करने लगे ग्वालबाल और देवता,
श्रीकृष्ण लौट आए ग्वालबालों संग ब्रज को ।

अक्रूरजी की ब्रजयात्रा

वह रात मथुरापुरी में बिता अक्रूरजी,
प्रातःकाल चल दिए रथ पर बैठकर,
सोच रहे ऐसा क्या शुभ कर्म किया,
कि श्रीकृष्ण दर्शन का मिला अवसर ।

जाग रही थी उनके हृदय में भक्ति,
सोच रहे, दुर्लभ भगवान् के दर्शन,
जैसे बहते तिनके भी पार लग जाते,
मुझ अधम को भी मिलेंगे दर्शन ।

अशुभ नष्ट हो गए मेरे सब,
सफल हो गया मेरा जन्म आज,
बड़े-बड़े यति-योगी जिन्हें ध्याते,
उन चरणों का स्पर्श करूँगा आज ।

बड़ी कृपा की कंस ने मुझ पर,
उसी के भेजने से मिला यह अवसर,
ब्रह्मा, शंकर आदि जिन्हें भजते रहते,
ब्रज में जन्में वे ही अवतार ग्रहण कर ।

मरकतमणि के समान सुस्निग्ध,
कान्तिमान कोमल कपोल हैं उनके,
होठों पर मुसकान, प्रेमभरी चितवन,
कमल से कोमल रतनारे लोचन उनके ।

निकल रहे हरिन मेरी दायीं ओर से,
अवश्य आज मुझे उनका दर्शन होगा,
सहज ही आँखों का फल मिल जाएगा,
मेरा जन्म लेना आज सार्थक होगा ।

जो वाणी करती उनकी लीलागान,
जीवन की स्फूर्ति होती उस गान से,
होने पर भी उसका होना व्यर्थ,
होता नहीं गुणगान जिस वाणी से ।

जिनके गुणगान का ऐसा महात्म्य,
अवतीर्ण हुए हैं वे ही यदुवंश में,
देवताओं का कल्याण करने हेतु,
कर रहे निवास आज वो ब्रज में ।

श्रीकृष्ण, बलराम को नमस्कार करने,
कूद पड़ूँगा मैं तुरन्त ही रथ से,
वन्दना करूँगा एक-एक ग्वालबाल की,
ब्रज में जन्में बड़े सौभाग्य से ।

जब मैं उनके चरणों में गिर पड़ूँगा,
रखेंगे नहीं क्या करकमल मेरे सिर पर,
अभयदान देते ये उनको भी जो,
शरण लेते कालरूपी सर्प से घबराकर ।

समझेंगे नहीं मुझे शत्रु का दूत,
वे प्रभु सम, अच्युत और निर्विकार,
सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ, क्षेत्रज्ञ जीवों के,
अवश्य करेंगे मुझे वे प्रभु स्वीकार ।

सो व्यर्थ ही है सब शंका मेरी,
अवश्य दयानिधि मुझ पर कृपा करेंगे,
कोई अराध्य नहीं मेरा उनके सिवा,
अवश्य हृदय से वे मुझे लगा लेंगे ।

मेरी तो देह पवित्र होगी ही होगी,
औरों को भी पवित्र करनेवाली बनेगी,
टूट जाएँगे मेरे सब कर्ममय बन्धन,
उनके परम भक्तों की सी गति मिलेगी ।

सूर्यास्त तक नन्दगाँव पहुँच गए वो,
गोष्ठ में चरणचिन्ह देखे श्रीकृष्ण के,
कमल, यव, अंकुश आदि चिन्ह देख,
हृदय भर आया उनका आल्हाद से ।

प्रेमावेग से खिल उठा रोम-रोम,
नेत्रों से टप-टप आँसू टपकने लगे,
प्रभु के चरणों की उस रजधूलि में,
रथ से उतर अक्रूरजी लौटने लगे ।

ब्रज में गाय दुहने के स्थान पर,
श्रीकृष्ण और बलराम को देखा उन्होंने,
पीताम्बर धारण किए हुए थे श्रीकृष्ण,
नीलाम्बर धारण किया हुआ बलराम ने ।

किशोर अवस्था में अभी पग ही धरा,
दोनों गौर-श्याम निखिल सौन्दर्य की खान,
घुटनों तक की लंबी-लंबी भुजाएँ,
मनोहर छवि, चाल गजशावक समान ।

ध्वजा, अंकुश और कमल के चिन्ह,
कर रहे चरणों को शोभायमान,
मन्द-मन्द मुसकान और चितवन ऐसी,
मानों दया की मूर्ति हो विराजमान ।

वनमाला और मणियों के हार गले में,
अभी-अभी स्नान कर किए धारण,
पवित्र अंगराग और चन्दन का लेप,
सुगन्धित कर रहा सारा वातावरण ।

अपने सम्पूर्ण अंशो से अवतीर्ण हुए.
जगत के आदिकारण, पुरुषोत्तम भगवान,
संसार की रक्षा करने के लिए,
ब्रज में जन्में श्रीकृष्ण और बलराम ।

उन्हें देखते ही कूद कर अक्रूरजी,
साष्टांग लेट गए चरणों में उनके,
पुलकित हो रहा उनका सारा शरीर,
भर आया जल नेत्रों में उनके ।

रुंध गया गला, कुछ कह न सके,
पर श्रीकृष्ण जान गए मनोभाव उनका,
उठाकर लगा लिया उनको गले से,
बलरामजी ने भी आलिंगन किया उनका ।

किया उनका बड़ा आदर सत्कार,
पाँव पखार मधुपर्कादि भेंट किया,
थकावट दूर करा, भोजन करवाया,
सब तरह से उन्हें संतुष्ट किया ।

फिर नन्दबाबा ने कुशलक्षेम पूछी,
और सब तरह उनका सम्मान किया,
जो कुछ भी श्रम बाकी बच रहा था,
नन्दबाबा के वचनों ने दूर कर दिया ।

श्रीकृष्ण-बलराम का मथुरा गमन

अक्रूरजी जो कुछ मार्ग में सोचते आये,
पूर्ण हो गयीं उनकी वे अभिलाषाएँ सभी,
फिर श्रीकृष्ण ने आकर पूछा उनसे,
कंस के रहते यदुकुल की कुशलता कैसी ?

मेरे ही कारण मेरे निरपराध माता-पिता,
तरह-तरह के कष्ट उठा रहे कैद में,
अब उसकी और क्या मंशा है,
किस कारण आपको भेजा है उसने ?

बतलाया अक्रूरजी ने सब वृतान्त,
और नारदजी ने जो बतलाया कंस को,
किस उद्देश्य से कंस ने भेजा उन्हें,
और कि वे लेने आए हैं उन लोगों को ।

पिता नन्दबाबा को बतलाया उन्होंने,
तब नन्दबाबा ने आज्ञा दी गोपों को,
सारा गौरस और भेंट की सामग्री,
एकत्र कर सब चलें देखने उत्सव को ।

श्रीकृष्ण और बलराम मथुरा जा रहे,
जानकर गोपियाँ व्याकुल हो गयीं,
कुछ को कुछ होश रहा ना अपना,
कुछ आत्मलीन हो समाधिस्थ हो गयीं ।

कुछ स्मरण कर उनकी भाव-भंगिमाएँ,
कातर हो गयीं उनके विरह के भय से,
कुछ झुण्ड-की-झुण्ड एकत्रित होकर,
कहने लगीं आपस में एक-दूजे से ।

धन्य हो विधाता, विधान रचते तुम,
पर लेशमात्र भी दया नहीं तुम में,
पहले प्रेम और सौहार्द पैदा करते,
पर देते नहीं उसे फलने-फूलने ।

श्यामसुन्दर की मनोहर छवि दिखला,
कर रहे हो ओझल उसे आँखों से,
अक्रूर नहीं, तुम्हारी ही करतूत है,
करना नहीं चाहिए तुम्हें ऐसे ।

फिर देने लगीं उलाहना कृष्ण को,
कि उनका हृदय भी कहीं टिकता नहीं,
हो रहा है हमारा हृदय शोकातुर,
पर हमारी ओर देखते तक भी नहीं ।

धन्य होंगी कल मथुरा की स्त्रियाँ,
श्यामसुन्दर की मनोहर छवि निहारकर,
रम जाएँगे वहीं उनकी भाव-भंगिमा देख,
क्यों आएँगे हम ग्वालिनों के पास लौटकर ?

कितना निष्ठुर है, पर नाम अक्रूर,
ले जाना चाहता कृष्ण को दूर हमसे,
ये श्यामसुन्दर भी तो निष्ठुर हैं,
बैठ गएँ हैं रथ पर चढ़कर अभी से ।

कैसे जी सकेंगी हम इनके बिना,
क्षण भर भी वियोग सहन न जिनका,
तकती थीं राह हम जिनकी हर शाम,
जाने कब होगा अब दर्शन उनका ?

लोक-लाज त्याग करने लगीं क्रंदन,
कहने लगीं, हे गोविन्द, हे दामोदर !
बीत गयी सारी रात यों रोते-रोते,
सुबह ले चले अक्रूर रथ हाँक कर ।

गोपियाँ सन्तप्त हो रहीं देखकर,
श्रीकृष्ण ने उन्हें धीरज बँधाया,
दूत द्वारा उन्हें सन्देश भेजकर,
'मैं फिर आऊँगा' यह कहलवाया ।

जब तक दिखती रही रथ की ध्वजा,
और पहियों से उड़ती हुई धूल उन्हें,
तब तक चित्रलिखित सी खड़ी रहीं,
बसा ली श्रीकृष्ण की छवि मन में ।

इधर बलरामजी और अक्रूरजी के संग,
श्रीकृष्ण जा पहुँचे यमुनाजी के तट पर,
हाथ-पैर धो, अमृत सा मीठा जल पी,
दोनों भाई बैठ गए रथ पर चढ़ कर ।

दोनों भाइयों को रथ पर बैठाकर,
आज्ञा ले अक्रूरजी करने लगे स्नान,
ब्रह्महृद कुण्ड में डुबकी लगाते ही,
जल में बैठे दिखे कृष्ण और बलराम ।

विस्मित हुए वे उन्हें वहाँ देख,
बैठाकर आए थे जिन्हें रथ पर,
सिर निकालकर जो बाहर देखा,
दोनों भाई बैठे दिखे रथ पर ।

यह सोच कि शायद भ्रम हुआ होगा,
फिर से डुबकी लगाई उन्होंने जल में,
सिद्ध, गन्धर्व, चारणादि दिखाई दिए,
श्रीशेषजी[23] की स्तुति करते जल में ।

उनके हजार फण मुकुट से सुशोभित,
शरीर पर नीलाम्बर किए हुए धारण,
और उनकी गोद में स्वयं घनश्याम,
दिव्य रूप, पीताम्बर किए हुए धारण ।

बड़े ही शान्त चतुर्भुज रूप लिए,
कमल के रक्तदल से रतनारे नयन,
सुंदर भौहें, ऊँची और सुघड़ नासिका,
चित्त को चुराने वाली चारु चितवन ।

सुन्दर कान, कपोल और अधर लाल,
हृष्ट-पुष्ट बाँहें, घुटनों तक लम्बी,
कंधे ऊँचे, शंख सा सुडौल गला,
त्रिवलीयुक्त उदर और नाभि गहरी ।

स्थूल कटिप्रदेश और नितम्ब,
हाथी की सूंड के समान जाँघें,
सुन्दर घुटने और पिंडलियाँ हैं,
उभरी हुई एड़ी के ऊपर की गाँठें ।

पंखुड़ियों से कोमल अंगूठे और अंगुलियाँ,
किरणें निकल रहीं लाल-लाल नखों से,
दिव्य मणियों से जड़े मुकुट, कड़े आदि,
अलंकृत हो रहे वो यज्ञोपवीत से ।

एक हाथ में शोभित हो रहा पद्म,
शेष तीन में शंख, चक्र और गदा,
गले में वनमाला और कौस्तुभ मणि,
वक्ष:स्थल पर चिन्ह श्रीवत्स का ।

[23] बलरामजी अनन्तदेव श्रीशेषजी के अवतार हैं ।

पार्षद, ऋषि, देव, वसु, सनकादि,
वेदवाणी से कर रहे स्तुति उनकी,
साथ ही षडैश्वर्य[24] रूप शक्तियाँ और,
उर्जा, माया[25] आदि कर रहीं सेवा उनकी ।

भगवान की यह झाँकी देखकर,
परमानन्द से उनका हृदय भर गया,
अब अक्रूरजी ने अपना साहस बटोर,
प्रणाम किया श्रीचरणों में सिर नवा ।

फिर हाथ जोड़कर सावधानी से,
करने लगे अक्रूरजी स्तुति उनकी,
समस्त कारणों के परम कारण आप,
अविनाशी पुरुषोत्तम, नारायण आप ही ।

आविर्भाव हुआ आपके ही नाभिकमल से,
ब्रह्माजी का, जो सारी सृष्टि को रचते,
पञ्चतत्त्व, अहंकार, इन्द्रियों के विषयादि,
और उनके अधिष्ठातृ देवता, अंग आपके ।

प्रकृति और उससे उत्पन्न पदार्थ,
जान नहीं सकते स्वरूप आपका,
वे सब अनात्मा हैं, जड़ पदार्थ हैं,
और आप तो हैं स्वयं आत्मा ।

ब्रह्माजी अवश्य ही आपका स्वरूप हैं,
पर वे युक्त हैं प्रकृति के रजस गुण से,
सो जान नहीं सकते वे आपका स्वरूप,
प्रकृति और उसके गुणों से परे ।

[24] षडैश्वर्य-लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति और तुष्टि अर्थात ऐश्वर्य, बल, ज्ञान, श्री, यश और वैराग्य की अधिष्ठात्री शक्तियाँ ।

[25] उर्जा, माया आदि-इला अर्थात सन्धिनीरूप पृथ्वी शक्ति; ऊर्जा-लीला शक्ति; विद्या-अविद्या-मोक्ष और बन्धनकारी शक्तियाँ; ह्लादिनी, संवित अर्थात अन्तरंगा शक्ति और माया आदि शक्तियाँ ।

अन्तर्यामी, परमात्मा, इष्टदेवता और ईश्वर[26],
साधू और योगी इन रूपों में पूजते,
कर्मकाण्डी बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा,
और ज्ञानी आपको ज्ञानयज्ञ द्वारा पूजते ।

और भी लोग पूजते और तरह से,
जो भी जिसे पूजते, पूजते आपको ही,
आप ही हैं सब देवताओं के रूप में,
क्योंकि सर्वेश्वर हैं हे प्रभु ! आप ही ।

जैसे पर्वतों से निकलकर सब नदियाँ,
अन्त में जा समुद्र में मिल जातीं,
वैसे ही सब उपासना पद्धतियाँ,
देर-सबेर आपको ही पहुँच जातीं ।

ब्रह्मा से लेकर समस्त चराचर जीव,
रहते प्रकृति के त्रिगुणों से ढके,
जैसे अलग-अलग दिखते सब वस्त्र,
पर होते सभी सूत्रों से बुने ।

परन्तु आप सर्वस्वरूप होने पर भी,
नहीं हैं किसी के भी साथ लिप्त,
आप समस्त वृतियों के साक्षी हैं,
आपकी दृष्टी है पूर्णतया निर्लिप्त ।

गुणों के प्रवाह से होने वाली,
अज्ञानमूलक है यह सारी सृष्टि,
देवता, मनुष्य, पशु-पक्ष आदि,
सभी योनियों में व्याप्त है सृष्टि ।

बह रहे सभी इन त्रिगुणों के प्रवाह में,
लेकिन आप हैं निश्चल, निर्विकार,
सर्वथा अलग हैं आप इस सृष्टि से,
इसलिए करता हूँ आपको नमस्कार ।

अग्नि मुख है, पृथ्वी है चरण,
सूर्य और चन्द्र नेत्र हैं आपके,
आकाश नाभि है, दिशाएँ कान हैं,
वृक्ष और औषधियाँ रोम आपके ।

यह सारा ब्रह्माण्ड आपका शरीर है,
कल्पित जिसमें अनेक लोक, लोकपाल,
क्रीड़ा हेतु आप विभिन्न रूप अपनाकर,
लोगों का शोक हर लेते तत्काल ।

मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, वराह,
फिर नरसिंह और वामन रूप धरा,
अद्भुत लीलाएँ करी उन रूपों में,
भक्तों के अपने, कष्टों को हरा ।

फिर अवतार ले परशुराम रूप में,
वध किया आपने दुराचारी राजाओं का,
फिर राम रूप में अवतरित हुए आप,
और वध किया आपने दुष्ट रावण का ।

वैष्णव और यदुवंशियों की रक्षा हेतु,
आप ही प्रकट हुए चतुर्व्यूह[27] के रूप में,
और शुद्ध अहिंसा मार्ग का उपदेश,
देंगे भविष्य में आप बुद्ध के रूप में ।

और पृथ्वी के क्षत्रिय[28] जब प्राय,
मलेच्छो के ही समान हो रहेंगे,
तब उनका नाश करने के लिए आप,
कल्कि रूप में अवतार ग्रहण करेंगे ।

माया से मोहित हो रहे सब जीव,
इस कारण 'मैं' और 'मेरा' कर रहे,
और इस झूठे दुराग्रह में फँसकर,
सब सकाम कर्म करने में लग रहे ।

[26] अन्तर्यामी-अन्तःकरण में स्थित; परमात्मा-समस्त भूत-भौतिक पदार्थों में व्याप्त; इष्टदेवता-सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देव मण्डल में स्थित और उनके साक्षी महापुरुष और नियन्ता रूप में ईश्वर ।

[27] चतुर्व्यूह-वासुदेव (श्रीकृष्ण), संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूप में ।

[28] क्षत्रिय-शासक वर्ग ।

मैं भी ऐसे ही दुराग्रह में फँस,
स्त्री, परिवार आदि के मोह में उलझा,
अनित्य को नित्य, झूठ को सच,
और दुःख को मैंने सुख ही समझा ।

रम गया मैं संसारी द्वन्दो में,
भूल गया आप सच्चे प्रियतम को,
भटक रहा विषयों में सुख खोजता,
छोड़ दिया माया में छिपे आपको ।

'अविनाशी', 'अक्षर' के ज्ञान से रहित,
उठती रहती मन में अनेक कामना,
अत्यंत प्रबल और दुर्दमनीय इन्द्रियाएँ,
बहुत ही मुश्किल मन को साधना ।

इस प्रकार कब से भटकता हुआ मैं,
आ पहुँचा आपकी चरण-शरण में,
यह भी आपका कृपा-प्रसाद ही है,
जो चित्तवृति लगी आपके चरणों में ।

जितनी भी वृतिया और प्रतीतियाँ होती,
आप ही कारण और उनके अधिष्ठान,
जीव और उसके सुख-दुःख के निमित्त,
काल, कर्म आदि भी आप ही भगवान ।

उन सबके नियन्ता भी आप हैं,
स्वयं ब्रह्म, अनन्त शक्तियाँ आपकी,
नमस्कार करता हूँ मैं प्रभु आपको,
चरणों की शरण आ गया आपकी ।

जब अक्रूरजी उनकी स्तुति कर चुके,
प्रभु जल में ही हो गए अन्तर्धान,
बाहर निकले विस्मित अक्रूरजी को देख,
क्या देख लिया आपने, बोले भगवान् ।

सब अद्भुत पदार्थ स्वयं आप में हैं,
आप को देख, क्या देखा ना मैंने,
सब अद्भुत वस्तुएँ स्वयं जिनमें हैं,
देख रहा हूँ उन्हें ही, कहा उन्होंने ।

दिन ढलते-ढलते पहुँच गए मथुरा,
राह में गाँव के लोग मिलने आते,
आनन्दमग्न हो जाते उन्हें देख,
अपनी दृष्टि उनसे हटा न पाते ।

नन्दबाबा आदि तो पहले पहुँच चुके थे,
प्रतीक्षा कर रहे मथुरा से बाहर उपवन में,
कहा अक्रूरजी को अपने घर जाने के लिए,
पर वो ले जाना चाहते सबको साथ अपने ।

बोले, हे प्रभु ! मैं आपका भक्त हूँ,
छोड़िए मत मुझे, सब मेरे घर चलिए,
धन्य हो जाऊँगा आपके चरण पखार,
इस दास से यह सौभाग्य मत छीनिए ।

कहा श्रीकृष्ण ने दाऊ[29] भैया के संग,
मैं आपके घर अवश्य ही आऊँगा,
पहले यदुवंशियों के द्रोही कंस को मार,
फिर सुहृत स्वजनों का प्रिय करूँगा ।

यह सुन कुछ अनमने हो गए अक्रूरजी,
ब्रजवासी आ गए हैं, बतलाया कंस को,
दूसरे दिन दाऊजी और ग्वालबालों संग,
श्रीकृष्ण गए देखने मथुरा नगरी को ।

देखे ऊँचें-ऊँचें गोपुर परकोटे में,
और बड़े-बड़े फाटक बने घरों में,
लगे हुए जिनमें किवाड़ सोने के,
और सोने के ही तोरण[30] लगे उनमें ।

ताँबे और पीतल की चहारदीवारी,
देखी चारों ओर बनी हुए नगर के,
बहुत कठिन और कहीं से प्रवेश,
चारों ओर बनी हुई खाई नगर के ।

---

[29] दाऊ भैया-श्रीबलरामजी ।

[30] तोरण-बाहरी दरवाजे ।

सुन्दर-सुन्दर उद्यान और उपवन,
बने हुए नगर में जगह-जगह पर,
सुवर्ण से सजे चौराहे, धनियों के महल,
सब तरह की सुविधाएँ वहाँ पर ।

बहुमूल्य पत्थरों से बने हुए मकान,
जिनके झरोखे और फर्श जगमगा रहे,
सडकों और गलियों में खूब छिड़काव,
मोर, कबूतर आदि पक्षी चहक रहे ।

राजपथ से प्रवेश किया उन सबने,
नगर की स्त्रियाँ दौड़ीं उन्हें देखने,
उत्सुकतावश जो जैसे थी दौड़ पड़ी,
कुछ आधे-अधूरे, उल्टा सीधा पहने ।

मतवाले गजराज के समान श्रीकृष्ण,
चल रहे थे राजपथ पर मस्ती से,
नगरवासियों को आनन्दित कर रहे,
प्रगल्भ हँसी और प्रेमभरी चितवन से ।

मथुरा की स्त्रियाँ बहुत दिनों से,
सुन रहीं थी श्रीकृष्ण की लीलाचर्चा,
आज उन्हें स्वयं साक्षात् देख,
सफल नैनों का होना समझा ।

अपने-अपने महलों की अटारियों पर चढ़,
करने लगीं पुष्पवर्षा कृष्ण-बलराम पर,
मुखकमल प्रेम के आवेग से खिल रहे,
मन हाथ से चला गया निकलकर ।

गोपियों के भाग्य से कर रहीं ईर्ष्या,
करी ऐसी कौन सी तपस्या उन्होंने,
कि देखती रहतीं दोनों किशोरों को,
पाया जीवन का परमानन्द उन्होंने ।

तभी दिखा सामने से आता एक रजक,
उत्तम वस्त्र माँगे उससे श्रीकृष्ण ने,
कंस का एक सेवक था वह धोबी,
खरी-खोटी सुना मना कर दिया उसने ।

यद्दपि दे सकता था वह उन्हें वस्त्र,
पर कहा वनों में घूमने वाले हो तुम,
क्या पहनते हो वहाँ ऐसे ही वस्त्र,
राजा का धन लूटना चाहते हो तुम ।

उसकी ये व्यंग भरी बातें सुनकर,
कुपित हो गए श्रीकृष्ण कुछ उससे,
उसे एक तमाचा लगाया श्रीकृष्ण ने,
सिर नीचे गिरा अलग हो धड़ से ।

उसकी यह दशा देखकर उसके साथी,
कपड़ों के गठ्ठर वहीँ छोड़कर भागे,
मनचाहे वस्त्र ले लिए दोनों भाइयों ने,
बाकी ग्वालबालों को दे, चल दिए आगे ।

एक दर्जी ने सजा दिए वस्त्र उन पर,
श्रीकृष्ण ने उसे इहिलोक दे डाला,
इसके अलावा इन्द्रियाँ सम्बन्धी शक्तियाँ,
और सारुप्य मुक्ति को भी दे डाला ।

फिर गए वे सुदामा माली के घर,
विधिपूर्वक पूजा की उसने उन सबकी,
बोला आज हमारा जन्म सफल हो गया,
मुझ अकिंचन पर आपने बड़ी कृपा की ।

सुन्दर-सुन्दर हार पहनाए उन्हें,
और भगवान् से मनचाहा वर पाया,
अविचल भक्ति पायी चरणों में,
धन-सम्पदा, बल आदि भी पाया ।

कुब्जा पर कृपा; धनुषभंग

आगे बढ़े फिर वे राजमार्ग पर,
देखी एक सुन्दर युवती मगर कुबड़ी,
इसीसे उसका नाम कुब्जा पड़ गया,
चन्दन का पात्र हाथ में लिए खड़ी ।

श्रीकृष्ण के हँसते हुए पूछने पर,
वह बोली मैं प्रिय दासी हूँ कंस की,
चन्दन और अंगराग तैयार करती हूँ,
भोजराज कंस पसन्द करते हैं बहुत ही ।

पर श्रीकृष्ण का मनमोहक रूप देख,
निकल गया कुब्जा का हृदय हाथ से,
दे दिया उन्हें वह गाढ़ा अंगराग,
दोनों भाई सुशोभित हुए लगा उसे ।

अपनी कृपा का प्रत्यक्ष फल दिखलाने,
उसे सीधा करने का विचार किया[31],
अपने पैरों से उसके दोनों पंजे दबा,
ठोड़ी में ऊँगुलियाँ लगा उचका दिया ।

सारे अंग सीधे और समान हो गए,
रूप, गुण और उदारता पा लिए उसने,
भगवान के दुपट्टे का छोर पकड़,
घर चलने का आग्रह किया उसने ।

कहा श्रीकृष्ण ने अपना कार्य पूरा कर,
अवश्य ही आऊँगा मैं तुम्हारे घर,
हम से बटोहियों को तुम्हारा ही आसरा,
और विदा कर दिया उसे प्रसन्न कर ।

जब वे व्यापारियों के बाज़ार पहुँचे,
किया उनका आदर-सत्कार उन्होंने,
फिर वे वहाँ से रंगशाला पहुँच गए,
जहाँ देखा एक अद्भुत धनुष उन्होंने ।

बहुमूल्य अलंकारों से सजाया गया,
बहुत से सैनिक कर रहे रक्षा उसकी,
रोकने पर भी उठा कर धनुष कृष्ण ने,
बीच से तोड़ दिया, खींचकर डोरी उसकी ।

धनुष टूटने की भीषण ध्वनि से,
धरती, आकाश और दिशाएँ भर गयीं,
सैनिक कृष्ण को घेर खड़े हो गए,
पकड़ो- पकड़ो की चीख-पुकार मच गयी ।

पर धनुष के उन टूटे टुकड़ों से ही,
दोनों भाइयों ने कर दिया उनका संहार,
फ़ैल गयी उनके पराक्रम की बात नगर में,
प्रजा ने कर लिया उन्हें देवता स्वीकार ।

भयभीत हो गया कंस सब जान,
नींद नही आई उसे उस रात में,
स्वप्न में भी दिखे कई अपशकुन,
डाल दिया जिन्होंने उसे चिंता में ।

मल्ल-क्रीडा उत्सव शुरू करवाकर सुबह,
सबको यथायोग्य दिया गया आसन,
मंत्रियों और मण्डलेश्वरों के साथ,
कंस ने ग्रहण किया राजसिंहासन ।

चाणूर, मुष्टिक, कूट आदि पहलवान,
सब बैठ गए आकर वहाँ अखाड़े में,
हालांकि कंस भयभीत था लेकिन,
नन्द आदि गोपों को बुलवा लिया उसने ।

कुवलयापीड़ का उद्धार

कुछ देर बाद कृष्ण और बलराम भी,
चल दिए रंगभूमि को देखने के लिए,
वहाँ पहुँचकर देखा रंगभूमि के द्वार पर,
कुवलयापीड़[32] खड़ा उन्हें रोकने के लिए ।

[31] कुब्जा तीन जगह से टेढ़ी थी और इस कारण उसे लोग त्रिवक्रा या कुब्जा कहते थे ।

[32] कुवलयापीड़ हाथी में एक हजार हाथियों के समान बल था ।

कमर कस ललकार कर कहा महावत से,
भीतर जाने का मार्ग दे उन दोनों को,
ललकार सुन तिलमिला उठा महावत,
अंकुश मार बढ़ाया उनकी ओर हाथी को ।

तेजी से झपट कुवलयापीड़ हाथी ने,
अपनी सूँड में लपेट लिया श्रीकृष्ण को,
पर उसकी पकड़ से सरक गए श्रीकृष्ण,
और एक घूँसा मारा उन्होंने उसको ।

फिर जा छिपे उसके पैरों के बीच,
और खेलने लगे वो उसके साथ,
फिर खेल-ही-खेल में पूँछ पकड़,
घसीट ले गए उसे पीछे सौ हाथ ।

फिर घुमाने लगे उसे दाएँ-बाएँ,
और सामने आकर एक घूँसा मारा,
उसके आगे-आगे दौड़कर चिढाने लगे,
बहुत क्रोधित हो उठा वह हाथी, हत्यारा ।

तब एक ही हाथ से उसकी सूँड पकड़,
पटक दिया उसे धरती पर कृष्ण ने,
पैरों से दबा उखाड़ कर उसके दाँत,
महावत सहित मार दिया उसे कृष्ण ने ।

दोनों भाई उसके दाँत धारण कर,
ग्वालबालों संग चले गए रंगभूमि में,
जिसकी जैसी भावना थी उनके प्रति,
श्रीकृष्ण दिखे उन्हें उसी ही रूप में ।

वज्र से कठोर दिखे पहलवानों को,
साधारण लोगों को नर-रत्न रूप में,
दुष्ट राजाओं को दण्ड देनेवाले शासक,
कंस को दिखे अपनी मृत्यु के रूप में ।

यह देख कि कुवलयापीड़ को मार डाला,
कंस को मन-ही-मन लगा डर लगने,
लोग उनकी लीलाओं का स्मरण कर रहे,
उनके दर्शन कर भाग्य सराह रहे अपने ।

तभी चाणूर ने उन्हें सम्बोधित कर कहा,
महाराज ने सुनी तुम्हारी कुश्ती में निपुणता,
सो बुलवाया है तुम्हारा कौशल देखने,
उचित है उनकी इच्छा को पूरी करना ।

श्रीकृष्ण तो चाहते ही थे कि ऐसा हो,
बोले, करना चाहिए राजा का आज्ञापालन,
पर उचित है समान बलवालों से कुश्ती,
इसी में ही है धर्म का भी पालन ।

चाणूर ने कहा, तुम और बलराम,
ना ही बालक हो, ना ही किशोर,
मार डाला बलशाली कुवलयापीड़ को,
उचित है आजमाओ तुम हमसे जोर[33] ।

कंस का उद्धार

जोड़ बद दिए जाने पर जा भिड़े,
कृष्ण चाणूर, बलराम मुष्टिक से,
हाथ से हाथ, पाँव से पाँव बाँध,
जोर आजमाने लगे वे एक-दूजे से ।

कभी कोई पकड़ गिरा देता नीचे,
कभी जोर से पकड़, लिपट जाते,
कोई पकड़ छुड़ा पीछे हट जाता,
फिर वापस गुत्थम-गुत्था हो जाते ।

दर्शकों में कुछ स्त्रियाँ भी थीं,
अन्यायपूर्वक लगा उन्हें यह दंगल,
एक तरफ पहलवान पर्वत से,
दूसरी ओर ये दो किशोर सुकोमल ।

[33] अर्थात हमसे कुश्ती लड़ो ।

स्त्रियाँ जो ये बातें कर रहीं थी,
जा पहुँची देवकी-वसुदेव के पास भी,
निकट ही था उनका कारागृह,
हो गए वे चिन्तित बहुत ही ।

उधर श्रीकृष्ण ने भी सोच लिया,
कर लिया निश्चय उनके नाश का,
वज्र सा होने लगा उनका शरीर,
चाणूर का बल क्षीण होने लगा ।

क्रोधित हो भगवान के सीने पर,
चाणूर ने किया घूसों से प्रहार,
भगवान ने उसे वेग से घूमाकर,
पृथ्वी पर जोर से दिया पछाड़ ।

निकल गए थे उसके प्राण तो तभी,
जब उसे पकड़ श्रीकृष्ण ने घुमाया,
ऐसे ही मारा गया मुष्टिक भी,
जब बलरामजी ने उसे तमाचा लगाया ।

फिर सामने आते ही बलरामजी ने,
उपेक्षापूर्वक कूट को भी दिया मार,
इसी तरह शल और तोशल को,
भगवान श्रीकृष्ण ने दिया मार ।

जब ये पाँचों प्रधान पहलवान मर गए,
बाकी बचे पहलवान भाग गए वहाँ से,
बहुत व्यथित हुआ यह देखकर कंस,
सबको मार डालो, कहा सेवकों से ।

नगर से बाहर निकाल दो लडकों को,
और गोपों का सारा धन छीन डालो,
नन्द, वसुदेव और मेरे पिता उग्रसेन,
शीघ्रता से इन सभी को मार डालो ।

अभी कंस यह सब कह ही रहा था,
कि कृष्ण उछलकर जा चढ़े मंच पर,
तुरन्त कंस ने ढाल, तलवार उठा ली,
आसन्न मृत्यु को अपने समक्ष देखकर ।

अवसर ढूँढ रहा पैंतरा बदल वार का,
पर बलपूर्वक पकड़ लिया उसे कृष्ण ने,
मुकुट गिरा, कंस को केशों से पकड़,
रंगभूमि में गिरा दिया उसे कृष्ण ने ।

फिर कूद पड़े स्वयं कृष्ण कंस पर,
उनके कूदते ही मृत्यु हो गयी उसकी,
द्वेषभाव से सही, निरन्तर चिन्तन से,
दुर्लभ सारुप्य मुक्ति हुई कंस की ।

कंक और न्यग्रोध आदि आठ अनुज,
दौड़े कंस का बदला लेने के लिए,
बलरामजी ने हाथ में परिध उठा,
उन सबके प्राण अनायास ले लिए ।

शोकमग्न हो गयीं उन सबकी पत्नियाँ,
कहने लगीं, यह नगरी अनाथ हो गयी,
द्रोह किया आपने निरपराध प्राणियों से,
हे नाथ ! इसी कारण यह दशा हो गयी ।

बोलीं, जगत के सभी प्राणियों के हैं,
उत्पत्ति और प्रलय के आधार श्रीकृष्ण,
भला उन प्रभु का तिरस्कार कर,
कौन प्राणी रह सकता है प्रसन्न ?

सारे संसार के जीवनदाता श्रीकृष्ण ने,
अंतिम संस्कार करा, उन्हें ढाढस बंधाया,
फिर कारागृह जा, अपने माँ-बाप को छुड़ा,
उनके चरणों में अपना शीश नवाया ।

लेकिन उन्हें जगदीश्वर समझकर,
देवकी-वसुदेव पड़ गए संकोच में,
उन्हें पुत्र-स्नेह का आनन्द मिल सके,
यह सोच योगमाया फैला दी उन्होंने ।

फिर दोनों भाई कहने लगे उनसे,
मिल नहीं सका आपका सानिद्ध्य हमें,
माता-पिता जन्म दे लालन-पालन करते,
पुत्र का कर्तव्य प्रसन्न रखे वो उन्हें ।

समर्थ होते हुए भी करता नहीं जो,
बूढ़े माता-पिता, गुरु आदि की सेवा,
करता रहता स्वयं अपना ही पोषण,
उसका जीना तो व्यर्थ ही हो रहता ।

इतने दिन हमारे बीते व्यर्थ ही,
कंस के कारण सेवा कर ना सके,
कितने कष्ट दिए आपको कंस ने,
हम कुछ भी सहायता कर ना सके ।

उमड़ आया मन में वात्सल्य प्रेम,
परमानन्द पाया हृदय से लगा उन्हें,
ज्वार फूट पड़ा भावनाओं का उनकी,
भिगो दिया अपने प्रेमाश्रुओं से उन्हें ।

अपने माता-पिता को सान्त्वना देकर,
बना दिया यदुवंशियों का राजा नाना को,
कहा, हम आपकी प्रजा है, शासन कीजिए,
बड़े-बड़े देवता भी भेंट देंगे आपको ।

फिर बुलवाया भगवान श्रीकृष्ण ने,
यदुवंशियों आदि सजातीय बन्धुओं को,
कंस के डर से भाग गए थे इधर-उधर,
अपने-अपने घरों में फिर बसाया उनको ।

सब सुखी और सुरक्षित हो रहे,
भगवान की कृपा हुई अपरम्पार,
मथुरावासी नित्य उत्साहित रहते,
श्रीकृष्ण के दर्शन पाकर बारम्बार ।

फिर नन्दबाबा के पास जा कहा उन्होंने,
आप ने हमें पाल-पोस कर बड़ा किया,
आपका अधिकार हमपर है माँ-बाप सा,
और आदर-सत्कार कर उन्हें विदा किया ।

तब वसुदेवजी ने गर्गाचार्यजी को बुला,
यज्ञोपवीत संस्कार करवाया दोनों का,
दोनों भाई प्राप्त हुए द्विजत्व को,
शुभारम्भ हुआ उनके विद्याध्ययन का ।

अवन्तीपुर[34] में सान्दीपनि मुनि के पास,
गए उनके गुरुकुल में दोनों भाई पढ़ने,
वहाँ एक आदर्श विद्यार्थी की तरह,
दोनों भाई लगे उनकी सेवा करने ।

छहों अंग और उपनिषदों सहित,
सम्पूर्ण वेदों की शिक्षा पायी उन्होंने,
इसके सिवा अनेक मन्त्र, शास्त्र, स्मृति,
उन सबकी भी समुचित विद्या मिली उन्हें ।

जो हैं समस्त विद्याओं के प्रवर्तक,
वे कृष्ण-बलराम कर रहे नर-लीला,
एक बार गुरूजी का बताना पर्याप्त,
चौसठ दिन में सीख लीं चौसठ कला ।

इस प्रकार समस्त विद्याएँ ग्रहण कर,
विनती करी गुरूजी से वो दक्षिणा ले लें,
उनकी अद्भुत महिमा और बुद्धि देख,
कहा, उनके डूब गए पुत्र को वापस ला दें ।

प्रभासक्षेत्र में, समुद्र के भीतर,
डूब गया था वह पुत्र मुनि का,
तुरन्त रथ पर सवार हो दोनों ने,
निश्चय किया प्रभासक्षेत्र जाने का ।

वहाँ पहुँच आज्ञा दी समुद्र को,
कि उनके गुरुपुत्र को वापस लौटा दे,
वह बोला पञ्चजन दैत्य मुझमें रहता,
बालक को चुराया है उसी दैत्य ने ।

शंख के रूप में रहता था वह दैत्य,
जल में जा मार डाला उसे कृष्ण ने,
वह बालक उसके पेट में ना मिला,
ले लिया उसके शरीर का शंख उन्होंने ।

[34] अवन्तीपुर-उज्जैन ।

तब बलरामजी के साथ यमपुरी जा,
अपना शंख बजाया भगवान कृष्ण ने,
पूछा यमराज ने क्या सेवा करूं आपकी,
तो कहा वह उनके गुरुपुत्र को लौटा दे ।

कर्मबन्धन अनुसार वह लाया गया था,
पर लौटा दिया उसे यम ने आज्ञा मान,
सौंप दिया उसे ले जाकर गुरुदेव को,
'माँग लें और जो चाहिए', बोले भगवान् ।

गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया संतुष्ट हो,
नवीन बनी रहे तुम्हारी विद्या, कहा,
लोक-पावन कीर्ति प्राप्त हो उन्हें,
और दोनों को घर जाने को कहा ।

मेघ सम ध्वनि वाले रथ पर सवार हो,
दोनों भाई लौट आए मथुरा नगरी में,
जैसे खोया धन वापस मिल गया हो,
लोगों ने परमानन्द पाया देख उन्हें ।

उद्धवजी की ब्रजयात्रा, गोपियों को सन्देश

उद्धवजी एक प्रधान वृष्णिवंशी थे,
बृहस्पतिजी के शिष्य, परम बुद्धिमान,
श्रीकृष्ण के चचेरे भाई और सखा
मन्त्री भी और अत्यन्त ज्ञानवान ।

कहा कृष्ण ने उनसे वे ब्रज जाएँ,
नन्दबाबा और मैया को धीरज बंधाएँ,
उनके विरह में व्याकुल हैं गोपियाँ,
ब्रज जाकर किसी तरह उन्हें समझाएँ ।

सब त्याग दिया मेरे लिए उन्होंने,
घर-परिवार, पति, पुत्र, सम्बन्धी,
अपना प्रियतम हीं नहीं, आत्मा माना,
लोक लाज की परवाह ना ज़रा की ।

मेरा व्रत है, अनन्य शरण जो लेते,
योगक्षेम वहन करता मैं उनका,
मैंने कहा था उनसे, मैं आऊँगा,
वही है आधार उनके जीवन का ।

भगवान का संदेश ले चल पड़े उद्धव,
सूर्यास्त के समय पहुँचे ब्रज में,
लौट रही थीं गौएँ जंगल से,
छिप गया उनका रथ गौधूली में ।

गौएँ दुहने की ध्वनि आ रही,
गोप-गोपियाँ कर रहे लीलागान,
धूप से सुगन्धित सारा वातावरण,
और दीपों से हर घर प्रकाशमान ।

चारों ओर फूलों से लदे वृक्ष,
पक्षी चहक रहे कर रहे भौरें गुंजार,
खिल रहे कमल जगह-जगह पर,
हंस और पक्षी कर रहे विहार ।

श्रीकृष्ण सम जान उन्हें नन्दबाबा ने,
सम्मान किया गले लगाकर उनका,
पूछा फिर सबकी कुशलक्षेम जान,
क्या श्रीकृष्ण स्मरण करते हैं उनका ?

क्या एक बार भी गोविन्द फिर आएँगे,
कितनी बार रक्षा की उन्होंने हमारी,
हृदय उदार, अनन्त शक्ति के स्वामी,
उनकी स्मृति में रमी चित्तवृति हमारी ।

यमुना नदी, गिरिराज को देख,
कृष्णमय हो जाता है मन हमारा,
देवशिरोमणि मानता हूँ उन दोनों को,
खेल-खेल में ही कितने दुष्टों को मारा ।

एक-एक लीला का स्मरण कर,
प्रेमावेग से उनका हृदय भर आया,
यशोदा मैया भी वहीं विराजमान थीं,
उनकी आँखों से अश्रुप्रवाह रुक ना पाया ।

श्रीकृष्ण के प्रति अगाध अनुराग देख,
आनन्दमग्न हो उद्धवजी लगे कहने,
आप दोनों अत्यन्त ही भाग्यवान हैं,
स्वयं नारायण बसे हैं आपके हृदय में ।

पुराण पुरुष हैं बलराम और श्रीकृष्ण,
सारे संसार के उपादान और निमित्तकारण,
श्रीकृष्ण पुरुष तो बलरामजी हैं प्रकृति,
समस्त शरीरों में जीवन का कारण ।

और जो उनमें ज्ञानस्वरूप जीव है,
करते हैं श्रीभगवान उसका नियमन,
परम गति पाता वह जो अन्त समय,
क्षण भर भी लगाता उनमें अपना मन ।

सबके आत्मा और परम कारण,
अवतरित हुए भार हरने पृथ्वी का,
उनके प्रति इतना दृढ़ प्रेम आप में,
धन्य, धन्य और धन्य जन्म आपका ।

सत्य करेंगे वे कथन अपना,
थोड़े ही समय में ब्रज आएँगे,
परम भाग्यशाली हैं आप दोनों,
भगवान् को अपने समीप पाएँगे ।

जैसे काष्ठ में सदा रहती अग्नि,
वे भी रहते सब प्राणियों के हृदय में,
एक शरीर का अभिमान ना होने से,
सभी प्राणी लगते एक समान उन्हें ।

ना कोई अपना, ना कोई पराया,
ना कोई देह है, ना ही जन्म उनका,
लीला के लिए लेते विभिन्न अवतार,
इस लोक में शेष कोई कर्म ना उनका ।

सत्व, रज, तम, कोई गुण ना उनमें,
पर लीला हेतु गुण स्वीकार कर लेते,
और इन गुणों को स्वीकार कर वे,
जगत की रचना, पालन, संहार करते ।

जैसे खुद घूमने से दुनिया लगती घूमती,
वैसे ही सब कुछ करता चित्त वास्तव में,
पर उस चित्त में अहम बुद्धि होने से,
जीव लगता अपने को कर्ता समझने ।

श्रीकृष्ण केवल आपके ही पुत्र नहीं,
सब प्राणियों के है सर्वस्व और आत्मा,
स्थावर, जंगम कुछ उनसे पृथक नहीं,
सब वे ही हैं, परम सत्य, परमात्मा ।[35]

गोपियाँ उठ गयीं भोर होने से पहले,
घर को संवारती, लीलागान कर रहीं,
स्वर्ण रथ खड़ा देख नन्दबाबा के द्वार,
कौन आया होगा वे सोचने लग रहीं ।

उद्धवजी दिखे, श्रीकृष्ण जैसे ही सुन्दर,
लंबी भुजाएँ, कोमल नेत्र, पीताम्बर धारी,
कमलपुष्पों की माला, कानों में कुण्डल,
मुख पर मुसकान, चित्त हरने वाली ।

घेरकर खड़ी हो गयीं वे उद्धवजी को,
विनय से झुक किया सत्कार उनका,
कहा, माता-पिता को भेजा होगा सन्देश,
हमें पूछें कृष्ण, कोई कारण नहीं इसका ?

जगत में रिश्ता होता स्वार्थ का,
मतलब निकलने पर फिर पूछे कौन,
भूल गयीं वो किससे क्या कह रहीं हैं,
कृष्ण प्रेम के आगे हुआ सब गौण ।

याद कर श्रीकृष्ण की सब लीलाएँ,
करने लगीं गोपियाँ लीलाओं का गान,
भूल गयीं स्त्री-सुलभ लज्जा को भी,
आत्मविस्मृत हो कर रहीं अश्रु स्नान ।

[35] समस्त ज्ञान का सारभूत इन दो पदों में है ।

तभी एक ने देखा गुनगुनाता भौरां,
समझ बैठी श्रीकृष्ण का दूत उसे,
सोचा रूठी हुई समझकर श्रीकृष्ण ने,
भेजा होगा भौरें को, मनाने को उसे ।

कहने लगी, तू है कपटी का सखा,
तू भी है कपटी, मत छू पैरों को,
अनुनय-विनय मत कर तू हमसे,
झूठे प्रणाम कर मना ना हमको ।

हमारी सौतों के स्पर्श से मसली हुई,
श्रीकृष्ण की वनमाला के कुंकुम से,
पीली-पीली रंगी तेरी मूंछे कह रहीं,
तू भी प्रेम न करता किसी कुसुम से ।

उड़ा करता है तू यहाँ से वहाँ,
जैसे तेरे स्वामी, तू भी वैसा ही,
मनाये वो मथुरा की माननियों को,
रखें अपना कृपाप्रसाद अपने पास ही ।

जैसा तू काला है, वैसे ही वे भी हैं,
तुझ जैसे ही तेरे स्वामी भी निकले,
एक बार अपने हृदय से लगाकर,
हम गोपियों को छोड़, चल-निकले ।

पता नहीं कैसे सुकुमारी लक्ष्मी,
करती रहतीं सेवा उनके चरणों की,
आ गयी होंगी चिकनी-चुपड़ी बातों में,
चुरा लिया होगा उन्होंने उनका चित्त भी ।

अरे भ्रमर ! हम तो वनवासिनी हैं,
नहीं है हमारे तो घर-द्वार भी,
क्यों कर रहा तू उनके गुणगान,
हमें मनाने के लिए ही तो ही ?

वे हमारे लिए कोई नए तो नहीं,
जाने-पहचाने हैं, हैं बिलकुल पुराने,
कर गुणगान वहीँ जा, उन के सामने,
वे नई हैं, कम जानती हैं उनकी लीलाएँ ।

इस समय वे उनकी प्यारी हैं,
पीड़ा मिटा दी है उनके हृदय की,
वे तेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगी,
मुँहमाँगा तुझे इनाम भी दे देंगी ।

वो छटपटा रहे हैं हमारे लिए,
क्यों तू ऐसी बात कह रहा,
कौन ऐसी स्त्री इस त्रिलोकी में,
जो रख सके मन वश में ज़रा ?

उनकी कपटभरी मनोहर मुसकान,
और भौहों के मतवाले इशारे,
औरों की तो बात ही क्या है,
लक्ष्मीजी भी बैठी हैं दिल को हारे ।

परन्तु तू जाकर कहना उनसे,
तुम्हारा नाम तो है 'उत्तमश्लोक'[36],
पर दीनों पर जो दया ना करें,
तो कौन कहेगा उन्हें उत्तमश्लोक ?

मत कर हमसे तू अनुनय-विनय,
जानती हैं तू सीख कर आया उनसे,
पर वे तनिक भी कृतज्ञ नहीं हैं,
मत रख कुछ उम्मीद तू हमसे ।

छोड़ दिए हमने श्रीकृष्ण के लिए,
अपने पति, पुत्र, सब सगे-सम्बन्धी,
पर वो हमको छोड़ कर चल दिए,
देखे क्या किसी ने ऐसे कृतघ्न कहीं ?

जब वे राम बने थे तब मारा उन्होंने,
व्याध के समान छिपकर बालि को,
और जब वामन बने तब डाल दिया,
वरुणपाश से बाँधकर पाताल बलि को ।

[36] 'उत्तमश्लोक'-यशस्वी; दीनों पर दया करने वाले ।

ठीक कौओ जैसे, जो बलि खाकर भी,
घेर लेते हैं बलि देनेवाले को ही,
सो जाने दे, हमें कृष्ण से ही क्या,
किसी भी काली चीज से लेना-देना नहीं ।

लेकिन तू पूछने लगे जो हमसे,
फिर क्यों कर रहीं हम उनकी चर्चा,
क्या करें हम कुछ कर नहीं सकतीं,
छुटे नहीं छूटता एक बार लगा चसका ।

श्रीकृष्ण की लीलारूप कर्णामृत के,
एक कण को भी जो चख लेता,
राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि द्वन्दों से,
अनायास ही वो छुटकारा पा लेता ।

बहुत से तो अपनी घर-गृहस्थी छोड़,
संग्रह-परिग्रह छोड़ अकिंचन हो जाते,
भिक्षा माँगते, दीन-दुनिया के ना रहते,
पर श्रीकृष्ण की कथा छोड़ नहीं पाते ।

जैसे व्याध का सुमधुर गान सुन,
भोली-भाली हरिनियाँ फँस जाती जाल में,
वैसे ही हम भोली-भाली गोपियाँ भी,
फँस गयीं उस कपटी-छलिया के जाल में ।

अच्छा छोड़ो सब और ये बतलाओ,
क्या हमें वहाँ ले चलना चाहते,
बड़ा कठिन है फिर वापस लौटना,
अब बतलाओ तुम क्या हमसे चाहते ?

फिर पूछने लगीं कृष्ण की कुशलक्षेम,
क्या नन्दबाबा और मैया को करते याद,
क्या कभी हमारे लिए भी पूछते वो,
क्या फिर रखेंगे हमारे सिरों पर हाथ ?

कृष्ण के लिए व्याकुल गोपियों को देख,
सुनाने लगे उद्धवजी सन्देश कृष्ण का,
बोले, तुम कृतकृत्य हो और धन्य हो,
तुम्हारे हृदयों में प्रेम भरा कृष्ण का ।

किए जाते हैं सभी जप, तप, यत्न,
यही प्रेम और भक्ति पाने के लिए,
वही दुर्लभ प्रेम और भक्ति कृष्ण की,
सहज सुलभ है तुम लोगों के लिए ।

पति, पुत्र, स्वजन, देहाभिमान छोड़,
सर्वस्व अर्पण कर दिया तुमने कृष्ण को,
उनके वियोग में पा लिया वह भाव,
कण-कण में जो लखाता कृष्ण को ।

कृतार्थ हुआ मैं इसका साक्षी बन,
करी है मुझ पर बड़ी दया तुमने,
लेकर आया हूँ तुम्हारे लिए सन्देश,
भेजा यह तुम्हारे लिए श्रीकृष्ण ने ।

“सबका उपादान कारण होने से मैं,
सबमें अनुगत हूँ, आत्मा हूँ सबका,
इसलिए मुझसे कभी भी तुम्हारा,
किसी तरह वियोग हो नहीं सकता ।

जैसे संसार के सभी भौतिक पदार्थों में,
आकाश, वायु आदि पञ्चभूत हैं व्याप्त,
वैसे ही मन, प्राण, इन्द्रिय और विषय,
सबका आश्रय हूँ, सब मुझसे परिव्याप्त ।

निर्लिप्त है सब तरह से आत्मा,
पृथक माया और उसके कार्यों से,
विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, सर्वथा शुद्ध,
प्रभावित नहीं प्रकृति के गुणों से ।

माया की तीनों वृत्तियों[37] के द्वारा,
प्रतीत होता है आत्मा तीन तरह[38] से,
मिथ्या हैं जैसे स्वप्न में देखे पदार्थ,
इन्द्रियों के विषय भी मिथ्या हैं वैसे ।

[37] तीन वृत्तियाँ-सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत ।
[38] तीन तरह से-प्राज्ञ, तैजस और विश्वरूप से ।

इसलिए उचित है मनुष्य को कि रोक ले,
इन्द्रियों और विषयों में अटके मन को,
जगत के स्वाप्निक विषयों को त्याग,
उद्दत रहे मेरा साक्षात्कार करने को ।

जिस प्रकार घूम-फिरकर नदियाँ,
अन्त में जा मिलती समुद्र में,
वैसे ही त्याग, तपस्या, समस्त धर्म,
सब की परिणति है मुझे पाने में ।

जानता हूँ मैं तुम्हारा जीवन-सर्वस्व हूँ,
पर इसलिए चला गया हूँ दूर तुमसे,
कि तुम मेरा निरन्तर ध्यान कर सको,
और पास रह सको मेरे अपने मन से ।

स्त्रियों और अन्यान्य प्रेमियों का चित्त,
लगा रहता जैसे परदेसी प्रियतम में,
उतना निश्चल भाव से नहीं लगता,
आँखों के सामने रहनेवाले प्रियतम में ।

नि:शेष मन से स्मरण करने से,
मुझे सदा के लिए होओगी प्राप्त,
जैसे महारास से रोकी गयी गोपियाँ,
स्मरण मात्र से ही मुझे हो गयीं प्राप्त ।"

प्रेम सहित बोली गोपियाँ हम खुश हैं,
कंस मरा, श्रीकृष्ण माता-पिता के साथ,
पर जैसा हमसे प्रेम था क्या वैसा ही,
वे प्रेम करते हैं मथुरावासिनियों के साथ ?

और भी तरह-तरह की बातें,
उद्धवजी से पूछ रहीं गोपियाँ,
क्या कभी श्रीकृष्ण याद करते हैं,
शरद ऋतु की वे रमणीय रात्रियाँ ?

बोलीं, कण-कण यहाँ का रचा-बसा,
श्रीकृष्ण की लीलाओं और यादों से,
इन्हें जब-जब देखती, सुनती हम,
मन भर-भर आता उनकी यादों से ।

वो लक्ष्मीनाथ हों तो भी क्या,
हमारे लिए तो हैं वो ब्रजनाथ ही,
एकमात्र स्वामी हम ब्रजगोपियों के,
आओ रक्षा करो, हे गोविन्द ! तुम ही ।

इन्द्रियातीत भगवान श्रीकृष्ण को वे अब,
आत्मरूप में सर्वत्र स्थित जान चुकी थीं,
अब वे बड़े प्रेम और आदर के साथ,
उद्धवजी का सत्कार करने लगीं थीं ।

गोपियों की विरह व्यथा मिटाने,
कई महीने रहे उद्धवजी ब्रज में,
उनकी लीलास्थलियों को देखते,
वे महीने बीत गए जैसे क्षण में ।

प्रेम विकलता और चेष्टाएँ देख उनकी,
भर गए उद्धवजी अतीव आनन्द से,
बोले, गोपियों का ही जीवन सफल है,
समर्पित कृष्ण के प्रति महाभाव[39] से ।

चस्का लगा जिन्हें लीलाकथा रस का,
क्या आवश्यकता उन्हें यग-याग की,
क्या लाभ कल्पों तक ब्रह्मा होने से,
यदि हृदय में श्रीकृष्ण का प्रेम नहीं ?

भगवान के स्वरूप और रहस्य को,
बिना जाने भी यदि प्रेम कोई करता,
तो भी वे अपनी शक्ति और कृपा से,
कर देते परम कल्याण उस भक्त का ।

ठीक वैसे ही जैसे अनजाने में,
पी ले कोई यदि अमृत को,
तो वह अपनी वस्तु शक्ति से,
अमर कर देता पीने वाले को ।

[39] महाभाव-भक्ति की सर्वोत्कृष्ट स्थिति, जिसमें भक्त और भगवान् के बीच कोई भेद नहीं रहता । चैतन्य महाप्रभु इस महाभाव के एक जीवन्त उदाहरण हैं ।

जैसा प्रेमदान किया भगवान ने इन्हें,
लक्ष्मीजी को भी वैसा मिला नहीं,
इस वृन्दावन की रज बन जाऊँ,
मेरा परम सौभाग्य होगा यही ।

भला पा सका है कहाँ कोई,
भगवान का परम प्रेममय स्वरूप,
लेकिन अपना सर्वस्व अर्पण कर,
ब्रज की गोपियाँ पा गई वह रूप ।

फिर जब लौटने लगे उद्धवजी मथुरा,
ब्रजवासियों ने अनेक भेंटें दी उन्हें,
बोले हमें नहीं चाहिए कुछ और,
बस लगा रहे हमारा मन कृष्ण में ।

श्रीकृष्ण कुब्जा और अक्रूरजी के घर

कहा था श्रीकृष्ण ने कि मैं आऊँगा,
सो गए कुब्जा के घर, वचन निभाने,
हड़बड़ा गई वह श्रीकृष्ण को आया देख,
आसन दे आदर-सत्कार किया उसने ।

केवल अंगराग अर्पित किया था उसने,
उसके बदले मिला उसे यह अवसर,
मनचाहा सानिद्ध्य पाया श्रीकृष्ण का,
मिला भगवान से उसे अभीष्ट वर ।

फिर अक्रूरजी के घर गए श्रीकृष्ण,
बहुत आनन्दित हुए वे उन्हें देखकर,
आदर सत्कार किया दोनों भाइयों का,
और कहने लगे अक्रूरजी हाथ जोड़कर ।

बचा लिया आपने यदुवंश को संकट से,
पापी कंस को अनुयायियों सहित मारा,
आप दोनों हैं जगत के आदिकारण,
आपने ही रचा है यह जगत सारा ।

आपके सिवाय नहीं किसी का अस्तित्व,
आप ही प्रतीत होते अनेक रूपों में,
त्रिगुण स्वीकार कर रचते जगत को,
पर नहीं पड़ते आप किसी बंधन में ।

जगत के एकमात्र पिता और शिक्षक,
वही आज आप हमारे घर में पधारे,
कोई सीमा नहीं हमारे सौभाग्य की,
धन्य-धन्य हो गए घर आज हमारे ।

जाना नहीं जाता आपका स्वरूप,
पर आपके दर्शन हो रहे साक्षात्,
संसार के बन्धनों में फँसे हुए हम,
हे प्रभु ! इन बंधनों को दीजिए काट ।

बोले श्रीकृष्ण, आप हमारे आदरणीय हैं,
हम आपके बालक और कृपा के पात्र,
देवताओं से भी बढ़कर हैं आपसे संत,
क्योंकि देवताओं में तो रहता है स्वार्थ ।

सर्वश्रेष्ठ हैं आप हमारे हितैषी सुहृदों में,
सो जाइए आप पाण्डवों का कुशल जानने,
सुना है राजा पाण्डु के मर जाने पर,
पड़ गए थे युधिष्ठिर आदि बड़े दुःख में ।

राजा धृतराष्ट्र उन्हें हस्तिनापुर ले आए,
और रह रहे हैं अब पाण्डव वहाँ पर,
एक तो अँधे, फिर मनोबल की कमी,
पुत्र दुर्योधन का मोह हावी उन पर ।

अक्रूरजी का हस्तिनापुर जाना

आज्ञा पा अक्रूरजी गए हस्तिनापुर,
मिले भीष्म, धृतराष्ट्र आदि से पहले,
फिर वहाँ का हाल ठीक से जानने,
कुछ महीनों तक अक्रूरजी वहीं रहे ।

कुन्ती और विदुरजी ने बतलाया उन्हें,
कि दुर्योधन आदि पाण्डवों से जलते,
उनका शस्त्रकौशल, बल, वीरता आदि,
और प्रजा का प्रेम हैं कारण इसके ।

उतारू हो जाते पाण्डवों का अनिष्ट करने,
कई बार विषदान आदि अत्याचार किए,
आगे भी बहुत कुछ करना चाहते हैं,
कठिन हो रहा, रहना पाण्डवों के लिए ।

फिर अक्रूरजी गए बहन कुन्ती के घर,
कह सुनाई कुन्ती ने अपनी व्यथा उन्हें,
कहा, दुःख भोग रहीं हूँ बच्चों के साथ,
क्या श्रीकृष्ण लेंगे कभी शरण में उन्हें ?

श्रीकृष्ण को अपने सामने समझ कुन्ती,
दुखी हो रोने लगी फफक-फफककर,
अक्रूरजी और विदुरजी[40] दोनों ने समझाया,
अधर्म का नाश करेंगे, तुम्हारे पुत्र वीरवर ।

फिर मथुरा वापस लौटने से पहले,
अक्रूरजी गए राजा धृतराष्ट्र के पास,
तब तक स्पष्ट हो चला था कि वे,
उचित नहीं कर रहे भतीजों के साथ ।

कौरवों की भरी सभा में उन्होंने,
कृष्ण और बलराम का सन्देश सुनाया,
“अब और बढ़ाइये कीर्ति कुरुवंशियों की,
पाण्डु परलोक सिधारे, राज्य आपने पाया ।

धर्म सहित पालन कीजिए पृथ्वी का,
रखिए प्रसन्न प्रजा को सद्व्यवहार से,
स्वजनों के साथ कीजिए समान बर्ताव,
लोक-परलोक में यश मिलेगा इसी से ।

यदि करेंगे इसके विपरीत आचरण,
तो निंदा होगी आपकी इस लोक में,
जाना पड़ेगा नरक मरने के बाद,
सदा साथ ना रहता कोई जग में ।

छूट जाएगा यह तन भी एक दिन,
फिर स्त्री-पुत्र आदि की क्या हो बात,
जीव अकेला पैदा होता और मरता,
लेकर कोई कुछ ना जाता साथ ।

भोगते सब अपनी करनी का फल,
पाप-पुण्य सब खुद भोगना पड़ता,
सिर रखता व्यर्थ ही पाप की गठरी,
खुद ही उसका बोझ उठाना पड़ता ।

चार दिन की चाँदनी है ये दुनिया,
सपने का खिलवाड़, जादू का तमाशा,
सो मत कीजिए पक्षपात ममतावश,
समत्व में स्थित हो, छोड़ सब आशा ।”

बोले धृतराष्ट्र, मेरे भले की कह रहे,
पर मेरा हृदय विषम किया ममता ने,
ठहर नहीं रहे मेरे मन में ये उपदेश,
होगा वही जो चाहा होगा कृष्ण ने ।

अचिन्त्य है उनकी माया का मर्म,
इसी से रच, प्रवेश करते वे जग में,
नमस्कार करता हूँ मैं उन्हीं प्रभु को,
जिनकी लीला झलक रही इस जग में ।

महाराज धृतराष्ट्र का अभिप्राय जान,
लौट आए अक्रूरजी श्रीकृष्ण के पास,
कह सुनाया जो सब देखा-सुना, जाना,
भेजे गए थे वे इसी उद्देश्य के साथ ।

[40] कुन्ती विदुरजी के घर में रह रहीं थीं ।

जरासन्ध से युद्ध और द्वारका का निर्माण

कंस की दो रानियाँ अस्ति और प्राप्ति,
मगधराज जरासन्ध की थीं वे पुत्रियाँ,
कंस के वध से बहुत दुखी थीं दोनों,
जाकर पिता से दुखड़ा व्यक्त किया ।

पहले तो शोकग्रस्त हो उठा जरासन्ध,
फिर क्रोध में भर तिलमिला उठा,
बहुत बड़ी तैयारी की युद्ध की उसने,
सोचा किसी यदुवंशी को रहने नहीं दूँगा ।

घेर लिया मथुरा को चहूँ ओर से,
तेईस अक्षोहिणी सेना लेकर साथ,
पुरवासियों को भयभीत देख कृष्ण,
सोचने लगे कैसे हो शत्रु का नाश ?

सोचा मेरे अवतार का उद्देश्य है,
पृथ्वी का बोझ मैं करूँ हल्का,
साधू-संत और सज्जनों की रक्षा,
और संहार करूँ मैं दुष्ट-दुर्जनों का ।

तभी सूर्य से प्रकाशमान दो रथ,
आकाश से आ उतरे उनके सामने,
साथ ही उनके दिव्य आयुध भी,
स्वयं ही आ प्रकटे उनके पास में ।

कहा श्रीकृष्ण ने दाऊ बलरामजी को,
आप ही यदुवंश के स्वामी और नाथ,
यह आपका रथ, हल और मूसल हैं,
कीजिए यदुवंशियों की रक्षा आप ।

अवतार ग्रहण किया है हम दोनों ने,
साधुओं का कल्याण करने के लिए,
अत: आप यह तेईस अक्षोहिणी सेना,
पृथ्वी का विपुल भार नष्ट कीजिए ।

तब दोनों भाई कवच धारण कर,
रथ पर सवार हो मथुरा से निकले,
एक छोटी सेना पीछे-पीछे चल रही,
आगे-आगे वे अपने आयुध ले चले ।

दारुक था सारथी श्रीकृष्ण का,
हाँक ले गया रथ पुरी के बाहर,
पाञ्चजन्य फूँका जो कृष्ण ने,
विपक्षी वीरों में भर गया डर ।

तिरस्कार किया जरासन्ध ने कृष्ण का,
कहा, नराधम ! तू तो अभी है बच्चा,
अकेले तुझसे लड़ने में लज्जा लगती,
इतने दिन तू जाने कहाँ-कहाँ छिपा ?

हत्यारा है तू अपने मामा का,
सो लड़ नहीं सकता मैं तेरे साथ,
फिर ललकारा बलराम को उसने,
हिम्मत हो तो आ लड़ मेरे साथ ।

प्रत्युत्तर में भगवान कृष्ण ने कहा,
डींगे हाँकना तुझे शोभा नहीं देता,
नाच रही है तेरी मृत्यु सिर पर,
बक-बक करके तू बच नहीं सकता ।

जिस प्रकार ढक लेती है वायु,
सूर्य बादलों से, अग्नि धूएँ से,
दोनों भाइयों के रथ ढक दिए,
जरासन्ध ने भी अपनी सेना से ।

गरुड़चिंहित और तालचिंहित ध्वजावाले,
दिखे नहीं रथ जब दोनों भाइयों के,
मथुरा की स्त्रियाँ चिन्ता में पड़ गयीं,
मूर्छित हो गयीं शोक में भर ।

अपनी सेना पर बाणों की वर्षा देख,
शारंगधनुष का टंकार किया कृष्ण ने,
फिर छोड़ने लगे वे बाण पर बाण,
घेर लिया सेना को बाणों की वर्षा ने ।

छिन्न-भिन्न हो गयी सेना जरासन्ध की,
हाथी, घोड़े और सैनिक मरने लगे,
उधर बलरामजी के हल-मूसल से भी,
रक्त की नदियाँ-नाले बहने लगे ।

बड़ी भयावह और दुर्गम उस सेना को,
क्षण में ही उन्होंने नष्ट कर डाला,
सृष्टि-संहार खेल-खेल में करनेवालो ने,
उस सेना को क्षण में ही मार डाला ।

मारी गयी सारी सेना जरासन्ध की,
रथ टूट गया, बस प्राण बच रहे,
बलरामजी ने पकड़ लिया उसे सिंह सा,
पर श्रीकृष्ण ने छुड़वा दिया उसे[41] ।

शूरवीरों में प्रतिष्ठा थी जरासन्ध की,
यों छोड़े जाने पर बड़ी लज्जा आई उसे,
सो तपस्या करने की सोची उसने,
पर साथी नरपतियों ने रोक लिया उसे ।

उदास हो लौट गया वो मगध को,
भयरहित हो गए मथुरा के निवासी,
अभिनन्दन किया कृष्ण, बलराम का,
आनन्दित हो उन पर पुष्प वर्षा की ।

तेईस-तेईस अक्षोहिनी सेना लेकर,
सत्रह बार जरासन्ध आया लड़ने,
बार-बार हार जता था जरासन्ध,
पर हर बार छोड़ दिया उसे उन्होंने ।

अठारहवीं बार युद्ध छिड़ने से पहले,
नारदजी की प्रेरणा से कालयवन आया,
क्या करेंगे यदि उससे लड़ते वक्त,
जरासन्ध भी मथुरा से लड़ने आया ?

मार डालेगा या पकड़ ले जाएगा,
हमारे बन्धुओं को वो साथ अपने,
सो कुछ ऐसा उपाय कर लें हम,
कि बचा लें जरासन्ध से हम उन्हें ।

सो एक ऐसा दुर्ग बनाएँगे हम,
कठिन होगा जिसमें प्रवेश करना,
अपने स्वजनों-बन्धुओं को उसमें छोड़,
फिर उचित होगा कालयवन से लड़ना ।

बलरामजी से इस प्रकार मंत्रणा कर,
समुद्र में एक दुर्गम नगर बनवाया,
अड़तालीस कोस लम्बाई और चौड़ाई,
अद्भुत, अजेय वह नगर बनवाया ।

वास्तुविज्ञान और शिल्पकला की निपुणता,
प्रकट थी नगर की एक-एक वस्तु में,
सडकें, चौराहे, घर, महल, वन-उपवन,
जहाँ जो होना चाहिए, था नगर में ।

देवताओं के वृक्ष और लताएँ लहलहाती,
आकाश को छूते हुए सोने के शिखर,
स्फटिकमणि की बनी विशाल अटारियाँ,
ऊँचे-ऊँचे दरवाजे, जो लगते बड़े सुन्दर ।

सोने के बने हुए थे नगर के महल,
जिन पर सजे हुए थे कलश सोने के,
उग्रसेनजी, वसुदेवजी, और दोनों भाई,
नगर के बीच बने थे महल इनके ।

पारिजात वृक्ष और सुधर्मा सभा को,
भेज दिया श्रीकृष्ण के लिए इन्द्रदेव ने,
ऐसी दिव्य थी वह सुधर्मा सभा कि,
भूख-प्यास आदि लगते नहीं उसमें ।

[41] श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को इसलिए छुड़वा दिया ताकि वह और सेना इकठ्ठी कर लाए और उस सेना का संहार कर पृथ्वी का भार शीघ्रता से हल्का किया जा सके ।

बहुत से श्वेत घोड़े भेजे वरुण ने,
तेज चाल, एक-एक कान श्याम-वर्ण का,
आठों निधियाँ अपनी भेज दी कुबेर ने,
अन्य लोकपालों ने भी भेजी विभूतियाँ ।

सिद्धियाँ और शक्तियाँ लोकपालों को,
अधिकार निर्वाह हेतु दी हैं कृष्ण ने,
अब जब उन्होंने लिया अवतार धरा पर,
श्रीकृष्ण को अर्पित कर दी वे उन्होंने ।

अपनी अचिन्त्य शक्ति योगमाया द्वारा,
स्वजनों को द्वारका पहुँचा दिया कृष्ण ने,
शेष प्रजा की रक्षा के लिए बलरामजी रुके,
फिर निशस्त्र बाहर प्रस्थान किया कृष्ण ने ।

कालयवन का भस्म होना; मुचुकुन्द की कथा

जब निकले श्रीकृष्ण मथुरा से बाहर,
लगा पूर्व दिशा से निकला हो चन्द्रमा,
चतुर्भुज रूप, रेशमी पीताम्बर पहने,
गले में कौस्तुभमणि रही जगमगा ।

वक्षःस्थल पर श्रीवत्स-चिन्ह शोभित,
मन्द-मन्द मुसकान खिली मुख पर,
कमल से कोमल और रतनारे नेत्र,
मानों स्वयं सौन्दर्य आया शरीर धर ।

जब कालयवन ने देखा कृष्ण को,
वैसा ही पाया जैसा कहा नारद ने,
समझ गया यही पुरुष वासुदेव है,
कोई दूसरा ऐसा नहीं देखा था उसने ।

श्रीकृष्ण को निहत्था देख उसने,
सोचा मैं भी लड़ूँगा निहत्था ही,
ऐसा सोच उनकी ओर दौड़ा वो,
पर पलट गए पीछे श्रीकृष्ण भी ।

भाग चले श्रीकृष्ण रण छोड़कर,
पकड़ सका ना कालयवन उन्हें,
सोच रहा अब पकड़ा, तब पकड़ा,
पर पकड़ सका ना किसी तरह उन्हें ।

बार-बार वो आक्षेप कर रहा था,
यदुवंशी हो, ठीक नहीं रण छोड़ भागना,
पर हुए नहीं थे अभी उसके अशुभ नष्ट,
सो दूर था उसके लिए कृष्ण को पाना ।

बहुत दूर एक पर्वत की गुफा में,
भागते-भागते उसे श्रीकृष्ण ले गए,
देख एक दूसरे ही मनुष्य को सोते,
सोचा वासुदेव यहाँ आकर सो गए ।

उस मूढ़ ने उस सोते पुरुष को,
बहुत जोर से कसकर मारी लात,
वह पुरुष बहुत दिनों से सोया था,
धीरे-धीरे खोली उसने अपनी आँख ।

सामने खड़ा दिखा उसे कालयवन,
उसी पर पड़ी उनकी पहली दृष्टि,
तुरन्त कालयवन जलकर हुआ भस्म,
बिना लड़े ही उससे मिली मुक्ति ।

उस गुफा में सोये हुए वे पुरुष,
मुचुकुन्द थे, इक्ष्वाकु वंश के राजा,
महाराजा मान्धाता के पुत्र, परम भक्त,
देवताओं का जिन्होंने बड़ा मतलब साधा ।

असुरों से भयभीत हो देवताओं ने,
की थी विनती राजा मुचुकुन्द से,
तब बहुत दिनों तक मुचुकुन्द ने,
रक्षा करी देवताओं की असुरों से ।

जब देवताओं को सेनापति के रूप में,
शिव-पुत्र स्वामी कार्तिकेय मिल गए,
तब देवताओं ने राजा मुचुकुन्द से कहा,
हे राजन ! अब आप विश्राम कीजिए ।

बहुत कष्ट उठाया आपने हमारे लिए,
त्याग कर दिया जीवन के भोगों का,
काल लील गया आपके बन्धु-बान्धव,
माँग लीजिए हमसे जो आपकी इच्छा ।

कैवल्य मोक्ष के अतिरिक्त हम,
दे सकते आपको जो चाहें आप,
बहुत थके होने के कारण माँगा,
जाकर शान्ति से सो जाएँ चुपचाप ।

ऐसा ही हो कह, देवताओं ने कहा,
यदि आपकी नींद में कोई विघ्न डालेगा,
तो वह मूर्ख आपकी दृष्टि पड़ते ही,
जलकर तुरन्त ही भस्म हो जाएगा ।

सो कालयवन के भस्म होने पर,
दिए दर्शन श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को,
उनका वह दिव्य अलौकिक रूप देख,
पूछा मुचुकुन्द ने वे कौन हैं उनको ?

कहा बहुत समय तक सोने के कारण,
मेरी इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो गयी,
ऊपर से आपका यह तेजोमय रूप देख,
इस असहय तेज से मेरी शक्ति खो गयी ।

तब भगवान ने कहा, हे प्रिय मुचुकुन्द !
अगिनत हैं मेरे जन्म, कर्म और नाम,
इस जन्म में वसुदेव का पुत्र होने से,
वासुदेव और कृष्ण आदि हैं मेरे नाम ।

फिर बतलाया जो लीला कर चुके,
कैसे कंस आदि असुरों को मारा,
और बतलाया वह कालयवन था,
जिसे तुमने तीक्ष्ण दृष्टि से मारा ।

बहुत आराधना की है तुमने मेरी,
आया हूँ यहाँ तुम पर कृपा करने,
तुम्हारी जो भी इच्छा हो माँग लो,
चाहता हूँ तुम्हारी इच्छा पूरी करूँ मैं ।

भगवान के इस प्रकार कहने से,
वृद्ध गर्ग का कथन याद आ गया,
कि यदुवंश में अवतार लेंगे भगवान,
तब वे नारायण हैं समझ आ गया ।

आनन्दित हो प्रणाम किया चरणों में,
और करने लगे स्तुति भगवान की,
कहा, आपकी माया से मोहित प्राणी,
नहीं जानते वास्तविकता आपकी ।

अत्यन्त दुर्लभ है मानव योनि में जन्म,
भजन करने का सर्वोत्तम अवसर,
लेकिन विषय-सुख के जंजाल में फँस,
यूँ ही व्यर्थ चला जाता यह अवसर ।

राज्यलक्ष्मी के मद से मतवाला मैं,
फँसा हुआ था राज्यादि के मोह में,
मिट्टी के शरीर को ही आत्मा मान,
उलझा रहा मैं इसी के फेर में ।

विषयों की लालसा बढ़ती ही जाती,
और काल अचानक आ दबोचता,
जो शरीर सोने के रथ पर चलता था,
कीड़े खा जाते या राख बन जाता ।

दान-पुण्य करते जो फिर सुख पाने को,
तृष्णा के मारे, कभी सुख नहीं पाते,
अनादि काल जन्म-मृत्यु का ग्रास बन,
कठिनाई से सत्संग का अवसर पाते ।

और जिस क्षण प्राप्त होता है सत्संग,
लग जाती जीव की बुद्धि आप में,
अनायास ही मेरे सब बन्धन कट गए,
परम अनुग्रह किया मुझ पर आपने ।

आपके चरणों की सेवा के अतिरिक्त,
अब मैं और कोई भी वर नहीं चाहता,
समस्त कामनाओं को छोड़, हे प्रभु !
बस आपके चरणों की शरण चाहता ।

भगवन बोले, तुम्हारा निश्चय पवित्र है,
चाहता था तुम्हारी सावधानी परखना,
मेरी भक्ति के सिवा तपस्या आदि से,
क्षीण नहीं हो पाती कभी उनकी वासना ।

तुम अपना मन और मनोभावों को,
समर्पित कर दो, लगा दो मुझमें,
फिर स्वच्छन्द रूप से करो विचरण,
निर्मल भक्ति बसेगी तुम्हारे मन में ।

क्षत्रिय धर्म निभाते हुए तुमने,
किया जो वध पशु आदि का,
धो डालो वह पाप तपस्या कर,
अगला जन्म पाओगे ब्राह्मण का ।

उस जन्म में समस्त प्राणियों के,
सच्चे हितैषी, परम सुह्रद होओगे,
और भक्ति के प्रभाव द्वारा तुम,
मुझ परमात्मा को प्राप्त करोगे ।

<u>द्वारका गमन; रुक्मिणी हरण</u>

गुफा से बाहर निकल देखा मुचुकुन्द ने,
मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि सब छोटे हो गए,
इससे अनुमान लगा कि कलयुग आ गया,
बदिराकाश्रम जा तपस्या में लग गए ।

इधर भगवान श्रीकृष्ण लौट आए मथुरा,
संहार कर दिया कालयवन की सेना का,
तभी सेना सहित आ धमका जरासन्ध,
प्रभु करने लगे तब आचरण मनुष्य सा ।

भाग चले कृष्ण और बलराम पैदल ही,
अनेक योजनों तक वे रहे भागते,
अपनी रथसेना के साथ किया पीछा,
जरासन्ध ने उन दोनों की हँसी उड़ाते ।

बहुत दूर दौड़ आने के कारण,
कुछ थक से गए थे दोनों भाई,
सामने प्रवर्षण[42] पर्वत को देख,
उस पर्वत पर चढ़ गए दोनों भाई ।

बहुत ढूँढने पर भी जब मिले ना दोनों,
जरासन्ध ने चारों तरफ आग लगवा दी,
उसकी सेना के घेरे को लाँघते हुए,
दोनों भाइयों ने नीचे छलांग लगा दी ।

ग्यारह योजन ऊँचा था वह पर्वत,
देख ना पाया कोई उन दोनों को,
यह सोच कि दोनों जल गए होंगे,
चला गया जरासन्ध लौट मगध को ।

राजा रैवतजी ने पुत्री रेवती का विवाह,
बलरामजी से किया ब्रह्माजी की प्रेरणा से
और जरासन्ध, शाल्व आदि को हराकर,
श्रीकृष्ण ने ब्याह किया रुक्मिणीदेवी से ।

विदर्भदेश के अधिपति थे भीष्मक,
पाँच पुत्र थे और एक पुत्री रुक्मिणी,
आने वाले अतिथियों से प्रशंसा सुन,
कृष्ण से विवाह हो, चाहती थीं रुक्मिणी ।

भगवान श्रीकृष्ण भी समझते थे,
रुक्मिणी सम्पन्न हैं सभी गुणों से,
उन्हें अपने अनुरूप पत्नी जान,
वे भी करना चाहते थे विवाह उनसे ।

रुक्मिणी का सबसे बड़े भाई रुक्मी,
लेकिन नहीं चाहता था हो ऐसा,
बड़ा द्वेष रखता था श्रीकृष्ण से,
शिशुपाल को उसने योग्य वर समझा ।

[42] प्रवर्षण पर्वत-उस पर्वत का नाम प्रवर्षण इस लिए पड़ा क्योंकि उस पर सदा ही मेघ वर्षा किया करते थे ।

रुक्मी का इरादा जान रुक्मिणी,
अपने मन में हो गयीं थोड़ी उदास,
बहुत सोच-विचारकर उन्होंने भेजा,
एक विश्वासी ब्राह्मण कृष्ण के पास ।

जब वे ब्राह्मणदेव द्वारका पहुँचे,
श्रीकृष्ण ने किया उनका आदर-सत्कार,
बोले, आपसे स्वयं में सन्तुष्ट विप्र को,
सिर झुकाकर मैं करता हूँ नमस्कार ।

फिर पूछा उनके आने का प्रयोजन,
तो कहने लगे वे रुक्मिणी का सन्देश,
"आगुन्तकों से सुन-सुनकर कर गए,
आपके गुण मेरे हृदय में प्रवेश ।

कुल, शील, स्वभाव, सौन्दर्य, विद्या,
अद्वितीय हैं आप सभी गुणों में,
मनुष्य लोक में जितने भी प्राणी हैं,
सर्वश्रेष्ठ हैं आप उन सभी में ।

कुलवती, महागुणवती और धैर्यवती,
भला ऐसी कौन सी कन्या होगी,
विवाह योग्य समय आने पर जो,
पतिरूप में आपका वरण ना करेगी ?

सो वरण कर आपको पतिरूप में,
कर चुकीं हूँ आत्म-समर्पण आपको,
आप अन्तर्यामी, मेरे हृदय की जानते,
समर्पित हो चुकी हूँ, हे वीर आपको ।

जैसे छू ना जाए सिंह का भाग सियार,
वैसे ही शिशुपाल मेरे निकट ना आए,
यदि मैंने किया कोई पुण्य पूर्वजन्म में,
तो हे श्रीकृष्ण ! आप मुझे वरने आएँ ।

मेरे विवाह के एक दिन पहले आप,
गुप्तरूप से आ जाइए राजधानी में,
हराकर जरासन्ध, शिशुपाल आदि को,
राक्षस विधि से आप मेरा हरण कर ले ।

यदि सोचते भाई-बन्धुओं को मारे बिना,
कैसे आ सकेंगे आप अन्तःपुर में,
तो विधि अनुसार कुलदेवी को पूजने,
मैं नगर के बाहर आऊँगी मन्दिर में ।

यदि पा ना सकी आपका यह प्रसाद,
तो व्रत धारण कर, दे दूँगी मैं प्राण,
चाहे लेने पड़ें मुझे सैकड़ों जन्म,
अवश्य मिलेगा ये प्रसाद, हे कृपानिधान !"

सन्देश सुन बोले श्रीकृष्ण ब्राह्मण से,
मैं भी चाहता रुक्मिणी को ऐसे ही,
निकाल लाउँगा मैं रुक्मिणी को वहाँ से,
देखता रह जाएगा वह रुक्मी ऐसे ही ।

रुक्मिणी की विवाहलग्न जान परसों ही,
सारथि दारुक को कहा रथ जोत लाओ,
ब्राह्मणदेव को पहले उस रथ पर चढ़ा,
उसी रात विदर्भदेश में पहुँच गए वो ।

रुक्मी के स्नेहवश महाराज भीष्मक,
कन्या को शिशुपाल को देने के लिए,
कर रहे थे उसके विवाह की तैयारियाँ,
नगर सजाया जा रहा था इसके लिए ।

तैयार किया गया राजकुमारी रुक्मिणी को,
हाथों में मंगलसूत्र, कंकण पहनाये गए,
विभूषित की गयीं उत्तम-उत्तम आभूषणों से,
कोहबर बना, उन्हें नए वस्त्र पहनाए गए ।

ब्राह्मणों ने किया वेदमन्त्रों का पाठ,
सोना-चाँदी, गौएँ आदि दिए गए उन्हें,
इसी प्रकार वर शिशुपाल के लिए भी,
मंगलकृत्य कराए चेदिराज दमघोष ने ।

फिर चतुरंगिणी सेना को लेकर साथ,
आ पहुँची बारात कुण्डिनपुर में,
जरासन्ध, शाल्वादि शिशुपाल के मित्र,
कृष्ण के विरोधी, शामिल थे उसमें ।

वे सब आए थे सेनाओं के साथ,
और श्रीकृष्ण चले गए थे अकेले ही,
जब यह खबर लगी बलरामजी को,
भारी सेना ले निकल पड़े वो भी ।

इधर रुक्मिणीजी चिंता में पड़ी,
ब्राह्मणदेव भी लौटे ना अब तक,
सोचने लगीं कुछ दोष मुझमे है,
इसीलिए खबर ना ली अब तक ।

प्रेम में डूबी वे प्रतीक्षा कर रहीं थीं,
कि शुभ शकुन, बाएँ अंग लगे फडकने,
तभी दिखे प्रफुल्लित मुख ब्राह्मणदेव,
समझ गयीं श्रीकृष्ण आ गए हैं लेने ।

ब्राह्मणदेव ने जब बतलाया उन्हें,
आनन्द से भर गया हृदय उनका,
उधर दोनों भाई को आया जान[43],
भीष्मक ने स्वागत किया उनका ।

पुरवासी भी आए मिलने कृष्ण से,
श्रीकृष्ण को देख सब लगे सोचने,
रुक्मिणी के योग्य वर तो ये ही हैं,
विधाता करे श्रीकृष्ण ही वरें उन्हें ।

तभी मन्दिर के लिए निकलीं रुक्मिणीजी,
बहुत से सैनिक भी साथ थे उनके,
मन से करती कृष्ण-चरणों का चिन्तन,
और अधरों पर मौन धारण कर के ।

वंदीजन बखानते जा रहे थे विरद,
अस्त्र-शस्त्र थे सैनिकों के हाथों में,
माताएँ और सखियाँ घेरे थीं उन्हें,
पूजन आदि की सामग्री ले साथ में ।

मन्दिर पहुँचकर आचमन किया,
फिर प्रवेश किया मन्दिर में उन्होंने,
विधिपूर्वक पूजा कर भगवती की,
अभिलाषा पूरी हो वर माँगा उन्होंने ।

पूजा-अर्चा की विधि समाप्त होने पर,
तोड़ दिया अपना मौनव्रत उन्होंने,
अपनी एक सखी का हाथ पकड़,
मन्दिर से बाहर प्रस्थान किया उन्होंने ।

भगवान की माया के समान रुक्मिणीजी,
धीर-वीरों को भी मोहित करनेवाली थीं,
अद्भुत सौन्दर्य, कैसे वर्णन किया जाए,
त्रिलोकी में सबका मन हरने वाली थीं ।

धीरे-धीरे सुकुमार चरणकमलों से चलती,
कर रहीं थीं वे श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा,
उनकी लजीली चितवन को देख,
धीरज छूट रहा बड़े-बड़े नरपतियों का ।

तभी दिखाई दे गए उन्हें श्रीकृष्ण,
चढ़ना चाहा रथ पर रुक्मिणीजी ने,
सबके देखते-देखते, उस भीड़ से उठा,
रथ पर चढा लिया उन्हें श्रीकृष्ण ने ।

सियारों की भीड़ में से जैसे सिंह,
ले जाता है छुड़ाकर अपने भाग को,
बलरामजी और यदुवंशियों के साथ,
वैसे ही ले चले श्रीकृष्ण रुक्मिणीजी को ।

जरासन्ध के वंशवर्ती अभिमानी राजाओं को,
सहन ना हुआ अपना यह भारी तिरस्कार,
वे सब-के-सब उनसे चिढ़कर कहने लगे,
धिक्कार हमें, हमारा धनुष धरना बेकार ।

क्रोधित हो, अपनी-अपनी सेनाएँ ले,
करने लगे वे सब श्रीकृष्ण का पीछा,
यदुवंशियों की सेना आ डटी सामने,
होने लगी उन पर बाणों की वर्षा ।

[43] भीष्मकजी ने समझा कि वे विवाह देखने के लिए उत्सुकतावश पधारे हैं ।

यदु सेना को बाणों से ढका देख,
लज्जा और भय से रुक्मिणीजी ने देखा,
डरो मत, सुन्दरी ! हँसकर बोले श्रीकृष्ण,
अभी नष्ट कर डालेगी उन्हें तुम्हारी सेना ।

इधर गद और संकर्षण आदि यदु वीर,
शत्रु का पराक्रम और अधिक सह ना सके,
छिन्न-भिन्न कर दिए हाथी, घोड़े, रथ,
और संहार कर दिया सेना का बाणों से ।

विजयी हुई यदुवंशियों की सेना,
जरासन्ध आदि राजा हो गए तिरोहित,
भावी पत्नी के छिन जाने के कारण,
शिशुपाल हो गया अत्यन्त हतोत्साहित ।

जरासन्ध ने आ बंधाया उसे ढाढ़स,
कहा, सदा सब मन के अनुकूल ना होता,
यह जीव है भगवदिच्छा के अधीन,
प्रारब्ध में जो लिखा, वो ही होता ।

हार गए हम थोड़ी सी यदु सेना से,
क्योंकि काल हमारे अनुकूल ना था,
होगा जब काल दाहिने ओर हमारे,
तब हम भी उन्हें रण में देंगे हरा ।

मित्रों के इस प्रकार समझाने पर,
शिशुपाल तो लौट गया अपने नगर,
यों अपनी बहन का हरण हो जाना,
सहन हो ना सका रुक्मी को मगर ।

प्रतिज्ञा की उसने सबके सामने,
यदि मार ना सका मैं श्रीकृष्ण को,
और छुडाकर ना लाया अपनी बहन,
तो लौटकर ना आऊँगा कुंडिननगर को ।

रथ पर बैठ, एक अक्षोहिणी सेना ले,
निकल पड़ा रुक्मी श्रीकृष्ण से लड़ने,
उनके निकट पहुँच, उन्हें ललकार,
बाण-पर-बाण उन पर लगा छोड़ने ।

प्रत्युत्तर में बाण चलाकर श्रीकृष्ण ने,
काट डाला रुक्मी के धनुष को,
साथ ही घोड़ों और सारथि को मार,
काट डाला उसकी रथ की ध्वजा को ।

फिर जब उसने नया धनुष उठाया,
उस धनुष को भी काट डाला कृष्ण ने,
तब उसने परिध, शूल आदि उठाए,
पर काट डाला उन्हें भी कृष्ण ने ।

दौड़ा तब रुक्मी श्रीकृष्ण की ओर,
और करना ही चाहता था उन पर वार,
पर श्रीकृष्ण ने उसकी तलवार काट डाली,
और मारने के लिए उठा ली तीक्ष्ण तलवार ।

यह देख कि भाई की मृत्यु आ गयी,
रुक्मिणीजी भय से विह्वल हो गयीं,
गिर पड़ीं वो श्रीकृष्ण के चरणों में,
उसे ना मारें, विनती करने लग गयीं ।

रुक्मिणीजी की दीन दशा को देख,
त्याग दिया विचार मारने का उसे,
उसीके दुपट्टे से बाँध, केशों को मूँड़,
कुरूप कर छोड़ दिया श्रीकृष्ण ने उसे ।

तब तक यदुवंशी वीरों की सेना ने,
शत्रु की सेना को तहस-नहस कर दिया,
बलरामजी ने रुक्मी को कुरूप हुआ देख,
कहा कृष्ण से यह अच्छा ना किया ।

वध योग्य अपराध करने पर भी,
उचित नहीं सगे-सम्बन्धियों को मारना,
पहले ही मर चुका वो अपने अपराध से,
मरे हुए को भला फिर क्या मारना ?

फिर रुक्मिणीजी को सम्बोधित कर बोले,
साध्वी ! तुम इस सबका बुरा ना मानना,
जीव को सुख-दुःख कोई अन्य ना देता,
अपने ही कर्मों का फल पड़ता भोगना ।

अत्यन्त घोर है क्षत्रिय धर्म का पालन,
सगा भाई भी मार डालता भाई को,
तुम्हारे भाई-बन्धु रखते हैं दुर्भाव,
इसलिए दण्ड के पात्र बन गए हैं वो ।

उनके मंगल के लिए किया दण्डविधान,
जिसे तुम अमंगल मान रही हो,
उन्हीं को होता है ऐसा आत्ममोह,
देह को ही आत्मा मान बैठते जो ।

एक ही आत्मा है सब देहधारियों की,
कार्य-कारण, माया से सम्बन्ध नहीं,
उपाधियों के भेद से लगते हैं भिन्न,
लेकिन वास्तव में तो आत्मा है एक ही ।

जान पड़ती है समस्त संसार की सत्ता,
आत्मसत्ता से जो है प्रकाशक सबका,
फिर कैसे दूसरे असत पदार्थों का,
आत्मा संग संयोग-वियोग हो सकता ?

चन्द्रमा के घटने या बढने का,
कोई सम्बन्ध नहीं चन्द्रमा से जैसे,
शरीर की उत्पत्ति और विनाश से,
सम्बन्ध नहीं कोई जीव का वैसे ।

स्वप्न में कोई पदार्थ न होने पर भी,
भोक्ता, भोग्य, भोगरूप का अनुभव होता,
उसी प्रकार अज्ञानी लोगों को झूठमूठ,
इस संसार चक्र का अनुभव होता ।

इसलिए हे साध्वी ! तुम त्याग दो,
अज्ञान से होनेवाले इस शोक को,
मुरझा देता अन्त:करण को यह शोक,
इसे छोड़ अपने स्वरूप में स्थित हो ।

इस प्रकार बलरामजी द्वारा समझाने पर,
मन का मैल मिटा, कर लिया समाधान,
उधर सारी आशा-अभिलाषाएँ खो रुक्मी,
भुला नहीं पा रहा था अपना अपमान ।

बसायी उसने भोजकट नामक एक नगरी,
और क्रोधित हो वह वहीं रहने लगा,
उधर भगवान श्रीकृष्ण ने द्वारका लाकर,
रुक्मिणीजी संग विधिपूर्वक विवाह किया ।

खूब सजाया गया द्वारका नगरी को,
पुरवासियों ने प्रसन्न हो आनन्द मनाया,
भीष्मक भी इस विवाह में शामिल हुए,
जब बलरामजी आदि ने उन्हें समझाया ।

विदर्भ के लिए अप्रिय थी यह घटना,
पर क्षत्रियों में यह असामान्य ना था,
भीष्मक तो थे ही कृष्ण के पक्ष में,
किसी तरह वह प्रयोजन सिद्ध हुआ ।

श्रीकृष्ण ने लिखी यह कथा पद्य में,
चारण जिसे सुनाते थे यहाँ-वहाँ गाकर,
राजा और राजकन्याएँ होते थे विस्मित,
रुक्मिणी हरण की यह कथा सुनकर ।

महाराज नन्द तथा गोप आदि भी,
इस विवाह में सम्मिलित हुए थे,
कुरु और अन्य राज्यों के राजा भी,
इस अवसर पर द्वारका आए हुए थे ।

प्रद्युम्न का जन्म

कामदेव, भगवान वासुदेव के ही अंश,
भस्म हो गए थे रूद्र की क्रोधाग्नि से,
फिर शरीर प्राप्ति के लिए वे ही अनंग,
जन्म ले रहे अपने ही अंशी कृष्ण से ।

श्रीकृष्ण और रुक्मिणीजी के पुत्ररूप में,
जन्म ले, जाने गए प्रद्युम्न नाम से,
सौन्दर्य, शील आदि सद्गुणों में वे,
कम ना थे किसी तरह श्रीकृष्ण से ।

शम्बरासुर नाम के एक असुर को,
ज्ञात था प्रद्युम्न के हाथों है मरना,
सो दसवें दिन ही सूतिकागृह से वह,
उनका अपहरण कर चलता बना ।

फेंक दिया उन्हें समुद्र में ले जाकर,
जहाँ निगल लिया एक मच्छ ने उन्हें,
अन्य मछलियों के साथ वह मच्छ पकड़,
शम्बरासुर को दे दिया मछुआरों ने भेंट में ।

जब काटा रसोइयों ने उस मच्छ को,
वह बालक निकला पेट से उसके,
शम्बरासुर की एक दासी थी मायावती,
वह बालक दे दिया उन्होंने उसे ।

शंका हुई बालक को देख मायावती को,
तब नारदजी ने आकर सब बतलाया,
बतलाया कामदेव होना उस बालक का,
और वासुदेव का पुत्र होना बतलाया ।

मायावती कामदेव की पत्नी रति थी,
बाट जोहती कामदेव के जन्म लेने का,
शम्बरासुर के यहाँ काम कर रही थी,
साधन चुना था यह पति को पाने का ।

बहुत प्रेम करने लगी वह बालक को,
अति शीघ्र ही जो जवान हो गया,
इतना अद्भुत उनका रूप-लावण्य था,
जिसने देखा उसका मन हर लिया ।

मायावती जानती थी वे पति हैं उनके,
सो वैसा ही भाव रखती थी उनमें,
प्रद्युम्न उनका ऐसा भाव देखकर,
पूछने लगे क्या रहस्य है इसमें ?

माँ की तरह पालन-पोषण करने से,
होना चाहिए था भाव भी वैसे,
लेकिन कामिनी का सा हाव-भाव,
तुम्हारी बुद्धि उलटी हो गई कैसे ?

तब रति ने कहा, नारायण के पुत्र,
और मेरे पति स्वयं कामदेव हैं आप,
शम्बरासुर आपको चुराकर ले गया था,
जब बस दस ही दिन के थे आप ।

फिर बतलाया सारा घटनाक्रम उन्हें,
और कि वध करना है शम्बरासुर का,
लेकिन वो बड़ा ही मायावी असुर है,
सहारा लीजिए मोहन आदि विद्या का ।

आपके खो जाने से आपकी माता,
व्याकुल रहतीं हैं दिन और रात,
चिंता करती रहतीं हैं बस आपकी,
सो अब और देर न कीजिए आप ।

ऐसा कह मायावती ने उन्हें सिखलाई,
परम शक्तिशाली विद्या महामाया,
यह विद्या ऐसी है जो कर देती,
नष्ट सभी प्रकार की आसुरी माया ।

शम्बरासुर के पास जाकर प्रद्युम्नजी,
कटु-कटु आक्षेप करने लगे उस पर,
चाहते थे कैसे भी करें उसे क्रोधित,
ललकारा उसे आ मुझसे युद्ध कर ।

तिलमिला उठा शम्बर ललकार सुन,
हाथ में गदा ले बाहर निकल आया,
बड़े वेग से उसे आकाश में घुमाकर,
सिंहनाद कर प्रद्युम्नजी पर चलाया ।

अपनी तरफ आती गदा को देख,
रोक लिया उन्होंने अपनी गदा से,
और फिर जब उस पर चलायी गदा,
तो आकाश में चला गया वो माया[44] से ।

[44] शम्बरासुर ने मयासुर से मायावी विद्याएँ सीखी थीं ।

आकाश में से ही शम्बरासुर उन पर,
करने लगा अनेक अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार,
जब वो प्रद्युम्नजी को पीड़ित करने लगा,
सत्त्वमयी महाविद्या से उसका किया उपचार ।

और भी अनेक मायावी विद्याओं का,
प्रयोग किया उन पर शम्बरासुर ने,
लेकिन उन सबको नष्ट कर दिया,
महाविद्या का प्रयोग कर प्रद्युम्नजी ने ।

तब एक तीक्ष्ण तलवार लेकर,
काट दिया उन्होंने सिर शम्बरासुर का,
फिर मायावती अपने साथ उन्हें,
आकाशमार्ग से ले गयी द्वारका ।

आकाश में गौरवर्ण पत्नी मायावती,
और मेघवर्ण उनके पति प्रद्युम्नजी,
दोनों मिल ऐसी शोभा पा रहे थे,
जैसे जोड़े में हो मेघ और बिजली ।

अन्त:पुर में प्रवेश किया दोनों ने,
उन्हें देख आश्चर्य में पड़ गयीं स्त्रियाँ,
तभी वहाँ पर रुक्मिणीजी आ गयीं,
प्रद्युम्नजी को देख पुत्र याद आ गया ।

सोचने लगीं कौन है यह नररत्न,
किस बड़भागिनी ने इसे जन्मा होगा,
मेरा नवजात पुत्र जो खो गया है,
अब इसी उम्र का हो गया होगा ।

हैरान थीं वे यह सोचकर कि,
कैसे कृष्ण की सी झलक है इसमें,
हो-न-हो यह वही बालक है,
जिसे धारण किया मैंने गर्भ में ।

तभी वहाँ स्वयं श्रीकृष्ण आ गए,
साथ में थे श्रीवसुदेव और देवकी,
साथ-साथ ही नारदजी भी आ पहुँचे,
बतलाया उन्होंने जो सब घटनाएँ घटीं ।

भगवान श्रीकृष्ण तो सब जानते ही थे,
पर उन्होंने ठीक समझा चुप रहना,
अन्त:पुर की सब स्त्रियाँ चकित थीं,
मानो देखा मरे हुए का फिर जी उठना ।

स्यमन्तक मणि की कथा

सत्राजित् सूर्य का बड़ा भक्त था,
स्यमन्तक मणि दी सूर्य ने उसे,
गले में धारण कर वह मणि सत्राजित्,
प्रकाशित होता था सूर्य के जैसे ।

एक बार सत्राजित् द्वारका में आया,
लोग आश्चर्यचकित थे तेज देखकर,
जाकर श्रीकृष्ण को किया सूचित,
स्वयं सूर्यदेव पधार रहे आपके घर ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले हँसकर,
सूर्यदेव नहीं यह तो है सत्राजित्,
स्यमन्तक मणि धारण करने से,
सूर्य की तरह हो रहा प्रकाशित ।

सत्राजित् ने स्यमन्तक मणि को,
स्थापित करवाया एक देवमन्दिर में,
वह मणि ऐसी चमत्कारी थी कि,
आठ भार[45] सोना देती दिन भर में ।

और जहाँ वह पूजित होकर रहती,
दुर्भिक्ष, महामारी आदि वहाँ नहीं होते,
कैसी भी शारीरिक, मानसिक व्याधि,
मायावी उपद्रव और अशुभ नहीं होते ।

[45] एक भार-10240000 धान के वजन के बराबर ।

भगवान श्रीकृष्ण ने सत्राजित् से कहा,
वह मणि दे दे राजा उग्रसेन को,
लेकिन धन-लोलुपता के कारण उसने,
अस्वीकार कर दिया इस आज्ञा को ।

एक बार सत्राजित् का भाई प्रसेन,
गले में मणि पहन, गया जंगल में,
जंगल में उससे वह मणि छीनकर,
अश्व सहित मार डाला एक सिंह ने ।

वह सिंह कर ही रहा था गुफा में प्रवेश,
कि मणि के लिए मार डाला ऋक्षराज ने,
वह मणि अपनी गुफा में ले जाकर,
बच्चे को खेलने हेतु दे दी जाम्बवान ने ।

सत्राजित् ने सोचा कि प्रसेन को,
सम्भव है मार डाला हो कृष्ण ने,
अपने माथे यह कलंक लगता देख,
प्रसेन को खोजने गए कृष्ण वन में ।

साथ ले लिए कुछ गणमान्य पुरवासी,
सब ढूँढने लगे वन में प्रसेन को,
एक जगह देखा कि किसी सिंह ने,
मार डाला था घोड़े और प्रसेन को ।

सिंह के पदचिन्हों का पीछा करते,
देखा पर्वत पर सिंह भी मरा पड़ा,
एक रीछ ने मार डाला था उसे,
और सामने थी उस रीछ की गुफा ।

साथ आए लोगों को बाहर ही बैठाकर,
कृष्ण अकेले घुसे घोर अँधेरी गुफा में,
देखा उस श्रेष्ठ स्यमन्तक मणि को,
बना दिया है खिलौना ऋक्षराज ने ।

बच्चे के पास जा खड़े हुए कृष्ण,
तो बच्चे की धाय चिल्लाई भय से,
क्रोधित हो ऋक्षराज आए दौड़कर,
और लड़ने लगे वे श्रीकृष्ण से ।

जाम्बवान उस समय थे कुपित,
पता न चला कि वे क्या कर रहे,
समझ बैठे कृष्ण को साधारण जन,
जाने न अपने स्वामी से लड़ रहे ।

भीषण युद्ध करने लगे वे दोनों,
पहले अस्त्र-शस्त्र, फिर शिलाओं से,
फिर प्रहार किया वृक्षों को उखाड़,
और करने लगे बाहुयुद्ध एक-दूजे से ।

वज्र-प्रहार के समान कठोर घूसों से,
लड़ते रहे वे अट्ठाईस दिन आपस में,
अन्त में जब जाम्बवान हो गए पस्त,
बोले, आप नारायण हैं, जान गया मैं ।

ब्रह्मा आदि को भी बनाने वाले,
सब में सत्ता रूप से आप विद्यमान,
काल के भी नियामक, परम काल,
अन्तरात्माओं के परमात्मा, श्रीभगवान ।

मुझे स्मरण है ज़रा से रोष से जब[46],
देखा समुद्र को आपने तिरछी नजर से,
क्षुब्ध हो गए थे उसके बड़े-बड़े जलचर,
मार्ग दे क्षमा माँगने लगा समुद्र आप से ।

सेतु बाँधकर उस पर आपने,
सोने की लंका का विध्वंस किया,
अवश्य ही आप मेरे वो श्रीराम हैं,
अब कृष्णरूप में अवतार लिया ।

जब जाम्बवान ने पहचान लिया उन्हें,
फेरा अपना करकमल प्रभु ने उन पर,
बोले, मणि लेने आया हूँ, इसके द्वारा,
मिटाना चाहता हूँ कलंक लगा मुझ पर ।

[46] भगवान के श्रीराम अवतार के समय की यह घटना है । जाम्बवान ब्रह्माजी के पुत्र और आठ चिरंजीवियों में से एक हैं ।

बड़े आनन्द से तब जाम्बवान ने,
वो मणि और अपनी कन्या जाम्बवती,
भगवान की पूजा करने के लिए,
दोनों उनके चरणों में समर्पित कर दी ।

उधर श्रीकृष्ण के साथ आए हुए लोग,
बारह दिन तक करते रहे प्रतीक्षा,
जब देखा श्रीकृष्ण गुफा से न निकले,
दुखी मन से लौट गए वे द्वारका ।

उन्हें बिना श्रीकृष्ण के लौटा देख,
स्वजन और पुरवासी दुखी हो गए,
कहने लगे सत्राजित् को भला-बुरा,
और देवी को मनाने में लग गए ।

प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया देवी ने,
कि तभी स्वयं श्रीकृष्ण आ गए,
साथ में मणि और उनकी नववधू,
उन्हें देख सब आनन्दमग्न हो गए ।

तदनन्तर सत्राजित् को राजसभा में बुला,
श्रीकृष्ण ने बताया कैसे मणि प्राप्त की,
सौंप दी उन्होंने वह मणि वापस उसे,
लटक गया मुँह उसका, झूठी बात की ।

पश्चाताप हो रहा था अपराध पर उसे,
और लग रहा था कुछ भय भी उसे,
सोच रहा था कैसे मार्जन करूँ इसका,
प्रसन्न करूँ मैं श्रीकृष्ण को कैसे ?

अपनी रूप व गुणवती पुत्री सत्यभामा,
और मणि सोचा दे दूँ दोनों श्रीकृष्ण को,
बहुत लोग चाहते थे उनसे विवाह करना,
माँगते थे वे सत्राजित् से सत्यभामा को ।

बहुत उचित लगा उसे यह उपाय,
सो कर दिया अर्पण उन्हें कृष्ण को,
विवाह किया कृष्ण ने सत्यभामा से,
पर लौटा दिया स्यमन्तक मणि को ।

कहा, आप हैं सूर्यदेव के मित्र,
यह मणि दी है जिन्होंने आपको,
हमको तो बस वह स्वर्ण ही दे दें,
जो यह मणि प्रतिदिन देगी आपको ।

उधर खबर मिली कि लाक्षागृह में,
जल मरे हैं पाण्डव और फ़ूआ कुन्ती,
यद्दपि वे जानते थे कि जीवित हैं वे,
पर लोक-व्यवहार की रस्म पूरी की ।

बलरामजी के साथ गए हस्तिनापुर,
भीष्म आदि से मिल संवेदना प्रकट की,
कहा, कैसी अनहोनी हो गयी यह,
पाण्डवों पर आ गयी घोर विपत्ति ।

उधर द्वारका में अक्रूर और कृतवर्मा ने,
शतधन्वा को उकसाया मणि छीन ले,
मार डाला सत्राजित् को शतधन्वा ने,
और भाग गया साथ में मणि को ले ।

बहुत दुःखी होकर सत्यभामाजी ने,
पिता का शव तेल में रखवाया,
फिर स्वयं चल दीं वे हस्तिनापुर,
जो घटा, दोनों भाइयों को बतलाया ।

कृष्ण और बलराम सत्यभामाजी के साथ,
लौट आए तुरन्त हस्तिनापुर से द्वारका,
शतधन्वा को मार मणि ले लेने की,
दोनों भाई मिलकर बनाने लगे योजना ।

जब शतधन्वा को पता चला इसका,
डर कर गया वो कृतवर्मा के पास,
पर टका सा जवाब दे दिया उसने,
कृष्ण से लड़े, साहस किसके पास ?

फिर अक्रूरजी से मदद माँगी उसने,
पर उन्होंने भी लौटा दिया उसको,
बोले, सृष्टि और संहार खेल जिसका,
नमस्कार करता हूँ मैं उन कृष्ण को ।

शतधन्वा मणि उन्हीं के पास छोड़,
भाग गया मिथिला की ओर वहाँ से,
पीछा किया दोनों भाइयों ने उसका,
और सिर उतार लिया उसका चक्र से ।

पर उसके पास मणि ना मिली,
तो बलरामजी ने कहा श्रीकृष्ण को,
मैं मिलने जा रहा मिथिला नरेश से,
तुम द्वारका जा ढूँढो मणि को ।

कई वर्ष रहे बलरामजी मिथिला में,
महात्मा जनक ने बड़े प्रेम से रक्खा,
धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने उनसे,
समय आने पर गदा-युद्ध को सीखा ।

शतधन्वा के वध की बात जानकर,
अक्रूरजी और कृतवर्मा डरने लगे,
भाग गए वे दोनों द्वारका से,
अक्रूरजी मणि अपने साथ ले गए ।

द्वारका से अक्रूरजी के जाने के बाद,
कुछ लोगों का था ऐसा मानना,
बहुत से अनिष्टों और अरिष्टों का,
द्वारकावासियों को करना पड़ा सामना ।

परन्तु जो लोग कहते हैं ऐसा,
भूल जाते हैं पहले कही हुई बात,
कि जहाँ श्रीकृष्ण निवास करते हों,
कैसे हो सकता वहाँ कोई उत्पात ?

जब एक बार काशी में पड़ गया सूखा,
राजपुत्री का विवाह किया श्वफल्क[47] से,
तब उस प्रदेश में वर्षा होने के कारण,
लोगों ने माना यह हुआ उनके प्रभाव से ।

अक्रूरजी क्योंकि श्वफल्क के पुत्र हैं,
लोगों ने उनका प्रभाव भी सोचा वैसा,
जहाँ-जहाँ अक्रूरजी निवास करते हैं,
कोई महामारी नहीं, होती है खूब वर्षा ।

सो लोगों की सतुष्टि के लिए कृष्ण ने,
दूतों को भेजा अक्रूरजी को खोजने,
स्वागत-सत्कार किया द्वारका में उनका,
फिर पूछा उनसे मणि के विषय में ।

बोले, कोई पुत्र नहीं सत्राजित् का,
सो नाती[48] होगा उत्तराधिकारी उनका,
फिर भी हमें वो मणि नहीं चाहिए,
बस दर्शन करा दीजिए हमे मणि का ।

पूर्णतया आश्वस्त नहीं हैं बलरामजी,
और औरों के भी विशवास के लिए,
आप अपने पास से वह मणि दिखला,
मुझ पर लगे कलंक को दूर कीजिए ।

श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर,
अक्रूरजी ने मणि निकाल दे दी उन्हें,
जाति-भाइयों को वह मणि दिखला,
श्रीकृष्ण ने लौटा दी वह मणि उन्हें ।

श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाह

जब पाण्डवों का पता चल गया,
कि जले नहीं हैं वे लाक्षागृह में,
तो एक बार उनसे मिलने के लिए,
इन्द्रप्रस्थ की यात्रा की श्रीकृष्ण ने ।

[47] श्वफल्क-अक्रूरजी के पिता ।

[48] नाती-पुत्री-सत्यभामा और श्रीकृष्ण का पुत्र ।

बड़े प्रेम से मिले सब पाण्डव कृष्ण से,
युधिष्ठिर, भीम को प्रणाम किया उन्होंने,
अर्जुन को कृष्ण ने लगाया हृदय से,
उन्हें प्रणाम किया नकुल, सहदेव, द्रोपदी ने ।

फिर वे गए फ़ूआ कुन्ती के पास,
और पूछी सब की कुशलक्षेम उनसे,
वे बोलीं जबसे तुमने स्मरण किया,
हमारा कल्याण तो हो गया तब से ।

जानती हूँ कि तुम सम्पूर्ण जगत के,
परम हितैषी, सुहृद और आत्मा हो,
जो सदा तुम्हें स्मरण करते हैं,
उनके सब क्लेश मिटा देते हो ।

युधिष्ठिर के आग्रह करने पर श्रीकृष्ण,
वर्षा के चार महीने तक वहीं रहे,
फिर एक दिन अर्जुन श्रीकृष्ण के साथ,
गहन वन में शिकार के लिए गए ।

बहुत से पशुओं का शिकार कर,
कुछ थकान लगने लगी अर्जुन को,
हाथ-पैर धो, यमुना का जल पीया,
देखा यमुना किनारे एक कन्या को ।

अर्जुन के पूछने पर उसने बतलाया,
कि सूर्यदेव की पुत्री कालिन्दी हूँ मैं,
यहाँ तपस्या कर पाना चाहती हूँ,
भगवान विष्णु को पति के रूप में ।

बनवा दिया है मेरे लिए पिता ने,
यमुना के जल में एक भवन भी,
जब तक ना होंगे दर्शन कृष्ण के,
तब तक मैं यमुना किनारे ही रहूँगी ।

जाकर बतलाया अर्जुन ने कृष्ण को,
वे तो सब जानते थे पहले ही से,
बैठाकर अपने रथ पर कृष्ण ले आए,
धर्मराज युधिष्ठिर के पास उसे ।

फिर पाण्डवों के रहने के लिए श्रीकृष्ण ने,
विश्वकर्मा को कह अद्भुत नगर बनवाया,
इसी बीच अर्जुन के सारथी बन उन्होंने,
खाण्डव वन अग्निदेव को दिलवाया ।

भोजन मिलने से प्रसन्न अग्निदेव ने,
दिव्य गाण्डीव धनुष दिया अर्जुन को,
चार श्वेत अश्व, रथ, दो अक्षय तरकश,
और एक अभेद्य कवच दिया उसको ।

इस खाण्डव वन के दहन के समय,
मय दानव को बचा लिया था अर्जुन ने,
सो उससे मित्रता कर एक अद्भुत सभा[49],
पाण्डवों के लिए बना दी मय दानव ने ।

कुछ दिनों बाद लौटे कृष्ण द्वारका,
शुभ लग्न देख विवाह किया कालिन्दी से,
फिर मित्रविन्दा[50] को हर कर ले आए,
और विवाह कर लिया उन्होंने उससे ।

कोसलदेश के राजा थे नग्नजित्,
सत्या, परमसुन्दरी कन्या थी उनकी,
सात बैलों पर जो विजयी होगा उसीसे,
ब्याहेंगे कन्या को, राजा की प्रतिज्ञा थी ।

कोई उन तीक्ष्ण सींगों वाले बैलों पर,
विजय प्राप्त कर ना सका था,
तब एक बड़ी सेना लेकर श्रीकृष्ण ने,
कोसलदेश जाने का किया इरादा ।

प्रसन्नता से स्वागत किया नग्नजित् ने,
सत्या ने भी मन-ही-मन की अभिलाषा,
कि उनका विवाह श्रीकृष्ण से ही हो,
यदि सत्य-निष्ठां से श्रीकृष्ण को चाहा ।

---

[49] इसी सभा में दुर्योधन को जल में स्थल और स्थल में जल का भ्रम हो गया था ।

[50] मित्रविन्दा उनकी फ़ूआ की पुत्री थीं, वे स्वयंवर में श्रीकृष्ण को वरना चाहती थीं पर भाइयों ने रोक लिया ।

श्रीकृष्ण ने अपने सात रूप बना,
खेल-खेल में नाथ लिया बैलों को,
नग्नजित् ने बड़ी प्रसन्नता के साथ,
श्रीकृष्ण से ब्याह दिया सत्या को ।

जो राजा पहले प्रयास कर चुके थे,
सहन न हुई श्रीकृष्ण की विजय उन्हें,
अपनी-अपनी सेना ले चढ़ आए,
पर भगा दिया गाण्डीवधारी अर्जुन ने उन्हें ।

श्रीकृष्ण की एक और फ़ूआ थीं श्रुतकीर्ति,
विवाह किया उनकी कन्या भद्रा से भी,
मद्रप्रदेश की राजकुमारी थीं लक्ष्मणा,
हर कर विवाह किया कृष्ण ने उनसे भी ।

इसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की,
और भी बहुत सहस्त्रों स्त्रियाँ थीं,
छुडाकर लाए थे भौमासुर को मार,
वे स्त्रियाँ भौमासुर की बंदी थीं ।

भौमासुर का उद्धार

भौमासुर एक बहुत बलशाली असुर था,
देवताओं को बहुत पीड़ित किया उसने,
वरुण का छत्र, माता अदिति के कुण्डल,
और मणिपर्वत[51] उनसे छीन लिया उसने ।

इस पर इन्द्रदेव आए श्रीकृष्ण से मिलने,
और व्यथा बतलाई देवताओं की उनको,
सत्यभामा के साथ गरुड़ पर सवार हो,
चले श्रीकृष्ण उनकी मदद करने को ।

प्रागज्योतिपुर थी राजधानी भौमासुर की,
बहुत कठिन था जिसमें प्रवेश करना,
चारों तरफ पहाड़, शस्त्रों का घेरा,
फिर जल से भरी खाई की रचना ।

आगे आग या बिजली की चहारदीवारी,
जिसके भीतर जहरीली वायु भरी थी,
इससे भी भीतर मुर दैत्य ने नगर में,
दस हजार फंदों की रचना करी थी ।

श्रीकृष्ण ने गदा से पहाड़ तोड़ डाले,
शस्त्रों को काट डाला तीक्ष्ण बाणों से,
अग्नि, जल और वायु की चहारदीवारी,
तहस-नहस कर दी उन्होंने चक्र से ।

मुर दैत्य के बनाए हुए फंदों को,
तलवार से काट अलग रख दिया,
यन्त्र-मशीने और वीरों के हृदयों को,
घोर शंखनाद कर विदीर्ण कर दिया ।

ध्वंस कर शहर के परकोटे को,
पाञ्चजन्य शंख से घोर गर्जना की,
उस भीषण ध्वनि का शोर सुन,
नींद टूट गयी सोए मुर दैत्य की ।

पाँच सिर थे उस मुर दैत्य के,
सो रहा था अब तक जल के भीतर,
अग्नि सा प्रचण्ड तेजस्वी था वह,
उसकी तरफ देखना भी था दुष्कर ।

त्रिशूल उठा दौड़ा श्रीकृष्ण की ओर,
बड़े वेग से चलाया उसे गरुड़ पर,
तभी फुर्ती से दो बाण चला कृष्ण ने,
गिरा दिया त्रिशूल टुकड़ों में काटकर ।

साथ ही उसके पाँचो मुखों पर भी,
बाण चला उसे विचलित कर दिया,
गदा चलायी तब उसने श्रीकृष्ण पर,
जिसे श्रीकृष्ण ने चूर-चूर कर दिया ।

[51] मेरु पर्वत पर स्थित देवताओं का मणिपर्वत ।

निहत्था ही दौड़ पड़ा तब वह दैत्य,
श्रीकृष्ण ने काट डाले पाँचों सिर उसके,
मुर के सात पुत्र तब उनसे लड़ने आए,
लेकिन वे भी बने सब ग्रास मृत्यु के ।

बहुत क्रोधित हुआ यह देख भौमासुर[52],
चलायी शतघ्नी नामक शक्ति कृष्ण पर,
उसके सैनिकों ने भी अपने अस्त्र-शस्त्र,
सबने एक साथ ही छोड़े श्रीकृष्ण पर ।

चित्र-विचित्र पंखोंवाले तीक्ष्ण बाण,
तब चलाने लगे भगवान भी उन पर,
सैनिकों के सिर-धड़ कट गिरने लगे,
हाथी, घोड़े भी गिरने लगे मर-मर कर ।

गरुड़जी ने भी चोंच, पंजों और पंखों से,
मार गिराया कई घोड़ों और हाथियों को,
भाग गए वे युद्ध का मैदान छोड़कर,
बस अकेला रह गया भौमासुर लड़ने को ।

तब भौमासुर ने गरुड़ पर शक्ति चलायी,
विफल कर दिया था वज्र को भी जिसने,
कोई असर हुआ नहीं गरुड़जी पर उसका,
तो त्रिशूल उठाया कृष्ण को मारने उसने ।

वो उसे अभी चला भी न पाया था,
कि सिर काट डाला उसका कृष्ण ने,
प्रसन्न हो देवताओं ने पुष्प बरसाये,
उसके स्वजन लगे हाय-हाय पुकारने ।

तब पृथ्वी ने भगवान के पास आ उन्हें,
वैजयन्ती के साथ वनमाला पहना दी,
वरुण का छत्र, अदिति के कुण्डल,
और एक महामणि भी उनको दी ।

फिर करने लगी वो स्तुति[53] भगवान की,
बोली, हे देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार,
आपके नेत्र नाभि से प्रकटे कमल से,
आपके चरण कमल के समान सुकुमार ।

ऐश्वर्य, यश, ज्ञान, वैराग्य आदि के आश्रय,
समस्त कारणों के कारण हैं प्रभु आप,
आप अजन्मा पर जन्मदाता जगत के,
अनन्त शक्तियों के आश्रय ब्रह्म हैं आप ।

जगत का समस्त कार्य-कारणमय रूप,
और समस्त चराचर हैं स्वरूप आपका,
त्रिगुणों को स्वीकार कर आप करते हैं,
सृष्टि, पालन और संहार जगत का ।

परन्तु यह सब करने पर भी आप,
लिप्त नहीं होते, ढकते नहीं गुणों से,
आप ही प्रकृति, पुरुष और काल हैं,
और परे भी हैं आप इन सबसे ।

पञ्चतत्व, पञ्च तन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय,
अधिष्ठातृ देवता, अहंकार और महतत्व,
भ्रम के कारण यह सम्पूर्ण चराचर जगत,
प्रतीत हो रहा आपके स्वरूप से पृथक ।

मेरे पुत्र भौमासुर का यह पुत्र भगदत्त,
हे प्रभो ! अत्यन्त ही भयभीत हो रहा,
लायी हूँ मैं इसे आपकी शरण में,
सिर पर हाथ रख प्रभु कीजिए दया ।

अभयदान दिया श्रीकृष्ण ने उसको,
और प्रवेश किया भौमासुर के महल में,
रखी थीं सोलह हजार राजकुमारियाँ छीन,
वर लिया श्रीकृष्ण को उन्होंने मन में ।

[52] भौमासुर-नरकासुर, पृथ्वी का पुत्र ।

[53] पृथ्वी भगवान की स्तुति करने आयी क्योंकि भौमासुर पृथ्वी का पुत्र था, जिसने भगवान का विरोध किया था ।

तब श्रीकृष्ण ने सम्मान सहित उनको,
पालकियों में बिठा द्वारका भिजवाया,
फिर वे गए इन्द्र के महल अमरावती में,
और अदिति के कुण्डलों को लौटाया ।

लौटते समय सत्यभामाजी की प्रेरणा से,
कल्पवृक्ष उखाड़ गरुड़जी पर रख लिया,
इन्द्रदेव औए सब देवताओं को जीतकर,
सत्यभामाजी के महल में उसे लगा दिया ।

जब इन्द्र को बनाना था अपना काम,
तब लगे थे कृष्ण के चरणों में झुकने,
देखो, ये देवता बड़े ही स्वार्थी होते हैं,
अब कल्पवृक्ष के लिए लगे थे लड़ने ।

तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण ने किया,
एक साथ विवाह सब राजपुत्रियों से,
जितनी वे थी, उतने ही रूप रख लिए,
सब का अलग-अलग विवाह हुआ उनसे ।

सब अलग-अलग महलों में रहतीं,
दिव्य सामग्रियों से युक्त सब महल,
हालंकि अनेक दासियाँ थीं सेवा को,
पर कृष्ण की करतीं खुद सेवा-टहल ।

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-संवाद

एक दिन रुक्मिणीजी के महल में,
विश्राम कर रहे थे भगवान श्रीकृष्ण,
रुक्मिणीजी लगी थीं उनकी सेवा में,
तब पूछने लगे उनसे प्रभु श्रीकृष्ण ।

बड़े ऐश्वर्यशाली, महानुभव, श्रीमान,
चाहते थे सब तुम्हें विवाह में पाना,
फिर क्यों उन सबको नकार तुमने,
चाहा मुझ जैसे से ही विवाह रचाना ?

किसी तरह समान नहीं हम तुम्हारे,
डर कर आ बसे सागर की शरण में,
बड़े-बड़े बलवानों ने बैर बाँध रक्खा,
सिंहासन का अधिकार भी नहीं हमें ।

हम तो हैं सदा के ही अकिंचन,
न कभी कुछ था, न कभी रहेगा,
ऐसे ही लोगों से प्रेम करते हैं,
और ऐसों का ही हमें प्रेम मिलेगा ।

मुझ जैसे से विवाह करने के कारण,
हे राजकुमारी ! क्लेश ही मिलेगा तुम्हें,
विचारा नहीं तुमने इन बातों को,
बड़ी अदुरदर्शिता दिखायी रुक्मिणी तुमने ।

अब भी कुछ ऐसा बिगड़ा नहीं है,
किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय का कर लो वरण,
शिशुपाल आदि का मान-मर्दन करने ही,
हमने तो तुम्हारा किया था हरण ।

निश्चय ही हम उदासीन हैं,
लोलुप नहीं स्त्री-धन आदि के,
पूर्णकाम और कृत-कृत्य हैं हम,
साक्षात्कार कर अपनी आत्मा के ।

श्रीकृष्ण के कभी अलग न होने से,
अभिमान हो गया था रुक्मिणीजी को,
कि मैं इनकी सबसे अधिक प्यारी हूँ,
बहुत अधिक चाहते हैं श्रीकृष्ण मुझको ।

श्रीकृष्ण की यह अप्रत्याशित बात सुन,
बहुत ही भयभीत हो गयीं रुक्मिणीजी,
डूबने-उतराने लगीं चिंता के सागर में,
और ठिठकी सी रह गयीं रुक्मिणीजी ।

विचारशक्ति लोप हो गयी शोक से,
तत्क्ष्ण वे अत्यन्त ही दुबली हो गयीं,
अचेत हो गयीं वियोग की आशंका से,
केले के खंभे सी धरती पर गिर गयीं ।

इस तरह उन्हें विकल हुआ देख,
करुणा से भर गया हृदय कृष्ण का,
रुक्मिणीजी को उठा सीने से लगाया,
और उन्हें आश्वस्त करने को कहा ।

एकमात्र मेरे ही परायण हो तुम,
जानता हूँ, तुम मेरी प्रिय सहचरी हो,
हँसी-हँसी में बस देखना चाहता था,
कि कुपित हो कितनी सुंदर लगती हो ?

रुक्मिणीजी को विश्वास हो गया,
कि श्रीकृष्ण ने किया हास-परिहास,
भय जाता रहा उनके हृदय से,
लौट आयी उनकी साँसों में साँस ।

कहने लगीं, आपका कहना ठीक है,
हे अनन्त एश्वर्य से युक्त श्रीभगवान,
त्रिलोकी के स्वामी, अखण्ड महिमा वाले,
भला कब हो सकती मैं आपके समान ?

राजाओं के भय से ना छिपे आप,
पर आप छिपे त्रिगुणरुपी राजाओं से,
चैतन्यघन अनुभूतिस्वरूप आत्मा,
अन्त:करणरूप समुद्र में उनके भय से ।

इन्द्रियरुपी राजाओं से भी वैर आपका,
और दूर रहते आप राजसिंहासन से,
सच है क्योंकि आपके सेवक भी,
दुत्कार देते राजसिंहासन को दूर से ।

और आपने कहा आप अकिंचन हैं,
सच है क्योंकि आपके सिवा कुछ नहीं,
सो आपके अतिरिक्त कुछ न होने से,
आपके पास रखने को भी कुछ नहीं ।

सही है धनाढ्य आपको नहीं भजते,
क्योंकि डूबे रहते वो मिथ्याभिमान में,
कालरूप में आप उनके सिर पर सवार,
पर डूबे रहते वो इन्द्रिय तृप्ति में ।

समझ आपको सारे जगत का आत्मा,
जो करते अपने प्रेमियों को आत्मदान,
ब्रह्मा और इन्द्रादि पर शासन करनेवाले,
मैंने चुना आपको, हे श्रीकृष्ण भगवान !

आपके चरणों का आश्रय लेने वालों का,
हर लेते है आप सब तरह का पाप-ताप,
फिर भला यह कैसे सम्भव हो सकता,
आपसे विवाह कर मुझे मिले सन्ताप ?

शिशुपालादि उन्हीं अभागिनियों को मिलें,
आपकी लीलाकथाएँ सुनी ना जिन्होंने,
उदासीन हैं आप क्योंकि आत्माराम हैं,
मुझे दीजिए प्रेम आप चरणों में अपने ।

कहा आपने किसी दूसरे को वर लूँ,
झूठ नहीं मानती आपकी इस बात को,
क्योंकि कभी-कभी अम्बा[54] के समान,
दूसरे पुरुष में प्रीति रहती है किसीको ।

कुलटा स्त्रियों का मन रहता औरों में,
बुद्धिमान पुरुष साथ न रक्खें उन्हें,
लोक-परलोक दोनों खो बैठते वो,
किसी तरह भी सुख न मिलता उन्हें ।

उनकी बातें सुन श्रीकृष्ण ने कहा,
यह सुनने को ही हँसी की थी मैंने,
तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो रुक्मिणी,
मेरे वचनों की सही व्याख्या की तुमने ।

कोई और भार्या घर में नहीं है तुमसी,
मेरी प्रशंसा ही सुन मुझे भेजा संदेसा,
तुम्हारे भाई को विरूप करने पर भी,
मुझसे विछोह से डर, सारा दुःख सहा ।

[54] अम्बा का हरण भीष्म ने विचित्रवीर्य के लिए किया था लेकिन अम्बा शाल्व से विवाह करना चाहती थी ।

मेरे पहुँचने में कुछ विलम्ब होता देख,
शरीर छोड़ने का संकल्प कर लिया तुमने,
तुम्हारा यह प्रेमभाव तुम्हारे अंदर ही रहे,
बदला चुकाने की नहीं सामर्थ्य मुझमें ।

श्रीकृष्ण के परिवार की वंशावली

ऐसे ही अपनी अन्य पत्नियों के साथ,
गृहस्थ धर्म निभाते थे भगवान श्रीकृष्ण,
जितनी पत्नियाँ थीं उतने रूप थे उनके,
सबके साथ हमेशा रहते थे श्रीकृष्ण ।

दस-दस पुत्र थे उनके हर पत्नी से,
हरेक समझतीं सबसे प्यारी है वो,
पर सच पूछो तो उन्हें तत्त्वरूप से,
उनकी महिमा जानती नहीं थीं वो ।

श्रीकृष्ण के अद्भुत, अलौकिक रूप पर,
रहती थीं सब-की-सब राजकुमारियाँ मोहित,
पर अपने हाव-भाव और चितवन से,
कर न पाती श्रीकृष्ण का चित्त विचलित ।

जो आठ पटरानियाँ[55] थीं श्रीकृष्ण की,
दस-दस पुत्रों ने जन्म लिया उनसे,
रुक्मिणीजी के ज्येष्ठ पुत्र थे प्रद्युम्न,
अनिरुद्ध का जन्म हुआ प्रद्युम्न से ।

रुक्मिणीजी के भाई रुक्मी की,
रुक्मवती नाम की एक कन्या थी,
प्रद्युम्न के रूप और गुणों पर रीझ,
स्वयंवर में उन्हें वरमाला पहना दी ।

यद्दपि रुक्मी रुष्ट था श्रीकृष्ण से,
पर रुक्मिणीजी को प्रसन्न करने को,
अपने भानजे प्रद्युम्न के साथ उसने,
ब्याह दिया अपनी पुत्री रुक्मवती को ।

अपनी पौत्री रोचना को रुक्मी ने,
ब्याह दिया नाती अनिरुद्ध के साथ,
जानता था वो यह उचित नहीं है,
पर स्नेहवश उसने कर दी यह बात ।

विवाह अवसर पर प्रमुख द्वारकावासी,
गए हुए थे भोजकट रुक्मी के नगर में,
वहाँ कुछ दुर्बुद्धि नरपतियों ने बहकाया,
जीत लो बलरामजी को पासों के खेल में ।

यद्दपि बलरामजी निपुण न थे चौसर में,
पर खेलने का बड़ा व्यसन था उन्हें,
रुक्मी ने बलरामजी को बुलवाया,
और दोनों लगे चौसर का खेल खेलने ।

पहले कुछ दाँव जो जीत लिए रुक्मी ने,
कलिंगनरेश ने उड़ायी बलरामजी की हँसी,
इससे बलरामजी कुछ चिढ़ से गए,
रुक्मी ने कुछ बड़े दाँव की चाल चली ।

जीत लिया बलरामजी ने यह दाँव,
पर रुक्मी ने छल कर ना माना,
तब और बड़ा दाँव जीता बलरामजी ने,
पर उसको भी उसने ना माना ।

रुक्मी छल से बोला निर्णय कर दें,
कलिंगनरेश आदि विशेषज्ञ इसका,
तभी आकाशवाणी हुई कि धर्मानुसार,
यह दाँव भी बलरामजी ने ही जीता ।

एक तो मौत सवार थी उसके सिर पर,
ऊपर से दुष्ट साथियों का उभाड़ना,
कुछ ध्यान न दिया आकाशवाणी पर,
शुरू किया बलरामजी की हँसी उड़ाना ।

[55] रुक्मिणीजी, सत्यभामाजी, जाम्बवतीजी, कालिन्दीजी, मित्रविन्दाजी, सत्याजी, भद्राजी और लक्ष्मणाजी

बोला, आखिर ग्वाले ही हो आप लोग,
वन-वन भटकते, चराते गौओं को,
पासों और बाणों से तो खेलते राजा,
क्या जानों आप चौसर के खेल को ?

आग में जैसे डाल दिया हो घी,
भभक उठे बलरामजी गुस्से से,
पास ही पड़ा मुद्गर उठा उन्होंने,
रुक्मी के सिर पर दे मारा उसे ।

दाँत दिखा रहा था जो कलिंगनरेश,
भागा लेकिन दूर तक जा ना सका,
तोड़ दिए बलरामजी ने दाँत उसके,
और राजाओं को भी चखाया मजा ।

टूटे-फूटे हाथ-पाँव, खून से लथपथ,
वे राजा वहाँ से जान बचाकर भागे,
किसी का पक्ष ना लिया श्रीकृष्ण ने,
नववधू को ले सब द्वारका आ गए ।

ऊषा-अनिरुद्ध मिलन

वामन भगवान को पृथ्वी दान देनेवाले,
दैत्यराज बलि का पुत्र था बाणासुर,
सदा शिवजी की भक्ति में रत रहता,
समाज में बहुत सम्मानित था बाणासुर ।

बहुत उदार और बुद्धिमान था वो,
अपनी बात का धनी, वचन का पक्का,
शोणितपुर में राज्य करता था,
शंकर की कृपा, सेवा करते देवता ।

ताण्डव नृत्य कर रहे थे जब शंकर,
अनेक वाद्य बजाए तब बाणासुर ने,
बाणासुर के एक हजार हाथ थे,
प्रसन्न कर लिया शंकर को उसने ।

बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागतरक्षक,
समस्त भूतों के एकमात्र स्वामी शंकर,
कहा बाणासुर से जो चाहो माँग लो,
वो बोला, रक्षा करें, रहें मेरे नगर ।

बल-पौरुष के घमंड में चूर उसने,
कहा एक दिन भगवान शंकर से,
मेरी हजार भुजाएँ बस भाररूप हैं,
आपके सिवा कौन जो लड़े मुझसे ?

तनिक क्रोधित हो भगवान शिव बोले,
जिस समय टूट गिर जाएगी तेरी ध्वजा,
युद्ध होगा तेरा मेरे समान योद्धा से,
तेरे घमण्ड को जो चूर-चूर कर देगा ।

बिगड़ गयी थी इतनी बुद्धि उसकी,
कि हर्षित हो लौट आया वो अपने घर,
करने लगा उस युद्ध की प्रतीक्षा जिसमें,
रहना था उसका बल-वीर्य नाश होकर ।

ऊषा नाम की एक कन्या थी उसकी,
एक दिन उसने सपने में देखा खुद को,
परम सुन्दर अनिरुद्धजी संग थी वो,
हालांकि कभी देखा ना सुना था उनको ।

फिर सपने में ही उन्हें न देखकर,
वह बोल उठी, प्राणप्यारे तुम कहाँ हों,
विह्वलता से चौंक कर उठ बैठी,
लज्जित हुई सखियों संग पा खुद को ।

बाणासुर के मन्त्री की बेटी चित्रलेखा,
बहुत अच्छी सखी थी वो ऊषा की,
पूछने पर ऊषा ने उसे बतलाया,
कैसी रूपरेखा थी उस चित्तचोर की ।

साँवला- साँवला सा उसके शरीर का रंग,
नेत्र कमल से, भुजाएँ घुटनों तक लंबी,
स्त्रियों का चित्त चुरानेवाला नवयुवक,
छोड़ कर चला दिया मुझे अचानक ही ।

चित्रलेखा बोली, चित्र बनाती हूँ मैं,
तुम पहचान लो अपने प्राणवल्लभ को,
फिर चाहे वह कहीं भी क्यों न हो,
ले आऊँगी तुम्हारे पास मैं उसको ।

देवता, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य, मनुष्यादि,
बहुतों के चित्र बनाए चित्रलेखा ने,
जब उसने अनिरुद्ध का चित्र बनाया,
हाँ, यही हैं वो चित्तचोर, कहा ऊषा ने ।

चित्रलेखा एक सिद्ध योगिनी थी,
जान गयी पौत्र हैं ये श्रीकृष्ण के,
योगसिद्धि से उठा लाई उनको,
रात में ही वह द्वारका पहुँच के ।

इतना सुरक्षित था वह अन्त:पुर कि,
कोई पुरुष उसमें झाँक नहीं सकता,
अनिरुद्ध को पा ऊषा आनन्दित थी,
बढ़ रहा प्रेम दिन दूना, रात चौगुना ।

अपने प्रेम से वश में कर लिया,
ऊषा ने अनिरुद्ध के मन को,
उस कन्या के अन्त:पुर में छिपे,
अनिरुद्ध भूल गए स्वयं अपने को ।

ऊषा के रंग-ढंग देख पहरेदारों ने,
सूचित किया जाकर बाणासुर को,
उसने ऊषा के महल में आकर देखा,
चकित हुआ देख वहाँ अनिरुद्ध को ।

सैनिकों के साथ बाणासुर को देख,
एक परिध उठा अनिरुद्ध डट गए,
सैनिक जो बढ़े उन्हें पकड़ने को,
अनिरुद्ध के हाथो वे मारे गए ।

क्रोध से तिलमिलाऐ बाणासुर ने,
बाँध लिया अनिरुद्ध को नागपाश से,
मालूम चला जब ऊषा को इसका,
बहुत विह्वल हो गयी वह विषाद से ।

श्रीकृष्ण-बाणासुर संग्राम

बीत गए वर्षा के चार महीने,
पर अनिरुद्ध का कहीं पता न चला,
शोकाकुल थे सब स्वजन उनके,
तब नारदजी ने आ उनसे सब कहा ।

सब समाचार जान यदुवंशियों ने,
आक्रमण कर दिया शोणितपुर पर,
घेर ली राजधानी बाणासुर की,
और तहस-नहस करने लगे नगर ।

बाणासुर भी अपनी सेना ले आ डटा,
शंकरजी भी साथ में, सवार नन्दी पर,
शंकरजी से युद्ध हुआ श्रीकृष्ण का,
प्रद्युम्न लड़े कार्तिकेय से डटकर ।

कुम्भाण्ड और कूपकर्ण से भिड़े बलराम,
बाणासुर का पुत्र भिड़ गया साम्ब[56] से,
सात्यकि से लड़ने लगा स्वयं बाणासुर,
इस तरह योद्धा भिड़ गए एक-दूजे से ।

खदेड़ दिए शंकर के अनुचर श्रीकृष्ण ने,
तो शंकरजी ने चलाए तरह-तरह के शस्त्र,
भगवान श्रीकृष्ण ने विस्मित हुए बिना,
विरोधी शस्त्रों से शांत कर दिए वे शस्त्र ।

ब्रह्मास्त्र को शांत किया ब्रह्मास्त्र से,
वायव्यास्त्र को रोका पार्वतास्त्र से,
इसी तरह अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रों का,
प्रतिकार किया उपयुक्त अस्त्र-शस्त्र से ।

[56] साम्ब-श्रीकृष्ण और जाम्बवती के पुत्र ।

फिर श्रीकृष्ण ने जृम्भणास्त्र चलाया,
जँभाईयाँ आने लगीं जिससे शंकरजी को,
युद्ध से विरत हो लेने लगे जँभाईयाँ,
श्रीकृष्ण मारने लगे बाणासुर की सेना को ।

इधर स्वामिकार्तिकेय घायल होकर,
अपने वाहन मयूर पर बैठ भाग चले,
बलरामजी के मूसल की चोट खाकर,
कुम्भाण्ड और कूपकर्ण भी गिर पड़े ।

अपने सेनापतियों को हताहत देख,
बाणासुर की सेना हो गयी तितर-बितर,
तब सात्यकि को छोड़कर बाणासुर,
दौड़ा आक्रमण करने श्रीकृष्ण पर ।

अपने एक हजार हाथों से उसने,
पाँच सो धनुष उठा बाण चलाये,
पर श्रीकृष्ण ने उसके धनुष काट,
सारथि, रथ और घोड़े भी गिराये ।

तभी कोटरा नाम की एक देवी,
बाणासुर को धर्मपुत्र माना जिसने,
अपने उपासक पुत्र की रक्षा हेतु,
निवस्त्र हो आ खड़ी हुई बीच में ।

कहीं पड़ जाए ना उस पर दृष्टि,
सो श्रीकृष्ण दूसरी ओर लगे देखने,
तब तक धनुषहीन और रथहीन,
बाणासुर चला गया अपने नगर में ।

तब तीन सिर और तीन पैरवाला,
शंकरजी ने अपना दुर्घर्ष ज्वर छोड़ा,
दसों दिशाओं को जलाता हुआ सा,
भगवान श्रीकृष्ण की तरफ वो दौड़ा ।

उस माहेश्वर ज्वर का मुकाबला करने,
श्रीकृष्ण ने छोड़ा अपने वैष्णव ज्वर को,
तब वैष्णव ज्वर से हार माहेश्वर ज्वर,
हाथ जोड़ प्रार्थना करने लगा कृष्ण को ।

बोला, अनन्त है आपकी शक्ति, प्रभु !
ईश्वरों के भी परम महेश्वर है आप,
अद्वितीय और केवल ज्ञानस्वरूप हैं,
समस्त कारणों के कारण हैं आप ।

सभी विकारों से रहित ब्रह्म हैं,
लीला से रूप धरते हैं आप अनेको
यह समस्त प्रपंच आपकी माया है,
प्रणाम करता हूँ मैं, हे प्रभु आपको !

आपके भयानक, दुस्सह तेज ज्वर से,
मैं सन्तप्त हो रहा हूँ बहुत ही,
जीव को तभी तक रहता ताप-संताप,
जब तक शरण न ली आपकी ।

तब त्रिशिरा[57] को निर्भय किया कृष्ण ने,
और दिया उन्होंने उसे यह आशीर्वाद,
उसको तुमसे कोई भय न रहेगा,
जो स्मरण करेगा हमारा यह संवाद ।

तब तक बाणासुर फिर आ पहुँचा,
अलग-अलग शस्त्र लिए अपने हाथों में,
एक-एक कर कृष्ण भुजाएँ काटने लगे,
अपने छुरे सा तीक्ष्ण चक्र ले हाथ में ।

बाणासुर की यों भुजाएँ कटती देख,
भक्तवत्सल शंकरजी लगे स्तुति करने,
बोले परमज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं आप,
अनेकों ब्रह्माण्ड बसे आपके रोम-रोम में ।

धर्मरक्षा और संसार के अभ्युदय के लिए,
हुआ है यह अवतार, हे प्रभु ! आपका,
आपकी ही माया से मोहित हुए जीव,
संसार में फँस, भुला देते स्वरूप आपका ।

[57] त्रिशिरा-तीन सिर वाला शंकर भगवान का अनुचर ।

यह बाणासुर मेरा प्रिय कृपापात्र सेवक है,
दिया हुआ है इसको मैंने अभयदान,
जैसे इसके परदादा प्रहलाद पर कृपा की,
इसे भी अपना कृपाप्रसाद दें, हे भगवान !

कहा कृष्ण ने, आपकी बात मान भगवन,
जैसा आप चाहते, इसे किए देता हूँ निर्भय,
भुजाएँ काट आपका ही अनुमोदन किया,
जैसा आपने इसके लिए किया था निश्चय ।

जानता हूँ, दैत्यराज बलि का पुत्र है,
सो बाणासुर का वध मैं नहीं करूँगा,
वचन दिया था प्रहलाद के वंश के,
किसी भी दैत्य को मैं नहीं मारूँगा ।

भुजाएँ काटी घमण्ड चूर करने को,
इसकी बड़ी सेना थी पृथ्वी का भार,
अजर, अमर हो बनी रहेंगी इसकी,
जो बची हुई हैं अब ये भुजाएँ चार ।

श्रीकृष्ण से इस प्रकार अभय पाकर,
उनके पास आ माथा टेका धरती में,
फिर अनिरुद्धजी और पुत्री ऊषा को,
ले आया बैठाकर वह एक रथ में ।

श्रीकृष्ण ने शंकरजी की सम्मति से,
ऊषा और अनिरुद्ध का रथ आगे कर,
किया प्रस्थान द्वारका की ओर जहाँ,
पुरवासी प्रतीक्षा कर रहे नगर सजा कर ।

राजा नृग की कथा

एक दिन साम्ब, प्रद्युम्नादि राजकुमार,
घूमने के लिए गए एक उपवन में,
प्यास लगी तो एक कूएँ में देखा,
जल नहीं, पर एक विचित्र जीव उसमें ।

वह जीव था पर्वत सा एक गिरगिट,
भर आया उनका हृदय करुणा से,
करने लगे प्रयास उसे निकालने का,
पर निकाल सके ना किसी तरह उसे ।

कुतुहलवश बतलाया सब श्रीकृष्ण को,
तो श्रीकृष्ण वहाँ आए उस कूएँ पर,
उसे देख खेल-खेल में ही उन्होंने,
बाएँ हाथ से निकाल लिया उसे बाहर ।

उनके करकमलों का स्पर्श होते ही,
जाता रहा उसका गिरगिट का रूप,
सोने सा चमकने लगा शरीर उसका,
और पा लिया स्वर्गीय देवता का रूप ।

यद्दपि श्रीकृष्ण तो जानते ही थे,
फिर भी औरों को जनाने को पूछा,
तुम अवश्य कोई श्रेष्ठ देवता हो,
किस कारण यह योनि मिली, पूछा ।

सूर्य सा अपना मुकुट चरणों में झुका,
वह देव-पुरुष कहने लगा श्रीकृष्ण से,
महाराज इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग हूँ,
दानियों में नाम सुना होगा, लोगों से ।

हे प्रभु ! आप तो सबके साक्षी हैं,
कुछ भी नहीं छिपा है आपसे,
अनगिनत गौएँ मैंने दान करी थीं,
न्याय से प्राप्त किए हुए धन से ।

पृथ्वी, घर, घोड़े, हाथी, सोना, चाँदी,
दासियों सहित कन्याएँ भी दान कीं,
नाना प्रकार के अनेक यज्ञ किए,
बनवाए बहुत से कूएँ और बावली ।

एक दिन किसी अप्रतिग्रही[58] ब्राह्मण की,
एक गाय मेरी गौओं में आ मिली,
मुझे इसका कुछ भी पता न चला,
अनजाने उसे भी मैंने दान कर दी ।

जब वह ब्राह्मण उसे ले जा रहा था,
तभी उसका असली स्वामी आ पहुँचा,
दोनों ब्राह्मण झगड़ने लगे आपस में,
और यह झगड़ा मुझ तक आ पहुँचा ।

एक बोला, गाय दी आपने दान में,
तो दूसरा बोला, मेरी गाय चुरा ली,
सुनकर बात उन दोनों ब्राह्मणों की,
मेरी जान संकट में आ फँसी ।

एक-एक लाख गौएँ देनी चाही,
उस एक गाय के बदले मैंने उन्हें,
कहा उबारो मुझे इस धर्मसंकट से,
लेकिन इन्कार कर दिया दोनों ने ।

आयु समाप्त हो जाने पर यमराज ने,
क्या भोगना चाहते पहले मुझसे पूछा,
तेजस्वी लोक मिलेगा पुण्यों के कारण,
या जो किया पाप, फल पहले उसका ?

पाप का फल पहले भोगना चाहा,
'तो गिर जाओ' ऐसा कहा यम ने,
तुरन्त ही मैं नीचे को गिर गया,
और गिरगिट बन गया, देखा मैंने ।

उदार, दानी और ब्राह्मणों का सेवक,
और था हे प्रभु ! मैं भक्त आपका,
उत्कट अभिलाषा थी आपके दर्शन की,
सो नाश न हुआ मेरी उस स्मृति का ।

बड़े-बड़े शुद्ध हृदय योगीश्वर,
करते रहते हृदय में ध्यान आपका,
मैं अधम सांसारि जानता नहीं कैसे,
हो रहा मुझे साक्षात् दर्शन आपका ?

आपके दर्शन तो होते हैं तभी जब,
आता समय छूटने का संसार चक्र से,
कृपा कीजिए चाहे कहीं भी क्यों न रहूँ,
मेरा चित्त लगा रहे आपके चरणकमलों में ।

इस प्रकार कहकर राजा नृग ने,
प्रणाम किया भगवान श्रीकृष्ण को,
फिर उनकी परिक्रमा कर राजा नृग,
विमान पर चढ़ चले गए देवलोक को ।

अपने स्वजनों को सिक्षा देने के लिए,
तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा उन सबसे,
अग्नि के समान तेजस्वी लोग भी,
ब्राह्मणों का धन हड़प पचा नहीं सकते ।

हलाहल विष को विष नहीं मानता,
क्योंकि चिकित्सा हो सकती है उसकी,
पर ब्राह्मणों का धन ऐसा विष है,
कोई उपाय, कोई चिकित्सा नहीं जिसकी ।

ब्राह्मण के धनरूप अरणि की आग,
सारे कुल को समूल जला डालती,
बलपूर्वक उनका धन उपयोग करने से,
आगे-पीछे की पीढियाँ भी नष्ट हो जाती ।

द्वेष मत करो ब्राह्मणों से कभी,
अपराध पर भी क्षमा उचित उनको,
तुम भी करो सदा उन्हें नमस्कार,
जैसे मैं तीनों समय करता हूँ उनको ।

अनजान में भी उनके धन का अपहरण,
बहुत कष्ट देता ऐसा करने वाले को,
जैसे अनजाने में दान दी गयी गाय ने,
नर्क में डाल दिया राजा नृग को ।

[58]अप्रतिग्रही-दान न लेनेवाला ।

श्रीबलरामजी की ब्रजयात्रा

नन्दबाबा आदि स्वजनों से मिलें,
बलरामजी की यह बहुत इच्छा थी,
रथ पर सवार हो वे आए ब्रज में,
ब्रजवासियों को भी बहुत प्रतीक्षा थी ।

यथायोग्य अभिवादन किया सबका,
ब्रजवासी भी उनसे बड़े प्रेम से मिले,
नन्दबाबा और यशोदाजी स्नेह से द्रवित,
कृष्ण आदि की कुशलक्षेम पूछने लगे ।

उनकी प्रेमभरी चितवन से निहाल,
गोपियाँ पूछने लगीं कृष्ण के विषय में,
क्या कभी स्वजनों को याद करते हैं,
क्या कभी वो आएँगे यहाँ ब्रज में ?

दोहरा रहीं उन बातों को गोपियाँ,
जो बातें कृष्ण की बसी हृदय में,
श्रीकृष्ण के लुभावने सन्देश सुना,
सान्त्वना दी बलरामजी ने उन्हें ।

दो महीने वहीं रुके रहे बलरामजी,
बिताने लगे गोपियों के साथ समय,
इसी दौरान वरुणदेव ने अपनी पुत्री,
वारुणीदेवी को भेज दिया उसी जगह ।

एक वृक्ष के खोड़र से बह निकली वह,
और सारे वन को सुगन्धित कर दिया,
उस महक से आकृष्ट हो बलरामजी ने,
गोपियों के साथ उसका पान किया ।

कर रहीं थीं गोपियाँ उनका गुणगान,
बलरामजी विचर रहे थे मतवाले होकर,
जलक्रीड़ा के लिए यमुनाजी को पुकारा,
पर अनसुना कर दिया, यमुना ने सुनकर ।

यमुनाजी ने सोचा ये मतवाले हो रहे,
कर बैठीं आज्ञा का उल्लंघन उनकी,
यह देखकर बलरामजी क्रोधित हो गए,
खींचा यमुना को नोक से हल की ।

बोले, तू मेरा तिरस्कार कर रही,
किए देता हूँ अभी मैं तेरे टुकड़े सौ,
भयभीत हो चरणों में गिर पड़ी,
और गिड़गिड़ा प्रार्थना करने लगीं वो ।

बोलीं, भूल गयी थी मैं आपका पराक्रम,
आपके अंश शेषजी करते जगत धारण,
क्षमा कीजिए मेरा अपराध जो हुआ,
आपकी वास्तविकता न जानने के कारण ।

क्षमा कर दिया यमुनाजी को उन्होंने,
और गोपियों संग जलक्रीडा लगे करने,
उनके खींचे मार्ग से बहती हैं यमुनाजी,
मानों लगी हों उनका यशगान करने ।

पौन्ड्रक और काशिराज का उद्धार

जब बलरामजी ब्रज गए हुए थे,
तब करूष देश के राजा पौन्ड्रक ने,
दूत भेज श्रीकृष्ण को कहलवाया,
भगवान वासुदेव मैं हूँ वास्तव में ।

बहकाया करते थे मूर्ख लोग उसे,
कि आप ही हैं वासुदेव भगवान,
जगत रक्षा हेतु अवतार लिया आपने,
सो खुद को मान बैठा भगवान ।

दूत ने द्वारका आ दिया सन्देश,
जो पौन्ड्रक ने कहलवा भेजा उससे,
कहा, झूठे ही रख लिया तुमने नाम,
मूर्खतावश मेरे चिन्ह धारण कर रक्खे ।

छोड़ो अपना यह नाम 'वासुदेव',
और छोड़ो झूठे चिन्ह जो धरे तुमने,
यदि ऐसा करना स्वीकार नहीं तो,
आ जाओ युद्ध करो तुम मुझसे ।

हँसने लगे सभासद सन्देश सुन,
फिर श्रीकृष्ण ने उसे दिया उत्तर,
मैं चक्रादि चिन्ह यों नहीं छोड़ूँगा
इन्हें छोड़ूँगा मैं तेरे ही ऊपर ।

तेरे साथ तेरे साथियों पर भी,
बहक गया जिनके बहकाने से तू,
करूँगा मैं इन चक्रादि का प्रयोग,
बुरा परिणाम उनके साथ भोगेगा तू ।

भगवान का यह तिरस्कारपूर्ण सन्देश,
लेकर वह दूत गया पौन्ड्रक के पास,
इधर काशी-नरेश पर चढ़ बैठे श्रीकृष्ण,
क्योंकि पौन्ड्रक रह रहा था उसके पास ।

श्रीकृष्ण के आक्रमण का समाचार पा,
दो अक्षोहिणी सेना ले पौन्ड्रक आया,
काशी नरेश भी तीन अक्षोहिणी सेना ले,
साथ देने पौन्ड्रक के पीछे-पीछे आया ।

शंख, चक्र, गदा और अन्य चिन्ह भी,
पौन्ड्रक ने सब किए हुए थे धारण,
रेशमी पीले वस्त्र पहने हुआ था वो,
श्रीकृष्ण जैसा रूप किए हुए धारण ।

हँसने लगे श्रीकृष्ण उसे देखकर,
शत्रु ने शुरू कर दिया प्रहार करना,
श्रीकृष्ण ने भी अपने चक्र को चला,
शुरू किया शत्रु सेना का संहार करना ।

तहस-नहस कर दी वह चतुरंगिणी सेना,
रणभूमि पट गयी क्षत-विक्षत शवों से,
श्रीकृष्ण बोले तूने चक्रादि छोड़ने को कहा,
देख अब मैं छोड़ रहा हूँ तुझ पर उसे ।

ऐसा कह तिरस्कार कर पौन्ड्रक का,
नष्ट कर दिया उसका रथ श्रीकृष्ण ने,
फिर अपने चक्र का प्रयोग कर,
पौन्ड्रक का सिर उतार लिया उन्होंने ।

वैसे ही अपने तीक्ष्ण बाणों से,
उड़ा दिया काशिराज का सिर उन्होंने,
जैसे वायु कमल का पुष्प उड़ा दे,
वैसे ही काशी में गिरा दिया उसे उन्होंने ।

पौन्ड्रक और काशिराज को मारकर,
लौट आए श्रीकृष्ण द्वारका में,
निरन्तर श्रीकृष्ण का चिन्तन करने से,
भगवान् का सारुप्य पाया पौन्ड्रक ने ।

काशीनरेश का पुत्र था सुदक्षिण,
बहुत क्षुब्ध हुआ वो पिता के वध से,
करने लगा वो अराधना शंकर की,
प्रसन्न हो उन्होंने वर दिया उसे ।

कहा, ब्राह्मणों के साथ मिल करो तुम,
यज्ञदेव ऋत्विग्भूत दक्षिणाग्नि की अराधना,
ब्राह्मणों के अभक्त पर प्रयोग कर,
सफल कर सकोगे तुम अपनी साधना ।

भगवान शंकर की ऐसी आज्ञा प्राप्त कर,
व्रत ले करने लगा वह अभिचार साधना,
भयंकर रूपधारी अग्नि प्रकट होकर,
दसों दिशाएँ जलाता द्वारका हुआ रवाना ।

बहुत से प्रमथगण भी थे उसके साथ,
पहुँच गए वे सब द्वारका के समीप,
डर गए द्वारकावासी हरिन की तरह,
उस अभिचार की आग को देख समीप ।

भयभीत हो पहुँचे श्रीकृष्ण की शरण,
भगवान ने दिया उन्हें अभयदान,
जान गए वे यह माहेश्वरी कृत्या है,
सुदर्शन चक्र को भेजा करें समाधान ।

कोटि-कोटि सूर्यों समान तेजस्वी,
प्रलयकालीन अग्निसम जाज्वल्यमान,
चल दिए सुदर्शन चक्र तुरन्त ही,
समस्त जगत को करते प्रकाशमान ।

कुचल डाला अभिचार अग्नि को उन्होंने,
कृत्यारूप अग्नि का मुँह टूट गया,
नष्ट हो गया उसका सब तेज,
काशी लौट, याजकों को नष्ट कर दिया ।

ऋत्विज आचार्यों के साथ सुदक्षिण भी,
उसी अग्नि से जल भस्म हो गया,
कृत्या के पीछे-पीछे काशी जा चक्र ने,
काशी नगर को भी भस्म कर दिया ।

द्विविद वानर का उद्धार

भौमासुर का मित्र था वानर द्विविद,
मैन्द का भाई और मन्त्री सुग्रीव का,
भौमासुर की मित्रता का ऋण उतारने,
गाँव, नगर आग लगा जलाने लगा ।

कभी-कभी बड़े-बड़े पहाड़ उखाड़ उनसे,
प्रांत-के-प्रांत वो चकनाचूर कर देता,
और विशेष करके वह ऐसे काम,
आनर्त[59] प्रदेश के भीतर ही करता ।

आनर्त प्रदेश को इसलिए चुना उसने,
क्योंकि वहाँ भगवान श्रीकृष्ण रहते थे,
कभी-कभी समुद्र में इतना जल उछालता,
कि तटीय नगर जल में डूब जाते थे ।

ऋषि-मुनियों के आश्रमों को भी,
वह दुष्ट तहस-नहस कर देता,
स्त्रियों और पुरुषों को उठाकर वो,
गुफाओं में डाल चट्टान ढक देता ।

एक दिन सुललित संगीत सुनकर,
वह दुष्ट गया रैवतक पर्वत पर,
उसका दुर्भाग्य कि विराजमान थे,
बलरामजी उस समय पर्वत पर ।

वे अपनी स्त्रियों संग आनन्दमग्न हो,
मधुपान कर गा रहे थे मधुर संगीत,
शाखाएँ झकझोरता, दाँतों को किटकिटाता,
स्त्रियों की अवहेलना करने लगा वो ढ़ीठ ।

बलरामजी ने कुछ क्रोधित होकर,
एक पत्थर का ढेला मारा उस पर,
अपने को बचाकर, अवहेलना करता,
मधुकलश को ही ले गया वो उठाकर ।

फोड़ डाला मधुकलश को उसने,
और फाड़ डाले वस्त्र स्त्रियों के,
फिर चिढ़ाने लगा बलरामजी को,
हँस-हँसकर अपने दाँत दिखा के ।

तब बलरामजी उसकी ढिठाई देख,
और अन्य देशों की दुर्दशा विचारकर,
उसको मार डालने की इच्छा से,
चल दिए अपना हल-मूसल उठाकर ।

तभी द्विविद ने एक शाल-वृक्ष उखाड़,
दे मारा उसे बलरामजी के सिर पर,
रोक लिया बलरामजी ने उसे बीच में,
और दे मारा मूसल उसके सिर पर ।

[59] आनर्त-काठियावाड़ ।

खून बहने लगा फटे मस्तक से,
पर दूसरा वृक्ष उसने लिया उखाड़,
झाड-झूड़कर बिना पत्तों का कर उसे,
किया उससे बलरामजी पर तीव्र प्रहार ।

बलरामजी ने कर दिए टुकड़े उसके,
तो दूसरा वृक्ष उखाड़ फिर किया प्रहार,
निरस्त कर दिया बलरामजी ने उसे भी,
तो करता रहा वो यों ही वार-पर-वार ।

सारा वन वृक्षहीन कर दिया उसने,
फिर करने लगा वार चट्टानों से वो,
बलरामजी ने कर दिए टुकड़े उनके,
तब द्विविद ने मारा मुक्का उनको ।

बलरामजी ने तब हल-मूसल छोड़,
उसकी हँसली पर प्रहार किया हाथों से,
तब खून उगलता गिर पड़ा द्विविद,
मिल गयी मुक्ति लोगों को उससे ।

साम्ब का विवाह

बहुत वीर थे जाम्बवती-पुत्र साम्ब,
हर लाए दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा को,
कौरवों को यह स्वीकार न हुआ,
सोचा बंदी बना लें वे साम्ब को ।

सो कर्ण, दुर्योधन आदि छः वीरों ने,
पीछा किया साम्ब के रथ का,
साम्ब ने एक साथ छः-छः तीर चलाकर,
घोड़ों, सारथि और उन वीरों पर छोड़ा ।

साम्ब के इस अद्भुत पराक्रम की,
प्रशंसा की विपक्षी योद्धाओं ने भी,
फिर एक साथ उन छहों ने मिलकर,
हमला कर बना लिया साम्ब को बंदी ।

इस प्रकार कष्ट और कठिनाई से,
बंदी बना ले आए वो साम्ब को,
साथ में थी उनकी कन्या लक्ष्मणा,
जय मनाते लौट आए हस्तिनापुर को ।

नारदजी से यह समाचार जानकर,
भर गए यदुवंशी बहुत क्रोध से,
महाराज उग्रसेन से आज्ञा लेकर,
कौरवों पर आक्रमण की लगे सोचने ।

पर दोनों कुलों के बीच लड़ाई,
बलरामजी ने ठीक न समझा इसे,
यदुवंशी सेना को शांत कर वे,
स्वयं अकेले ही हस्तिनापुर को चले ।

भीतर न जाकर, नगर के बाहर ही,
रुक गए बलरामजी एक उपवन में,
उद्धवजी को भेजा धृतराष्ट्र के पास,
कौरव क्या करना चाहते हैं जानने ।

अपने परम हितैषी और प्रियतम,
बलरामजी पधारे हैं यह जानकर,
कौरव चल दिए उनका सत्कार करने,
अपने साथ मांगलिक सामग्री सजाकर ।

यथायोग्य अभिवादन आदि के बाद,
बलरामजी ने कहा धीर-गम्भीर हो,
महाराज उग्रसेन ने एक आज्ञा दी है,
चाहते हैं तुम लोग उसका पालन करो ।

अकेले साम्ब को तुम लोगों ने मिल,
अधर्मपूर्वक बना लिया है बंदी उसे,
कहीं सम्बन्धियों में पड़ जाए न फूट,
हम लोग सह रहे हैं इसलिए इसे ।

अतः अब और बढ़ाओ ना झगड़ा,
सौंप दो साम्ब और नववधू को हमें,
यह सुन कौरव तिलमिला उठे क्रोध से,
हम ही ने तो राजा बनाया है इन्हें ।

रिश्तेदारी कर ली यदुवंशियों के साथ,
तो ये हमारे संग सोने-बैठने लगे,
अब पाँव की जूती सिर चढ़ रही,
हम जान-बूझ उपेक्षा करने में लगे ।

यदुवंशियों के पास राजचिन्ह का,
उचित नहीं रहना, छीन लेना चाहिए,
हमें ही आज्ञा अब ये देने लगे,
हमें ऐसा होने देना नहीं चाहिए ।

जैसे जंगल में किसी सिंह का ग्रास,
कोई भेड़ा छीन नहीं सकता उससे,
वैसे ही भीष्म, द्रोण आदि के रहते,
इन्द्र भी कुछ छीन नहीं सकता उनसे ।

बल और सम्पत्ति के घमण्ड से चूर,
कौरव चले गए तिरस्कार कर उनका,
समझ गए बलरामजी बुद्धि विपरीत हुई,
शान्ति नहीं, प्रतिकार करना होगा इनका ।

पृथ्वी क्या लोकपाल आदि भी,
करते हैं जिनकी आज्ञा का पालन,
वे उग्रसेन राजधिराज नहीं हैं,
बस भोज, वृष्णि, यदुओं के राजन ?

सुधर्मासभा पर है अधिकार जिनका,
पारिजात जो ले आए उखाड़कर,
वे श्रीकृष्ण भी क्या साधारण हैं,
अधिकार नहीं भला उनका किस पर ?

स्वयं लक्ष्मी जिनके चरण उपासती,
वे भगवती-लक्ष्मीपति भगवान श्रीकृष्ण,
रख सकते नहीं छत्र, चँवर आदि,
राजसिंहासन पर नहीं रख सकते चरण ?

कौरवों का दिया हुआ एक टुकड़ा,
भोगते हैं बेचारे यदुवंशी लोग,
वे तो हैं कौरवों के पैर की जूती,
और उनके सिरमौर कुरुवंश के लोग ?

बेसिर-पैर की बातें, सब कटुता भरी,
मुझ जैसा इनका शासन कर सकता,
दण्डित कर ला सकता होश ठिकाने,
भला कैसे इनकी बात सहन कर सकता ?

कौरवहीन कर डालूँगा सारी पृथ्वी,
ऐसा कह भर गए बलराम क्रोध में,
हस्तिनापुर को हल की नोक से उखाड़,
लगे उसे गंगाजी की ओर खींचने ।

काँपने लगा डगमगाती नाव सा,
हस्तिनापुर में कौरव भी हिल गए,
लगा कि नगर अब गिरा गंगाजी में,
तो हाथ जोड़ बलरामजी की शरण गए ।

लक्ष्मणा और साम्ब को आगे कर,
कहने लगे, जगत के आधार शेषजी आप,
प्रभो ! बिगड़ गयी है हमारी बुद्धि,
हमारा अपराध क्षमा कर दीजिए आप ।

सृष्टि, स्थिति, प्रलय के एकमात्र कारण,
और स्वयं निराधार स्थित हैं आप,
ये सब लोक खिलौने हैं आपके,
सब लोकों को धारण किए हैं आप ।

उचित ही है यह क्रोध आपका,
समस्त प्राणियों को शिक्षा देने को,
हम आपको नमस्कार करते हैं,
हे प्रभु ! अभयदान दीजिए हमको ।

बलरामजी ने उन्हें क्षमा कर दिया,
साम्ब, लक्ष्मणा संग द्वारका चले,
हस्तिनापुर रह गया उत्तर में नीचा,
और हो गया कुछ ऊंचा दक्षिण में ।

देवर्षि नारदजी का द्वारका आना

विवाह किया हजारों राजकुमारियों से,
श्रीकृष्ण ने एक साथ, एक ही समय में,
नारदजी ने जब यह समाचार सुना,
पड़ गए वो अत्यधिक आश्चर्य में ।

देखना चाहते थे उनका रहन-सहन,
सो आ पहुँचे द्वारका में नारदजी,
रंग-बिरंगे फूलों से लदे वन-उपवन,
भौंरें गुंजार रहे, चहक रहे पक्षी ।

निर्मल जल से भरे सरोवरों में,
खिल रहे थे तरह-तरह के कमल,
और उस दिव्य द्वारका में बने,
स्फटिक मणि से नौ लाख महल ।

फर्शों में जड़े पन्नों की प्रभा से,
जगमगा रहे थे वे महल द्वारका के,
गलियों, सडकों और चौराहों से सजा,
बड़े छज्जे और ऊँचे दरवाजे घरों के ।

उसी द्वारका नगरी में श्रीकृष्ण का,
बहुत ही सुंदर अन्त:पुर स्थित था,
अपनी सारी कारीगरी, कला-कौशल,
विश्वकर्मा ने उसमें लगा दिया था ।

उसी अन्त:पुर के एक बड़े महल में,
देवर्षि नारदजी ने प्रवेश किया,
मूँगा, वैदूर्य और इन्द्रनील मणि का,
उसमें बहुतायत से प्रयोग हुआ ।

जगह-जगह बने चंदोवों में लगी थीं,
मोतियों की लड़ियों से बनी झालरे,
हाथी-दाँत से बने पलंग और आसन,
सेवा के लिए अनेक दास-दासियाँ लगे ।

दूर कर रहे थे अन्धकार महलों का,
अनेक रत्नदीप अपने प्रकाश से,
अगर की धूप से निकल रहा धूआँ,
मोर नाच रहे बादलों के भ्रम से ।

महल की स्वामिनी रुक्मिणीजी संग,
नारदजी ने देखा श्रीकृष्णजी को बैठे,
यद्दपि सहस्त्रों दासियाँ थी महल में,
पर रुक्मिणीजी हवा कर रहीं चंवर से ।

सिर झुका प्रणाम किया श्रीकृष्ण ने,
और हाथ जोड़ बैठाया आसन पर अपने,
फिर स्वयं ही नारदजी के चरण पखार,
चरणामृत सिर पर धारण किया अपने ।

फिर शास्त्रोक्त विधि से उनकी पूजाकर,
पूछा नारदजी से क्या सेवा करें उनकी,
नारदजी बोले भक्तों के प्रेमी हैं आप,
अवतार लिया रक्षा करने भक्तों की ।

दर्शन हुए आपके चरणकमलों के,
भक्तों को अभय और मोक्ष के दाता,
कृपा कीजिए कि मैं चाहे जैसे भी रहूँ,
इनके ध्यान में तन्मय रहूँ सदा-सर्वदा ।

उनकी योगमाया का रहस्य जानने,
नारदजी गए दूसरी पत्नी के महल में,
देखा प्राणप्रिया और उद्धवजी के साथ,
श्रीकृष्ण व्यस्त थे चौसर के खेल में ।

वहाँ भी आदर-सत्कार किया श्रीकृष्ण ने,
और पूछा उनसे वे वहाँ कब पधारे,
अपनी सेवा का अवसर देकर हमें,
हे देवर्षि ! धन्य कीजिए जन्म हमारे ।

चुपचाप उठकर नारदजी वहाँ से,
चले गए एक और अन्य महल में,
वहाँ जाकर नारदजी ने देखा कि,
श्रीकृष्ण दुलार रहे बच्चों को अपने ।

इस तरह एक से दूसरे महल में,
जा-जाकर देखने लगे नारदजी,
कहीं श्रीकृष्ण स्नान कर रहे थे,
कहीं कर रहे यज्ञ-हवन की तैयारी ।

अलग-अलग महलों में श्रीकृष्ण,
लगे हुए थे अलग-अलग कामों में,
कहीं अराधना, कहीं सन्ध्या, कहीं जप,
कहीं उद्धवजी के साथ मंत्रणा करने में ।

कहीं हाथी, घोड़े या रथ पर सवार,
तो कहीं सो रहे श्रीकृष्ण पलंग पर,
कहीं वंदीजन उनकी स्तुति कर रहे,
तो कहीं आशीर्वाद ले रहे दान कर ।

कहीं कर रहे हास्य-विनोद की बातें,
कहीं लगे हुए वे धन-संग्रह करने में,
कहीं पुराण-पुरुष का ध्यान कर रहे,
कहीं लगे गुरुजनों की सेवा करने में ।

किसी के साथ कर रहे युद्ध की बातें,
किसी के साथ बातें कर रहे सन्धि की,
कहीं बच्चों की शादी-ब्याह में व्यस्त,
कहीं तैयारी देवताओं के पूजन की ।

कहीं घोड़े पर चढ़ मृगया कर रहे,
कहीं अन्त:पुर में विचरण कर रहे,
इस तरह तरह-तरह के रूपों में,
भगवान श्रीकृष्ण नर-लीला कर रहे ।

उनकी योगमाया का वैभव देखकर,
नारदजी ने मुस्कुराते हुए कहा उनसे,
हालांकि अगम्य है आपकी माया,
पर इसका रहस्य छिपा नहीं हमसे ।

आपके चरणकमलों की सेवा करने से,
प्रकट हो गयी स्वयं ही हमारे सामने,
अब आप मुझे आज्ञा दीजिए जाने की,
गुणगान करूँ मैं आपका तीनों लोकों में ।

श्रीकृष्ण भगवान की दिनचर्या

प्रतिदिन जब सवेरा होने लगता,
भीनी-भीनी वायु भोर में बहने लगती,
लेकिन श्रीकृष्ण के विछोह के डर से,
उनकी पत्नियों को भोर असहय लगती ।

ब्राह्ममुहूर्त में ही उठ जाते श्रीकृष्ण,
लग जाते आत्मस्वरूप का ध्यान करने में,
मायातीत, भेद रहित, अखण्ड, स्वयंप्रकाश,
कोई उपाधि नहीं उस आत्मस्वरूप में ।

काल की सीमा के परे एकरस स्थित,
स्पर्श कर नहीं सकती अविद्या जिसका,
एकरस सत्तारूप और आनन्दस्वरूप है जो,
श्रीकृष्ण ध्यान करते अपने उसी रूप का ।

फिर निर्मल जल से स्नान कर,
नित्यकर्म सन्ध्या-वदन आदि करते,
उसके बाद हवन, गायत्री का जाप,
सूर्योदय होने पर सूर्योपस्थान करते ।

देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण कर,
बड़े-बूढों और ब्राह्मणों का पूजन करते,
फिर सीधी, शांत, दुधारू गौओं का दान,
मोती माला पहना, चाँदी-सोना मढ़ करते ।

गौ, ब्राह्मण, देवता, बड़े-बूढे, गुरुजन,
और समस्त प्राणियों को करते प्रणाम,
पीताम्बर, कौस्तुभादि को धारण करते,
फिर दर्पण में अपना मुख देखते भगवान ।

फिर पुरवासियों की अभिलाषाएँ और,
अन्य प्रजा की कामना पूरी करते,
ताम्बुल आदि वस्तुएँ औरों में बाँट,
फिर स्वयं उनका उपयोग करते ।

तब तक सारथि उनका रथ ले आता,
उस पर आरूढ़ हो महल से निकलते,
तदनन्तर सभी यदुवंशियों के साथ,
श्रीकृष्ण सुधर्मा सभा में प्रवेश करते ।

सब रानियों से अलग-अलग विदा हो,
सुधर्मा सभा में एक ही रूप में जाते,
आकाश में तारों के बीच चन्द्रमा से,
श्रीकृष्ण यदुवंशी वीरों में शोभा पाते ।

विदूषक, नटाचार्य, कुशल नर्तकियाँ,
प्रदर्शन करते अपनी-अपनी कला का,
सूत, मागध, वंदीजन नाचते-गाते,
पंडितगण मन्त्रों की करते व्याख्या ।

एक दिन एक नये मनुष्य ने,
बंदी राजाओं का कष्ट बतलाया,
जरासन्ध की कैद में बीस हजार,
राजाओं का उसने दुखड़ा सुनाया ।

कहा, हे सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण !
मन और वाणी के अगोचर हैं आप,
जो आपकी शरण में आ जाता है,
उसके सब भय नष्ट कर देते हैं आप ।

भगवन ! अधिकांश जीव फँसे हुए हैं,
दुनियावी सकाम और निषिद्ध कर्मों में,
आपकी उपासना से विमुख हो गए,
भ्रम-भटक रहे आशा-अभिलाषाओं में ।

कालरूप से सदा-सर्वदा सावधान रह,
कर डालते नष्ट आप आशालता उनकी,
कलाओं संग अवतार ग्रहण किया आपने,
दुष्टों को दण्ड, रक्षा करने संतों की ।

ऐसी अवस्था में आपकी इच्छा के विरुद्ध,
जरासन्ध आदि कैसे हमें कष्ट दे रहे,
यह बात हमारी समझ में नहीं आती,
हे प्रभु ! क्यों हमारी सुध नहीं ले रहे ?

हम जानते सुख हैं प्रारब्ध के अधीन,
क्लेश झेल रहे फँस माया के फंदे में,
आपके चरण शोक-मोह नष्ट कर डालते,
इस जरासन्धरूप बन्धन से छुड़ाइये हमें ।

दस हजार गज-शक्ति रखता जरासन्ध,
बनाकर रक्खा है हमे बन्दी उसने,
सत्रह बार मान-मर्दन कर छोड़ दिया,
पर एक बार आपको जीत लिया उसने ।

इसीसे उसका घमण्ड बढ़ गया है,
कुछ नहीं समझता है वो किसीको,
यह जानकर कि हम आपके भक्त हैं,
और भी ज्यादा सताता है वो हमको ।

कहा उस दूत ने, इस प्रकार आपसे,
प्रार्थना करी है उन बंदी राजाओं ने,
कृपा कर उनका कल्याण कीजिए,
वे हैं आपके चरणों की शरण में ।

अभी वह दूत यों कह ही रहा था,
कि तभी वहाँ देवर्षि नारद आ गए,
सभासदों सहित आदर-सत्कार कर,
श्रीकृष्ण पाण्डवों के लिए पूछने लगे ।

नारदजी बोले, सर्वोपरि मायावी हैं आप,
ब्रह्मादि भी उससे पार पा नहीं सकते,
अनेक बार देखी है आपकी माया मैंने,
सो आप यों अनजान बन नहीं सकते ।

इस जगत की रचना और संहार,
प्रभु ! आप करते अपनी माया से,
असत्य होने पर भी सत्य सा लगता,
प्रभु ! आपकी इसी माया के कारण से ।

वासनाओं में फँस भटकता रहता जीव,
जानता नहीं कैसे वो मुक्त हो सकता,
अवतार ग्रहण कर लीला करते आप,
जिसके सहारे जीव मुक्त हो सकता ।

आप सब जानते, फिर भी बतलाता,
युधिष्ठिर आपकी प्राप्ति करना चाहते,
इसलिए श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ के द्वारा,
युधिष्ठिर आपकी आराधना करना चाहते ।

बड़े-बड़े देवता और यशस्वी नरपतिगण,
आपके दर्शन करेंगे राजसूय यज्ञ में,
अन्त्यज को भी पवित्र कर देते दर्शन,
फिर क्या कहना इन लोगों के बारे में ?

लेकिन सभासद उत्सुक हो रहे थे,
कि चढ़ाई करी जाए जरासन्ध पर,
क्या किया जाए, उद्धवजी से पूछा,
श्रीकृष्ण ने तनिक सा मुस्कुराकर ?

श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पधारना

भगवान की आज्ञा पा उद्धवजी बोले,
नारदजी ने सलाह दी कि जाएँ यज्ञ में,
उनका यह कथन सर्वथा उचित ही है,
साथ ही रक्षा उसकी जो आए शरण में ।

राजसूय यज्ञ वही कर सकता है,
जो दसों दिशाओं को कर ले विजीत,
पाण्डवों का यज्ञ, शरणागतों की रक्षा,
दोनों के लिए चाहिए जरासन्ध पर जीत ।

दस हजार हाथियों का बल जरासन्ध में,
केवल भीमसेन ही हरा सकते हैं उसे,
आमने-सामने के युद्ध में एक ही वीर,
उसे जीत ले, यही अच्छा है सबसे ।

सौ अक्षोहिणी सेना लेकर जब लड़ेगा,
आसान नहीं होगा जीतना युद्ध में उसे,
लेकिन जरासन्ध है बड़ा ब्राह्मण-भक्त,
खाली नहीं जाते ब्राह्मण उसके दर से ।

इसलिए भीम जाएँ ब्राह्मण के वेश में,
और युद्ध की भिक्षा माँगे उससे,
आपकी उपस्थिति में द्वन्द युद्ध होगा,
तो निश्चित ही भीम मार डालेंगे उसे ।

ब्रह्मा शंकरादि तो सब निमित्तमात्र हैं,
आप सर्वशक्तिमान, सब होता आप से,
ऐसे ही भीम भी बस निमित्तमात्र बनेंगे,
उसका वध तो होगा आपकी इच्छा से ।

इस प्रकार जरासन्ध का वध होने से,
वे सब बंदी राजा मुक्त हो जाएँगे,
राजसूय यज्ञ का भी काम सधेगा,
सो अच्छा होगा यदि इन्द्रप्रस्थ जाएँगे ।

सब ने स्वागत किया इस सलाह का,
तब बलराम और उग्रसेनजी से आज्ञा ले,
रानियों और उनके सामान को आगे कर
बड़ी सेना और सामग्री ले श्रीकृष्ण चले ।

आनर्त, सौवीर, मरु, कुरुक्षेत्र आदि,
और पर्वत, नदी आदि को पार कर,
पाँचाल और मत्स्य देशों में होते हुए,
श्रीकृष्ण जा पहुँचे इन्द्रप्रस्थ नगर ।

जब उनके आने का समाचार मिला,
युधिष्ठिर आदि स्वागत करने चले,
स्नेहातिरेक से गद्गद हो रहे वो,
बार-बार उन्हें हृदय से लगाने लगे ।

फिर भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव मिले,
सब आलिंगन कर आनन्दित हो रहे,
बुजुर्गों का अभिवादन किया श्रीकृष्ण ने,
सूत, वंदीजन आदि उनकी स्तुति कर रहे ।

सजाया गया इन्द्रप्रस्थ उनके स्वागत में,
पुरवासी भी सब घूम रहे सज-धजकर,
घर-घर दीपावली से प्रकाशित हो रहे,
और पताकाएँ फहरा रहीं घरों पर ।

स्त्रियाँ उत्सुक हो कर रहीं दर्शन,
सराह रहीं कृष्ण की रानियों का भाग्य,
सोच रहीं क्या पुण्य किया होगा उन्होंने,
कि उनके सानिद्ध्य का पाया सौभाग्य ।

राजमहल में पधारे भगवान श्रीकृष्ण,
अन्त:पुर की स्त्रियाँ हो गयीं भाव-विभोर,
कुन्ती ने लगा लिया हृदय से उन्हें,
उनके आनन्द का नहीं कोई ओर-छोर ।

आदरभाव और आनन्द के उद्रेक से,
युधिष्ठिर आत्मविस्मृत से हो रहे,
इस बात का भी ध्यान रहा न उन्हें,
किस क्रम से श्रीकृष्ण की पूजा करें ।

सास कुन्ती की प्रेरणा से द्रौपदी ने,
श्रीकृष्ण की पटरानियों का किया सत्कार,
फिर इसके बाद द्रौपदी ने किया,
अन्य रानियों का भी यथायोग्य सत्कार ।

उधर मयासुर ने भगवान की आज्ञा पा,
युधिष्ठिर के लिए दिव्य सभा बना दी,
कई महीनों रहे श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में,
पाण्डवों ने सराहना की अपने भाग्य की ।

राजसूय यज्ञ और जरासन्ध वध

एक दिन भरी राजसभा में युधिष्ठिर ने,
कहा कि मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता,
उसके द्वारा मैं हे श्रीकृष्ण ! आपका,
और देवताओं[60] का यजन करना चाहता ।

हे कमलनाभ ! आपकी चरण पादुकाएँ,
नष्ट करने वाली समस्त अमंगलों की,
लोक-परलोक मिल जाता उनकी सेवा से,
प्रभु ! पूर्ति कीजिए मेरे इस संकल्प की ।

श्रीकृष्ण बोले, आपका निश्चय उत्तम है,
इससे कीर्ति बढ़ेगी समस्त लोकों में,
सभी प्राणियों का अभीष्ट यह महायज्ञ,
सबको जीत कीजिए पृथ्वी को वश में ।

लोकपालों के अंश से जन्में भाई आपके,
वे सब-के-सब भरे हैं वीरोचित गुणों से,
आप तो परम मनस्वी और संयमी हैं हीं,
मुझे आपने वश में कर लिया सद्गुणों से ।

संसार में कोई बड़े-से बड़ा देवता भी,
तिरस्कार कर नहीं सकता मेरे भक्त का,
फिर इस बात की सम्भावना ही कहाँ,
कि कोई राजा कर दे तिरस्कार उसका ?

भगवान श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर,
युधिष्ठिर का हृदय भर गया आनन्द से,
प्रफुल्लित हो गया उनका मुखमण्डल,
दिग्विजय करें, कहा उन्होंने भाइयों से ।

अपनी शक्ति का संचार कर पाण्डवों को,
और भी प्रभावशाली बना दिया श्रीकृष्ण ने,
अपनी सेना और अन्य वीरों के साथ,
चारों दिशाओं में भेजा भाइयों को उन्होंने ।

जीत लिया उन्होंने उन नरपतियों को,
और बहुत धन दिया उन्होंने लाकर,
लेकिन जरासन्ध पर विजय शेष थी,
इस कारण थोड़े चिंतित थे युधिष्ठिर ।

तब श्रीकृष्ण ने उन्हें उपाय बतलाया,
जो उद्धवजी ने सुझाया था उन्हें,
श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन ब्राह्मण बन,
पहुँचे जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज में ।

[60] देवता-आपके {श्रीकृष्ण के} विभूति स्वरूप देवता ।

अतिथि-अभ्यागतों के सत्कार के समय,
जरासन्ध के पास जा की याचना उससे,
कहा, दूर से आ रहे, अतिथि हैं आपके,
आए हैं यहाँ हम विशेष उद्धेश्य से ।

जो चाहते हम आपसे वह दीजिए,
तितिक्षु पुरुष क्या सह नहीं सकते,
राजा हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव आदि कितने,
अविनाशी पद पा चुके, अपना सर्वस्व दे ।

उनके हाव-भाव और कलाई पर निशान[61] से,
वे क्षत्रिय हैं पहचान लिया जरासन्ध ने,
फिर सोचा मेरे डर से भिक्षा माँग रहे,
चाहे जो भी माँग लें, मैं दूँगा इन्हें ।

दैत्यराज बलि का स्मरण हो आया,
सब ओर फैली हुई है कीर्ति जिनकी,
विष्णु भगवान को पृथ्वी दान कर दी,
यद्दपि शुक्राचार्य ने उसे रोका भी ।

मेरा निश्चय है, यह शरीर नाशवान है,
जो यश न कमाता, जीवन व्यर्थ उसका,
सचमुच जरासन्ध की बुद्धि उदार थी,
कहा, माँग लो जो मन चाहे आपका ।

श्रीकृष्ण बोले, ब्राह्मण नहीं क्षत्रिय हैं,
हम आपसे युद्ध करने के लिए आए,
ये भीम और अर्जुन हैं, और मैं कृष्ण,
हम द्वन्द युद्ध की इच्छा से आए ।

ठठाकर हँस और चिढ़कर वह बोला,
अरे मूर्खों, तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार मुझे,
परन्तु कृष्ण ! तुम तो बड़े डरपोक हो,
भाग गए युद्ध से पीठ दिखाकर मुझे ।

यहाँ तक कि मेरे डर से तुमने,
छोड़ दिया मथुरा नगरी तक को,
भाग कर ली तुमने समुद्र की शरण,
सो तुमसे लड़ना शोभता नहीं मुझको ।

और यह अर्जुन भी कोई योद्धा नहीं,
ऊपर से मुझसे अवस्था में है छोटा,
फिर यह कोई विशेष बलवान भी नहीं,
इससे लड़ना भी मुझे देता नहीं शोभा ।

अब बच रहे बस ये भीमसेन,
ये हैं बलवान और मेरे जोड़ के,
ऐसा कह भीम को दी एक गदा,
और निकल आए वे बाहर नगर के ।

दोनों रणोंन्मत्त वीर अखाड़े में आकर,
करने लगे गदाओं से वज्र सी चोट,
जब दोनों की गदाएँ आपस में टकरातीं,
लगता बिजली कड़कने का हो रहा शोर ।

एक दूसरे के शरीर के अंगों पर,
करने लगे वे दोनों वार-पर-वार,
चकनाचूर होने लगीं गदाएँ उनकी,
तब करने लगे दोनों घूसों से वार ।

ऐसे चोट कर रहे थे घूसें उनके,
मानों गिर रहे हों लौहे के घन,
दोनों एक से बलशाली योद्धा थे,
कोई किसी से नहीं पड़ रहा कम ।

दिन में तो दोनों करते थे युद्ध,
पर रात्रि में दोनों रहते मित्र से,
सत्ताईस दिन बीत गए लड़ते-लड़ते,
पर भीम जीत नहीं पाए जरासन्ध से ।

अट्ठाईसवें दिन भीम बोले कृष्ण से,
युद्ध में जरासन्ध को जीत नहीं सकता,
श्रीकृष्ण जानते थे जरासन्ध का रहस्य,
चमत्कार था यह जरा नामक राक्षसी का ।

[61] धनुष की प्रत्यंचा की रगड़ के चिन्ह ।

उसके शरीर के दो टुकड़ों को जोड़,
जीवनदान दिया था राक्षसी ज़रा ने,
अपनी शक्ति का भीम में संचार कर,
जरासन्ध कैसे मरे, सोचा श्रीकृष्ण ने ।

अबाध है भगवान श्रीकृष्ण का ज्ञान,
सो जरासन्ध के वध का उपाय जानकर,
वृक्ष की एक डाली को ले श्रीकृष्ण ने,
चीर डाला बीचोंबीच से भीम को दिखाकर ।

समझकर उनका अभिप्राय भीमसेन ने,
जरासन्ध को दे मारा धरती पर,
फिर अपने पैर से पैर दबा उसका,
कर डाले उसके दो टुकड़े उसे चीरकर ।

लोगों ने देखा कि जरासन्ध के,
इस प्रकार से दो टुकड़े हो गए,
एक-एक पैर, हाथ, नेत्र और कान,
दोनों टुकड़ों में आधे-आधे हो गए ।

जरासन्ध के पुत्र सहदेव को श्रीकृष्ण ने,
बैठा दिया जरासन्ध के राजसिंहासन पर,
और जो राजा बंदीगृह में बंद थे उन्हें,
स्वतंत्र कर दिया श्रीकृष्ण ने मुक्त कर ।

कैद से छूटे उन राजाओं ने देखा,
स्वयं भगवान श्रीकृष्ण को सामने अपने,
दिव्य चतुर्भुज रूप आलौकिक उनका,
लगे हाथ जोड़ वो उनकी स्तुति करने ।

हे सच्चिदानन्दस्वरूप अविनाशी श्रीकृष्ण !
हाथ जोड़ हम आपको नमस्कार करते,
इस कैद से तो छुड़ा दिया आपने हमें,
अब छुड़ा दीजिए हमें संसार-चक्र से ।

संसार में दुःख का कटु अनुभव कर,
उससे ऊबकर आए हम आपकी शरण,
कोई दोष देखते नहीं हम जरासन्ध का,
उसी के कारण हुआ हमें आपका दर्शन ।

धन-सम्पत्ति के नशे में चूर होकर,
कर रहे थे कैसे-कैसे क्रूर कर्म हम,
आप मृत्युरूप से हमारे सामने खड़े हैं,
करते नहीं थे इसका तनिक विचार हम ।
अति गहन है बलवान काल की गति,
किसी के भी टाले काल टलता नहीं,
कर दिया हमें अब श्रीहीन और निर्धन,
मिट गया घमण्ड, कोई अभिलाषा नहीं ।

कृपा कर हमें वह उपाय बतलाइये,
जिससे आपकी कभी विस्मृति न हो,
सदा आपके चरणों में प्रीति रहे,
चाहे किसी भी योनि में जन्म हो ।

श्रीकृष्ण बोले, तुमने जैसी इच्छा की,
तुम्हारी भक्ति सुदृढ़ होगी अब से,
मन और इन्द्रियाँ अपने वश में कर,
धर्मपूर्वक प्रजा पालन करो अब से ।

उदासीन रह, करो कर्त्तव्य का पालन,
सुख-दुःख सहन करो समभाव से,
अपना मन भलीभांति मुझमें लगाकर,
छूट जाओगे तुम इस भव-बन्धन से ।

फिर उनका यथोचित सत्कार करवा,
भिजवाया उन्हें अपने-अपने देश में,
भगवान के रूप-गुण का चिन्तन करते,
लगे अपनी प्रजा का पालन करने ।

फिर लौट आए वे तीनों इन्द्रप्रस्थ को,
वहाँ पहुँचकर उन्होंने शंखनाद किया,
युधिष्ठिर और प्रजा प्रसन्न हो गयी,
राजसूय यज्ञ का सब साधन बन गया ।

श्रीकृष्ण की अग्रपूजा; शिशुपाल वध

युधिष्ठिर बोले, हे त्रिलोकी के स्वामी !
ब्रह्मा, शंकरादि आपकी आज्ञा को तरसते,
यदि आप उन्हें कुछ आज्ञा करें तो,
बड़ी श्रद्धा से उसे शिरोधार्य करते ।

हे अनन्त ! हम हैं तो अत्यन्त दीन,
पर अपने को भूपति और नरपति मानते,
इस कारण हैं तो हम दण्ड के पात्र,
पर आप हमारी आज्ञा का पालन करते ।

हे सर्वशक्तिमान, कमलनयन, भगवान !
बस नरलीला मात्र है यह आपकी,
जैसे सूर्य के उदय और अस्त होने से,
उसका तेज ना बढ़ता ना होती कमी ।

सभी प्रकार के भेदों से रहित,
आप स्वयं हैं परब्रह्म, परमात्मा,
मेरा-तेरा आपके भक्तों में भी नहीं,
और आप हैं सबके अन्तर्यामी, आत्मा ।

फिर भगवान की अनुमति से उन्होंने,
चयन किया निपुण पुरोहित आदि का,
और द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र,
दुर्योधन, विदुरादि को भी बुलवा भेजा ।

फिर सोने के हल से यज्ञभूमि जुतवाकर,
ऋत्विज ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर को दीक्षा दी,
निमन्त्रण पा ब्रह्मा, शंकरजी और लोकपाल,
आए सभी यक्ष, गन्धर्व, मुनि आदि भी ।

सबकी सहमति से हुआ राजसूय यज्ञ,
तेजस्वी याजकों ने उसे पूरा करवाया,
सोमलता से रस निकालने के दिन,
सदसस्पतियों का पूजन करवाया ।

अब अग्रपूजा[62] पर होने लगा विचार,
पर हो न सका निर्णय सर्वसम्मति से,
तब सहदेव ने सभास्दों के समक्ष कहा,
कोई ज्यादा उचित पात्र नहीं श्रीकृष्ण से ।

समस्त देवताओं के रूप में हैं श्रीकृष्ण,
देश, काल, धन के रूप में भी श्रीकृष्ण,
यह विश्व और यज्ञ भी श्रीकृष्ण का रूप,
अग्नि, आहुति और मन्त्र भी श्रीकृष्ण ।

ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग-ये दोनों भी,
हेतु हैं प्राप्त करने को श्रीकृष्ण,
और कहाँ तक क्या वर्णन किया जाए,
एकरस अद्वितीय ब्रह्म हैं श्रीकृष्ण ।

सभी कारणों के कारण, स्वयं में स्थित,
और सभी भाव-विकारों से रहित हैं श्रीकृष्ण,
उनके ही अनुग्रहों से कर्म सम्पादित होते,
सो एकमात्र अधिकारी अग्रपूजा के श्रीकृष्ण ।

श्रीकृष्ण मात्र की पूजा करने से,
पूजा हो जाती सभी प्राणियों की,
सब प्राणियों, पदार्थों की अंतरात्मा,
कौन बराबरी कर सकता श्रीकृष्ण की ?

यह कहकर तब चुप हो गए सहदेव,
सबने समर्थन किया उनकी बात का,
अग्रपूजा की युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की,
स्वजनों सहित उनके चरणों को पूजा ।

शिशुपाल यह सब देख-सुन रहा था,
श्रीकृष्ण के गुणगान से क्रोधित हो गया,
असहिष्णुता और निर्भयता से भरी सभा में,
श्रीकृष्ण के प्रति कटु बोलने लग गया ।

[62] अग्रपूजा-सदस्यों में से जिसकी सबसे पहले पूजा हो ।

बोला, श्रुतियाँ सत्य ही कहतीं हैं,
काल करा ही लेता है अपना काम,
यहाँ बच्चों और मूर्खों की बात पर,
वयोवृद्ध और ज्ञानी भी दे रहे ध्यान ।

लेकिन सभासदों आप लोग समर्थ हैं,
अग्रपूजा योग्य व्यक्ति को चुनने में,
यहाँ बड़े-बड़े मनस्वी, तपस्वी उपस्थित हैं,
पूजे जाते हैं जो बड़े-बड़े लोकपालों में ।

उन सबको छोड़ यह ग्वाला, कुलकलंक,
कैसे अग्रपूजा का अधिकारी हो सकता,
न कोई वर्ण, आश्रम ना ऊँचे कुल से ये,
वेद उल्लंघन कर मनमाना आचरण करता ।

ययाति ने दे रखा इसके वंश को शाप,
सो सत्पुरुषों ने कर रखा इनका बहिष्कार,
ये सब सदा मधुपान में आसक्त रहते,
मथुरा छोड़ निषिद्ध समुद्र[63] किया स्वीकार ।

सब शुभ नष्ट हो चुका था शिशुपाल का,
बहुत कड़वी बातें सुनायीं श्रीकृष्ण को,
जैसे सिंह सियार की हुआँ- हुआँ नहीं सुनता,
वैसे ही श्रीकृष्ण ने अनसुना किया उसको ।

जिनके लिए यह सुनना असह्य था,
शिशुपाल को कोसते चल दिए बाहर,
तब पाण्डव आदि हथियार ले उठे,
शिशुपाल भी डट गया ललकार कर ।

उन्हें लड़ते-झगड़ते देख श्रीकृष्ण ने,
शिशुपाल का सिर काट दिया चक्र से,
उसके शरीर से एक ज्योति निकलकर,
समा गयी श्रीकृष्ण में सबके देखते ।

शिशुपाल के हृदय में तीन जन्म से,
वैर बढ़ता जा रहा था श्रीकृष्ण के प्रति,
उनमें इस निरन्तर तन्मयता के कारण,
भगवद् पार्षद की मिली उसको गति ।

राजसूय यज्ञ पूरा होने के बाद,
श्रीकृष्ण रुके रहे इन्द्रप्रस्थ में ही,
फिर युधिष्ठिर से अनुमति लेकर,
लौट आए वे अपनी द्वारका नगरी ।

दुर्योधन का अपमान

इस राजसूय यज्ञ में विभिन्न सेवाकार्य,
सहर्ष स्वीकार किए सब स्वजनों ने,
भीम ने भोजनालय, दुर्योधन ने कोषागार,
अतिथियों के पाँव पखारे श्रीकृष्ण ने ।

यज्ञ समाप्त होने पर युधिष्ठिर,
गंगाजी गए यज्ञान्त स्नान करने,
जब वे करने लगे अवभृथ स्नान,
तरह-तरह के बाजे वहाँ लगे बजने ।

नर्तकियाँ नाच रहीं, गवैये गाने लगे,
ब्राह्मण कर रहे मन्त्रों का उच्चारण,
आकाश से हो रही पुष्पों की वर्षा,
और स्तुति कर रहे गन्धर्व आदि गण ।

रंग डाल रहे राजमहिलाओं के ऊपर,
पाण्डवों के ममेरे भाई श्रीकृष्ण और सखा,
वे भी अपने देवरों पर रंग डाल रहीं,
बहुत ही सुन्दर उत्सव का माहौल सजा ।

द्रौपदी के साथ स्नान कर युधिष्ठिर ने,
ऋत्विजों और ब्राह्मणादि की पूजा की,
सभी लोग देवताओं से शोभा पा रहे,
और स्त्रियाँ लग रहीं देवियाँ स्वर्ग की ।

[63] वेदचर्चारहित समुद्र में किला बनाकर रहना ।

युधिष्ठिर के अन्त:पुर की सौन्दर्य-सम्पत्ति,
और यज्ञ से मिली महत्ता को देखकर,
डाह से जलने लगा दुर्योधन का मन,
पर रह गया वो अपना मन मसोस कर ।

मय दानव की बनाई सभा में एक दिन,
विराजमान थे युधिष्ठिर स्वर्ण-सिंहासन पर,
उसी समय भाइयों सहित दुर्योधन आया,
गले में माला, सिर पर मुकुट धारण कर ।

ऐसी कारीगरी करी थी मय दानव ने,
कि दुर्योधन को कुछ भ्रम हो आया,
जल को थल, थल को जल समझ,
उसने विपरीत आचरण अपनाया ।

गिर पड़ा वो जल को स्थल समझ,
तो भीम और राजरानियाँ लगे हँसने,
यद्दपि युधिष्ठिर ने रोकना चाहा,
पर श्रीकृष्ण का अनुमोदन था उन्हें ।

इससे लज्जित हो गया दुर्योधन,
रोम-रोम क्रोध से जलने लगा उसका,
मुँह लटकाकर और सभा से निकल,
चुपचाप रुख किया हस्तिनापुर का ।

सत्पुरुष विचलित हो गए इस घटना से,
कुछ खिन्न हो गया युधिष्ठिर का मन भी,
श्रीकृष्ण चाहते थे पृथ्वी का भार उतारना,
सो यह सब हुआ उन्हीं की इच्छा से ही ।

शाल्व के साथ यदुवंशियों का युद्ध

रुक्मिणी के विवाह के अवसर पर,
शाल्व भी आया था शिशुपाल के साथ,
पर यदुवंशियों ने जीत लिया था उसे,
शिशुपाल और जरासन्ध आदि के साथ ।

उस दिन प्रतिज्ञा की थी शाल्व ने,
मिटा दूँगा यदुवंशियों को पृथ्वी से,
करने लगा वो पशुपति की आराधना,
पेट भरता बस मुठ्ठी भर राख से ।

यों तो भगवान शिव औढर दानी हैं,
पर एक वर्ष में प्रसन्न हुए वे उससे,
कहा उसे मनचाहा वर माँग ले वह,
तो एक अद्भुत विमान माँगा उनसे ।

एक ऐसा विमान जो तोड़ा न जा सके,
देवता, मनुष्य, गन्धर्व, नाग आदि से,
और जहाँ इच्छा हो वहाँ चला जाए,
अत्यन्त भयंकर हो यदुवंशियों के लिए ।

उनकी आज्ञा से मय दानव ने,
एक अद्भुत विमान बनाया लौहे से,
विमान क्या एक नगर ही था वह,
पर छिपा रहता लोगों की नजरों से ।

तब शाल्व द्वारका पर चढ़ बैठा,
सेना ने घेर लिया चारों तरफ से,
नष्ट करने लगे सैनिक नगरी को,
शाल्व शस्त्र बरसाने लगा विमान से ।

उठ खड़ा हुआ जोर का बवंडर,
चारों ओर छा गयी धूल-ही-धूल,
अत्यन्त पीड़ित हो गए द्वारकावासी,
सुख-शान्ति तो जैसे गए वो भूल ।

यह देख प्रद्युम्न तैयार हो निकले,
अन्य यदुवंशी योद्धा थे साथ उनके,
घोर युद्ध हुआ दोनों पक्षों के बीच,
जिसे देख लोगों के खड़े हो रहे रोंगटे ।

काट डाली माया सौभपति शाल्व की,
प्रद्युम्नजी ने अपने दिव्य अस्त्रों से,
उसके सेनापति और स्वयं शाल्व को भी,
घायल कर दिया अपने तीक्ष्ण बाणों से ।

पर शाल्व का विमान अत्यन्त अद्भुत था,
कभी एक कभी अनेक रूप में दिखता,
कभी यहाँ तो कभी किसी और जगह पर,
कभी पृथ्वी पर तो कभी आकाश में दिखता ।

शाल्व का एक मन्त्री था द्युमान जिसे,
प्रद्युम्नजी ने कर दिया था घायल,
उस बलशाली द्युमान ने अपनी गदा से,
कर दिया वीर प्रद्युम्नजी को घायल ।

उन्हें मूर्छित हुआ देखकर सारथि,
युद्धक्षेत्र से उन्हें हटाकर ले आया,
मूर्च्छा टूटने पर कहा प्रद्युम्न ने,
तू मुझे क्यों रणभूमि से ले आया ?

व्यंग करेंगे और कायर समझेंगे,
रणभूमि से पीठ दिखाकर आया,
सारथि ने कहा आप मूर्छित थे,
मैंने तो बस सारथि-धर्म निभाया ।

तब कहा प्रद्युम्न ने वापस ले चल,
ले चल रथ वीर द्युमान के पास,
उसके सामने पहुँच प्रद्युम्नजी ने,
उसे मार पहुँचा दिया यम के पास ।

सत्ताईस दिन तक चलता रहा युद्ध,
तब श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ गए हुए थे,
बड़े-बड़े अपशकुन होते हुए देखकर,
श्रीकृष्ण द्वारका के लिए निकल पड़े ।

द्वारका पहुँच शाल्व को ललकारा उन्होंने,
शाल्व ने शक्ति से प्रहार किया दारुक[64] पर,
लेकिन श्रीकृष्ण ने सौ टुकड़े कर दिए,
आकाश में ही उस शक्ति के, बाण चलाकर ।

फिर सोलह बाण मारे शाल्व को,
विमान भी चलनी कर दिया उसका,
शाल्व ने भी उनकी भुजा में बाण मार,
हाथ से शारंगधनुष गिरा दिया उनका ।

युद्ध देखनेवाले पुकार उठे हाय-हाय,
शाल्व ने ललकार कर कहा कृष्ण से,
शिशुपाल की पत्नी को हर लिया तूने,
मार डाला जब वो असावधान था उसे ।

यदि ठहर गया तू मरे सामने,
मारा जाएगा आज तू मेरे हाथों से,
तब 'बाते नहीं करते वीरता दिखलाते',
बोले कृष्ण कुछ क्रोधित हो शाल्व से ।

किया गदा से उसकी हँसली पर प्रहार,
तो खून उगलता वो लगा काँपने,
तुरन्त अन्तर्धान हो या शाल्व,
और एक दूत कृष्ण के आया सामने ।

बोला, माता देवकी ने भेजा है,
आपके पिता को शाल्व बाँध ले गया,
नरलीला करते उदास हो गए कृष्ण,
कि तभी शाल्व वहाँ प्रकट हो गया ।

वसुदेव से एक माया रचित पुरुष का,
श्रीकृष्ण को दिखा वध कर दिया उसने,
पहले तो कुछ शोक में डूबे श्रीकृष्ण,
फिर समझ गए माया रची थी उसने ।

सचेत होकर जो देखा कृष्ण ने,
ना वह दूत दिखा, ना शरीर पिता का,
उधर देखा तो विमान पर चढ़कर,
शाल्व आकाश में विचर रहा था ।

करने लगा शस्त्रों की वर्षा वो कृष्ण पर,
तब श्रीकृष्ण ने भी उसे घायल कर दिया,
बाण चला उसके कवच और धनुष सहित,
सिर की मणि को छिन्न-भिन्न कर दिया ।

[64] दारुक-भगवान श्रीकृष्ण का सारथि ।

गदा से चोट कर उसके विमान को,
जर्जर कर समुद्र में गिरा दिया उन्होंने,
लेकिन विमान गिरने से पहले ही शाल्व,
कूद गया धरती पर ले गदा हाथ में ।

अपने पर आक्रमण करते देख कृष्ण ने,
शाल्व का हांथ काट गिराया भाले से,
फिर तेजस्वी सुदर्शन चक्र धारण कर,
उसका सिर अलग कर दिया धड़ से ।

दन्तवक्त्र, विदुरथ और रोमहर्षण का वध

करूषनरेश दन्तवक्त्र घनिष्ट मित्र था,
शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रक तीनों का,
चला आया अकेला ही रणभूमि में,
जब जाना कृष्ण ने किया वध उनका ।

बहुत शक्तिशाली, धरती को हिलाता,
श्रीकृष्ण की ओर बढ़ा, ले गदा हाथ में,
श्रीकृष्ण भी गदा ले कूद पड़े रथ से,
और जाकर खड़े हो गए उसके सामने ।

घमण्ड से मतवाले हुए दन्तवक्त्र ने,
कहा, अच्छा हुआ पड़ गए हो मेरे सामने,
मेरे ममेरे भाई हो, मारना तो नहीं चाहिए,
पर मेरे मित्रों को मार खड़े हो मुझे मारने ।

सो आज इस सबका दण्ड दूँगा तुम्हें,
चूर-चूर कर डालूँगा तुम्हें अपनी गदा से,
मेरे सम्बन्धी हो लेकिन हो तो शत्रु ही,
बहुत प्रेम करता था मैं अपने मित्रों से ।

फिर बड़े जोर का प्रहार किया सिर पर,
लेकिन फूल सा सह लिया उसे कृष्ण ने,
फिर अपनी कौमोदकी गदा सम्हालकर,
किया उसकी छाती पर प्रहार कृष्ण ने ।

खून उगलते निष्प्राण हो गया दन्तवक्त्र,
एक ज्योति निकल समा गयी कृष्ण में,
उसके मरने पर उसका भाई विदुरथ,
आ डटा ले ढाल-तलवार हाथ में ।

यह देख कि वह प्रहार करना ही चाहता,
चक्र से सिर काट दिया कृष्ण ने उसका,
शाल्व, दन्तवक्त्र और विदुरथ को मार,
श्रीकृष्ण निष्कण्टक हो लौटे द्वारका ।

जब कौरव और पाण्डव लड़ने को थे,
बलरामजी चाहते थे निष्पक्ष रहना,
सो तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े वो,
बहुत से तीर्थस्थलों में हुआ ठरहना ।

प्रभास क्षेत्र से प्रारम्भ कर बलरामजी,
पहुँच गए नैमिषारण्य क्षेत्र अन्त में,
सत्संग-सत्र में व्यस्त थे ऋषि-मुनि,
स्वागत किया बलरामजी का उन्होंने ।

भगवान व्यास के शिष्य रोमहर्षण,
बैठे हुए थे उस समय व्यास गद्दी पर,
यद्दपि वे सूत जाति में जन्में थे,
पर बैठे थे ब्राह्मणों से ऊँचे आसन पर ।

रोमहर्षण ने बलरामजी के आने पर,
उठकर स्वागत किया ना उनका,
ना ही किया प्रणाम हाथ जोड़कर,
ना और कैसे भी अभिवादन उनका ।

बलरामजी को क्रोध आ गया,
बोले मृत्युदण्ड का पात्र है ये,
प्रतिलोम जाति का होने पर भी,
ब्राह्मणों और हमसे[65] ऊपर बैठा ये ।

[65] श्रेष्ठ ब्राह्मणों और धर्म के रक्षक वे स्वयं ।

इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि का,
अध्ययन किया है इस व्यास-शिष्य ने,
पर सयंम नहीं इसका अपने मन पर,
मान रखा बड़ा पण्डित अपने को इसने ।

करते जो धर्म का चिन्ह धारण,
पर पालन नहीं जो धर्म का करते,
वे तो और भी अधिक पापी हैं,
मेरे लिए वे योग्य वध करने के ।

यद्दपि तीर्थयात्रा के निश्चय के कारण,
वे अलग हो गए थे दुष्टों के वध से,
फिर भी इतना कहकर बलरामजी ने,
*मार दिय उन्हें कुश की नोक से ।

हाहाकार मच गया ऋषि-मुनियों में,
बोले, यह बड़ा अधर्म कर दिया आपने,
हमनें ही उन्हें सत्रान्त तक आयु दी थी,
इस आसन पर भी उन्हें बैठाया हमनें ।

हम लोग मानते हैं कि आप योगेश्वर हैं,
वेद भी आप पर शासन कर नहीं सकता,
आपके हाथों हुई इस ब्रह्महत्या का,
स्वेच्छा से प्रायश्चित देगा सबको शिक्षा ।

उनका आदेश मान बलरामजी बोले,
आप जो चाहें मैं हूँ तैयार करने को,
लंबी आयु, बल, इन्द्रिय शक्ति आदि,
अपने योगबल से दे सकता हूँ इनको ।

फिर बलरामजी ने ही उपाय सुझाकर,
रोमहर्षण के पुत्र को दी जगह उनकी,
दीर्घायु, इन्द्रियशक्ति और बल दे उसे,
पूछा कैसे पूरी हो बात प्रायश्चित की ?

ऋषियों ने कहा, इल्वल का पुत्र बल्वल,
भयंकर दानव, हमारा सत्र नष्ट कर देता,
आप उसे मार, बारह मास तीर्थ कीजिए,
यह प्रायश्चित आपको शुद्ध कर देगा ।

बल्वल का उद्धार और तीर्थयात्रा

अंधड़ चलने लगा पर्व का दिन आने पर,
बल्वल करने लगा मल आदि की वर्षा,
सारे आश्रम को दूषित कर दिया उसने,
फिर त्रिशूल लिए स्वयं प्रकट हो गया ।

बड़ा विकराल था उसका डील-डौल,
और बहुत भयावना था चेहरा उसका,
हल और मूसल याद किए बलरामजी ने,
और मूसल से वध कर दिया उसका ।

प्रसन्न हो स्तुति कर मुनियों ने,
दिव्य वस्त्र और आभूषण दिए उन्हें,
और कभी न मुरझाने वाले कमलों की,
एक दिव्य वैजयन्ती माला दी उन्हें ।

अनेक पवित्र नदियों में स्नान करते,
विधिपूर्वक तीर्थों में तर्पण अदि करते,
बालाजी और कन्याकुमारी के किए दर्शन,
अगस्त्य मुनि का आशीर्वाद प्राप्त करके ।

और आगे भी करते रहे वे भ्रमण,
फिर लौटकर आ गए प्रभासक्षेत्र में,
वहाँ ब्राह्मणों से सुना कि बहुत क्षत्रिय,
मारे गए कौरव और पाण्डवों के युद्ध में ।

ऐसा अनुभव किया उन्होंने जैसे कि,
उतर गया हो पृथ्वी का बहुत सा भार,
भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध रोकने,
उसी दिन बलरामजी गए कुरुक्षेत्र पधार ।

चारों पाण्डव भाई और भगवान श्रीकृष्ण,
चुप हो रहे उस समय वहाँ देखकर उन्हें,
वे डरते हुए सोचने लगे मन-ही-मन में,
ना जाने बलरामजी क्या लगें कहने ?

भीम और दुर्योधन को गदायुद्ध करते देख,
बोले, तुम वीर और समान हो बल-पौरुष में,
भीमसेन दुर्योधन से बल में अधिक है,
और शिक्षा में अधिक दुर्योधन गदायुद्ध में ।

इसलिए किसी एक की जय, पराजय,
होती नहीं दिख रही इस युद्ध में,
सो बंद कर दो अब यह युद्ध तुम,
और उलझो नहीं व्यर्थ के झगड़े में ।

लेकिन इतना गहरा था उनका वैरभाव,
कि मानी नहीं बलरामजी की बात उन्होंने,
यह सोच कि उनका प्रारब्ध एसा ही है,
द्वारका लौटने का निश्चय किया उन्होंने ।

द्वारका से फिर नैमिषारण्य चले गए वो,
ऋषियों ने सब प्रकार के यज्ञ कराए उनसे,
बलरामजी ने ऋषियों को तत्त्व-ज्ञान दिया,
फिर लौट आए द्वारका बलरामजी वहाँ से ।

सुदामाजी द्वारका में

परम मित्र थे ब्राह्मण सुदामा श्रीकृष्ण के,
ब्रह्मज्ञानी, शान्त और विरक्त विषयों से,
गृहस्थ होने पर भी संग्रह-परिग्रह नहीं,
प्रारब्धवश जो मिल जाए संतुष्ट उसी से ।

उनकी पत्नी भी थी उंनसी ही साध्वी,
गुजारा कर रहीं थीं बड़ी निर्धनता में,
एक दिन कहा श्रीकृष्ण आपके मित्र हैं,
आग्रह किया जाएँ आप उनसे मिलने ।

कहा, वे ब्राह्मणों के परम भक्त हैं,
और एकमात्र आश्रय साधु-संतों के,
जब जानेंगे अन्न बिना जीवन जी रहे,
तो तुरन्त कष्ट हर लेंगे वे आपके ।

इतने उदार हैं वे लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण,
कि भक्तों को दे देते स्वयं तक को,
फिर इसमें कौन सी आश्चर्य की बात,
कि दे दें वे तुच्छ भौतिक सुख उनको ?

जब बार-बार आग्रह किया पत्नी ने,
सोचा, धन की कोई ऐसी बात नहीं,
मिलेंगे श्रीकृष्ण के दर्शन इस बहाने,
जीने का तो है सच्चा लाभ यही ।

यह सोच निश्चय किया जाने का,
कहा भेट के लिए कोई वस्तु दे दें,
माँग लायी कुछ चिउड़ा पड़ोसियों से,
बाँध दे दिया एक कपड़े में उन्हें ।

द्वारका पहुँच अन्य ब्राह्मणों के साथ,
तीन छावनियाँ, तीन ड्योढ़ियाँ पार कर,
एक महल में जा पहुँचे विप्र सुदामा,
बहुत आनन्दित हुए वे वहाँ पहुँचकर ।

सजा-धजा रुक्मिणीजी का महल था वो,
श्रीकृष्ण विराजे थे वहाँ एक पलंग पर,
जैसे ही उनकी दृष्टि सुदामा पर पड़ी,
भुजपाश में बाँध लिया उन्हें दौड़कर ।

प्रेमाश्रु बहने लगे आँखों से उनकी,
ले जाकर बैठाया अपने पलंग पर,
पूजन कर और उनके पाँव पखार,
चरणोंदक धारण किया सिर पर ।

उनके कृशकाय और मलिन शरीर पर,
लेप लगाया चन्दन, केसर आदि का,
भली-भांति सत्कार किया श्रीकृष्ण ने,
रुक्मिणीजी चँवर डुला कर रहीं सेवा ।

फिर श्रीकृष्ण सुदामा का हाथ पकड़,
करने लगे गुरुकुल के दिनों की चर्चा,
बोले विषय-भोग में आप आसक्त नहीं,
धन आदि से भी आपका नहीं वास्ता ।

विरले ही जगत में होते हैं ऐसे,
त्याग कर देते हैं जो विषयों का,
तनिक भी वासना न रहने पर भी,
लोकशिक्षा हेतु पालन करते कर्म का ।

साथ निवास करते थे गुरुकुल में हम,
होता हैं वहीँ ज्ञातव्य वस्तुओं का ज्ञान,
अज्ञान अन्धकार से जो पार कर देता,
गुरु से ही मिलता है वह सच्चा ज्ञान ।

जन्मदाता पिता प्रथम गुरु मनुष्य का,
उपनयन संस्कार करने वाला दूसरा गुरु,
ज्ञानोपदेश कर परमात्मा मिलाने वाला,
मेरा स्वरूप ही होता है वह तीसरा गुरु ।

ना गृहस्थ के धर्म पञ्चमहायज्ञ से,
ना ब्रह्मचारी के वेदाध्ययन आदि से,
सन्यास से भी इतना सन्तुष्ट नहीं होता,
जितना होता मैं गुरु की सेवा-शुश्रूषा से ।

ईंधन लाने वन गए थे एक दिन हम,
घिर गए थे हम वहाँ आँधी-तूफ़ान से,
प्रातःकाल गुरुदेव हमें ढूँढते हुए आए,
बहुत प्रसन्न हुए थे वे हम दोनों से ।

सुदामा बोले, कुछ करना बाकी न हमें,
गुरुकुल में रहे हम जो आपके साथ,
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरुषार्थ,
सब आप से हैं, हमें हो गए प्राप्त ।

श्रीकृष्ण जानते हैं सब के मन की बात,
हँसकर बोले, घर से क्या लाए मेरे लिए,
मेरे भक्त जरा सा भी जो अर्पण करते,
वही थोडा सा, बहुत हो जाता मेरे लिए ।

भगवान श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर भी,
लज्जावश सुदामा चिउड़ा दे ना सके,
तब सब जानने वाले उन अन्तर्यामी ने,
खुद ही वह चिउड़ा ले लिया छीन के ।

बोले, लाए हो यह अत्यन्त प्रिय भेंट,
सारे संसार को तृप्त करने को पर्याप्त,
ऐसा कह वे उसकी एक मुठ्ठी खा गए,
दूसरी पर रुक्मिणीजी ने रोक लिया हाथ ।

बोलीं, इस लोक और परलोक की सम्पदा,
यह एक मुठ्ठी चिउड़ा बहुत उसके लिए,
आप तो भूखे हैं बस भक्त के प्रेम-भाव के,
इतना ही बहुत आपकी प्रसन्नता के लिए ।

उस रात सुदामा महल में ही रहे,
उन्हें लगा जैसे वो हों बैकुण्ठ में,
प्रत्यक्ष में भगवान से कुछ ना मिला,
फिर भी कुछ नहीं माँगा उन्होंने ।

कुछ लज्जित से अपने चित्त पर वे,
दर्शन का आनन्द मन में मनाते चले,
उनकी ब्राह्मण भक्ति मैंने देख ली,
मुझ अकिंचन को लगा लिया गले ।

कहाँ तो मैं अत्यन्त पापी और दरिद्र,
कहाँ वे लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण भगवान,
बाँध लिया मुझे अपने भुजपाश में,
अपने पलंग पर सुलाया भाई समान ।

उनकी पटरानी रुक्मिणीजी ने स्वयं,
चँवर डुलाकर अपने हाथों मेरी सेवा की,
पाँव दबाए देवताओं के अराध्य देव ने,
और देवताओं के समान मेरी पूजा की ।

स्वर्ग, मोक्ष, सम्पत्ति और योगसिद्धियाँ,
सब मिलता उनकी चरणों की पूजा से,
मुझे दयालु ने थोड़ा-सा भी धन न दिया,
कि कहीं मतवाला हो, भूल बैठे ना मुझे ।

ऐसा सोचते-सोचते ब्राह्मण देव सुदामा,
अपने घर के निकट पहुँच रह गए चकित,
वह स्थान रत्न-निर्मित महलों से घिरा था,
वन-उपवन बने ठौर-ठौर चित्र-विचित्र ।

वे सोच ही रहे थे कि कहाँ आ गए,
कि तभी लोग आ गए अगवानी करने,
पति का आना सुन, उनकी पत्नी भी,
बाहर निकल आई उनका स्वागत करने ।

देवांगनाओं सी सुन्दर, दासियों से घिरी,
विस्मित रह गए, पत्नी को देखकर,
हाथ पकड़ उन्हें भीतर ले गयीं वे,
अत्यन्त भव्य महल बन गया था घर ।

मणियों के खंभे, हाथीदाँत के पलंग,
सोने के सिंहासनों से सजा था घर,
पन्ने की पच्चीकारी की गई हुई थी,
स्फटिकमणि से बनी हुई दीवारों पर ।

सोचने लगे अत्यन्त दीन और दरिद्र हूँ मैं,
अवश्य फल है यह श्रीकृष्ण की कृपा का ही,
याचक का भाव जान सब-कुछ दे देते,
समझते थोड़ा, सो सामने कुछ कहते नहीं ।

बहुत ही उदार हैं मेरे सखा श्रीकृष्ण,
देते हैं बहुत पर उसे थोड़ा ही मानते,
और भक्त उनके लिए ज़रा भर कर दे,
तो उस तिल को भी पहाड़ जैसा जानते ।

एक मुठ्ठी चिउड़ा स्वीकार कर उन्होंने,
तीनों लोकों का मुझे ऐश्वर्य दे दिया,
लेकिन मेरा प्रेम उनमें ही दृढ़ हो,
प्रेमी भक्तों का सत्संग सदा-सर्वदा ।

त्यागपूर्वक अनासक्त भाव से सुदामा,
जीवन बिताने लगे, श्रीकृष्ण को यादकर,
कट गयी उनकी अविद्या की गाँठ,
भगवद्धाम प्राप्त किया समय आने पर ।

गोप-गोपियों से भेंट

एक बार सर्वग्रास सूर्यग्रहण लगने पर,
पुण्य उपार्जन करने सब कुरुक्षेत्र में आए,
जहाँ पृथ्वी क्षत्रियहीन कर परशुरामजी ने,
राजाओं के रुधिर से पाँच कुण्ड बनाए ।

बहुत लोग आए वहाँ इस अवसर पर,
वसुदेव, उग्रसेन आदि यदुवंशी भी आए,
विधिविधान से पूजा, दान आदि कर,
सब ने वहीँ पर अपने डेरे जमाए ।

नन्द आदि गोप और गोपियाँ भी,
लालायित थे श्रीकृष्ण से मिलने को,
कुन्ती वसुदेव आदि मिले स्वजनों से,
सब दुःख भूल गए वे देख कृष्ण को ।

यदुवंशियों ने सम्मान किया नरपतियों का,
और वे लगे उग्रसेन आदि की प्रशंसा करने,
जिन भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन दुर्लभ है,
नित्य-निरन्तर वे रहते उनके संग में ।

जब नन्दबाबा अदि मिले उनसे,
प्रेम के अतिरेक से हृदय भर आया,
कंस का सताना, बच्चों को बचाना,
वसुदेवजी को सब स्मरण हो आया ।

कृष्ण और बलराम को हृदय से लगा,
नन्द-यशोदा का सब दुःख मिट गया,
रोहिणी और देवकी ने यशोदाजी से कहा,
आपने ही इन्हें माँ का प्यार-दुलार दिया ।

तन्मय हो गयीं गोपियाँ, कृष्ण को देख,
उनके अनन्य प्रेम में मग्न हो गयीं,
श्रीकृष्ण ने दिया उन्हें वह ज्ञानोपदेश[66],
जिसका स्मरण कर वे तद्रूप हो गयीं ।

श्रीकृष्ण की पटरानियों से द्रौपदी का मिलन

युधिष्ठिर से कुशल-मंगल पूछने लगे कृष्ण,
अत्यन्त आनन्दित हो युधिष्ठिर बोले उनसे,
आपके चरणारविन्द समस्त आनन्द के सोत्र,
समस्त पाप-ताप मिट जाते इनके दर्शन से ।

इधर द्रौपदी मिलीं श्रीकृष्ण की रानियों से,
कैसे विवाह हुआ श्रीकृष्ण से पूछा उनसे,
रुक्मिणी अदि पटरानियों ने बतलाया.
कैसे श्रीकृष्ण ने विवाह किया उनसे ।

लक्ष्मणाजी बोलीं वे चाहती थीं कृष्ण को,
यह जान पिता ने मेरा स्वयंवर रचाया,
ढके हुए मत्स्य की जल में परछाई देख,
श्रीकृष्ण ने बाण से वेध नीचे गिराया ।

आ डटे अन्य राजा युद्ध करने को,
श्रीकृष्ण मुझे रथ पर चढ़ा ले चले,
हाँक दिया रथ दारुक ने द्वारका को,
सिंह श्वानों से अपना भाग ले चले ।

अन्य पत्नियों की ओर से बोलीं रोहिणीजी,
बंदी बना कर रक्खा था हमें भौमासुर ने,
पूर्णकाम होने पर भी हमें वहाँ से छुडाया,
भौमासुर को मार, हमें अपनाया कृष्ण ने ।

वसुदेवजी का यज्ञोत्सव

तभी वहाँ बहुत से ऋषि-मुनि आ गए,
सबने विधिपूर्वक पूजन आदि किया उनका,
श्रीकृष्ण बोले सफल हुआ हमारा जीवन,
दर्शन मिला आपसे दुर्लभ ऋषि-मुनियों का ।

केवल जलमय तीर्थ, तीर्थ नहीं होते,
ना केवल प्रतिमाएँ ही होतीं देवता,
संतों का दर्शन तुरन्त कृतार्थ कर देता,
वे ही वास्तव में तीर्थ और देवता ।

देवताओं की उपासना करने पर भी,
होता नहीं पूरी तरह नाश पाप का,
क्योंकि उनकी उपासना करने से,
होता नहीं नाश भेद-बुद्धि का ।

लेकिन ज्ञानी महापुरुषों की सेवा,
गर कोई कर लेता थोड़ी सी भी,
मिटा देते हैं वे सारे पाप-ताप,
क्योंकि हर लेते वे भेद-बुद्धि भी ।

समझते जो शरीर को ही आत्मा,
और स्वजनों को ही मात्र अपना,
ज्ञानी महापुरुषों को मान नहीं देते,
व्यर्थ पशु से उन्हें श्रेष्ठ समझना ।

समझ सके न भगवान क्या कह रहे,
व्यवहार कर रहे कर्म-परतंत्र जीव सा,
लोक-संग्रह के लिए कहा समझकर,
भगवान श्रीकृष्ण से मुस्कुराकर कहा ।

[66] समस्त पदार्थों के आदि, अन्त और बीच में, उनके बाहर-भीतर, मैं (श्रीकृष्ण) ही हूँ; प्राणियों के शरीर और जीव से परे मैं अविनाशी सत्य हूँ । ये दोनों मेरे ही अंदर प्रतीत हो रहे हैं, ऐसा अनुभव करो । इस उपदेश के बारम्बार स्मरण से उनका जीवकोश-लिंगशरीर नष्ट हो गया और वे भगवान को प्राप्त हो गयीं ।

मोहित हो रहे हम आपकी माया से,
अपने को छिपा, जीव सा आचरण कर रहे,
एक ओर चेष्टाहीन होने पर भी आप,
अनेक रूप धर, सृष्टि-संहार आदि कर रहे ।

पर लिप्त नहीं होते आप कर्मों से,
यह आपकी लीला नहीं तो और क्या,
अपना सत्वमय विग्रह प्रकट कर करते,
दुष्टों का दमन और भक्तों की रक्षा ।

वैदिक ज्ञान आपका निर्मल हृदय स्वरूप,
तपस्या आदि से होता साक्षात्कार आपका,
ब्राह्मण ही समझ सकते सत्यता आपकी[67],
इसलिए उन्हें सदैव प्राप्त आदर आपका ।

आप सर्वविध कल्याण की चरम सीमा,
और एकमात्र गति हैं संत-पुरुषों की,
आपके दर्शन से आज हम कृतार्थ हुए,
वास्तव में सबका सर्वोपरि लक्ष्य है यही ।

हे प्रभो ! आपका ज्ञान अनन्त है,
सच्चिदानन्दस्वरूप, परमात्मा, भगवान,
छिपा रखी योगमाया से अपनी महिमा,
हे प्रभो ! हम आपको करते प्रणाम ।

जैसे स्वप्न देखने वाला समझता,
स्वप्न में जो देख रहा सत्य उसको,
जितनी देर वो स्वप्न देखता होता,
भूला रहता है वह इस जगत को ।

वैसे ही जाग्रत में माया से मोहित[68] चित्त,
भटकने लगता है नाममात्र के विषयों में,
और विवेक शक्ति के दूषित हो जाने से,
आपको भूला रहता वो अपने चित्त में ।

बड़े-बड़े ऋषि-मुनि धारण करते हैं,
आपके चरणकमलों को अपने हृदय में,
यह हमारे बड़े सौभाग्य की बात है,
कि आज उन्हीं चरणों के दर्शन हुए हमें ।

ऐसे स्तुति कर जब वे सब लौटने लगे,
तब वसुदेवजी ने प्रार्थना करी उनसे,
कर्मों और कर्मवासनाओं से मुक्ति मिले,
ऐसे कर्म का आप उपदेश दीजिए मुझे ।

नारदजी बोले, इसमें कोई आश्चर्य नहीं,
कि श्रीकृष्ण को अपना बालक समझकर,
पूछ रहे हमसे वे अपने कल्याण का मार्ग,
निकट की चीज अक्सर आती नहीं नजर ।

जैसे गंगा तट पर रहने वाला पुरुष,
जाता अन्य तीर्थों में गंगा को छोड़कर,
वैसे ही वसुदेवजी पूछ रहे हैं हमसे,
स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण के निकट होकर ।

सृष्टि, संहार, पालन आदि क्रियाओं से,
प्रभावित नहीं होता ज्ञान श्रीकृष्ण का,
ढक लेते वे स्वयं को अपनी शक्तियों से,
जैसे बादलों के पीछे सूर्य छिप जाता ।

फिर सबके सामने वे कहने लगे उनसे,
यज्ञादि से भगवान विष्णु की करें अराधना,
चित्त-शान्ति और मोक्ष का सर्वोत्तम उपाय,
द्विजाति[69] गृहस्थों के लिए सर्वोत्तम साधना ।

यज्ञ, दान आदि द्वारा धन की इच्छा,
गृहस्थोचित भोगों से इच्छा स्त्री-पुत्र की,
स्वर्गादि भोग भी काल के अधीन जान,
त्याग देनी चाहिए लोकैषनाएँ सभी ।

[67] तत्वज्ञान को प्राप्त लोग ही आपके अप्राकृत रूप की सत्यता को समझ सकते हैं ।

[68] इन्द्रियों की प्रवृत्तिरूप माया से मोहित चित्त ।

[69] द्विजाति-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ।

जन्म लेते ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य,
देवता, ऋषि और पितरों का ऋण लेकर,
उसका पतन, जो उऋण नहीं होता इनसे,
यज्ञ, विद्याध्ययन और सन्तानोत्पत्ति कर ।

मुक्त हो चुके हैं, हे वसुदेवजी ! आप,
अब तक ऋषि और पितरों के ऋण से,
अब यज्ञों द्वारा देवताओं का ऋण चुका,
गृहत्याग कर, जुड़ जाइए प्रभु चरणों से ।

तब ऋत्विजों का चयन कर वसुदेवजी ने,
विधिपूर्वक अनेक यज्ञ किए वहीं पर,
समस्त यदुकुल अत्यन्त शोभायमान हुआ,
वसुदेवजी कृतार्थ हुए यज्ञ सम्पन्न कर ।

स्वागत-सत्कार किया वसुदेवजी ने सबका,
और नन्दबाबा से बड़े स्नेह से मिले,
बोले, चुका नहीं सकते हम आपका ऋण,
हमारा सौभाग्य हमें आपसे मित्र मिले ।

सखा वसुदेवजी को प्रसन्न करने के लिए,
और कृष्ण-बलराम के प्रेमपाश में बंधकर,
तीन महीनों तक वहीँ रुके रहे नन्दबाबा,
फिर विदा किया उन्हें अनेकानेक भेंटें देकर ।

वसुदेवजी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश

एक दिन श्रीकृष्ण और बलराम दोनों ने,
जब नित्य प्रणाम किया माता-पिता को,
उनका अभिनन्दन कर वसुदेवजी कहने लगे,
मैं जान गया हूँ कि तुम दोनों कौन हो ।

मैं जानता हूँ कि सनातन हो तुम दोनों,
सारे जगत के साक्षात् कारणस्वरूप प्रधान,
पुरुष के भी नियामक परमेश्वर हो तुम,
महायोगीश्वर संकर्षण और श्रीकृष्ण भगवान ।

जगत के आधार, निर्माता, निर्माणसामग्री,
और सारे जगत के स्वामी हो तुम दोनों,
तुम्हारी क्रीड़ा हेतु ही निर्माण हुआ इसका,
जिस रूप में, जैसे रहता, सब तुम दोनों ।

प्रकृतिरूप से भोग्या, पुरुषरूप से भोक्ता,
और दोनों से परे, नियामक हो दोनों के,
जन्म, अस्तित्व आदि भावविकारों से रहित,
चला रहे जगत, आत्मरूप से प्रवेश[70] करके ।

इस जगत में जिसकी जो भी सामर्थ्य है,
वह उसकी नहीं, वह सामर्थ्य है तुम्हारी[71],
केवल चेष्टा होती चेष्टाशील प्राण आदि में,
उनमें शक्ति नहीं, शक्ति तो है तुम्हारी ।

जिस भी वस्तु में जो भी गुण है,
वे सब गुण वास्तव में तुम्हीं हो,
और जिस वस्तु में जो शक्ति है,
वह शक्ति भी वास्तव में तुम्हीं हो ।

दिशाएँ और उनका अवकाश भी तुम हो,
आकाश और उसका आश्रयभूत स्फोट[72] भी,
इन्द्रियाँ, उनकी विषय-प्रकाशिनी शक्ति,
और तुम्हीं जीव की विशुद्ध स्मृति भी ।

तामस, तैजस और सात्विक अहंकार,
जीवों के आवागमन का कारण माया भी,
और जितने भी विनाशमान पदार्थ हैं,
उनमें तुम कारणरूप से तत्त्व अविनाशी ।

---

[70] जगत में आत्मरूप से प्रवेश कर प्राण (क्रियाशक्ति) और जीव (ज्ञानशक्ति) के रूप में इसका पालन-पोषण कर रहे हो ।

[71] क्रियाशक्ति प्रधान प्राण आदि में जो जगत की वस्तुओं की सृष्टि करने की सामर्थ्य है, वह उनकी नहीं क्योंकि वे चेतन नहीं अचेतन हैं, स्वतंत्र नहीं परतंत्र हैं ।

[72] स्फोट-शब्दतन्मात्रा, नाद ।

त्रिगुण और उनकी वृत्तियाँ-महतत्त्वादि,
योगमाया द्वारा कल्पित हैं तुममें,
सो जन्म आदि जितने भाव-विकार हैं,
ये विकार सर्वथा ही नहीं हैं तुममें ।

जब कर ली जाती तुममें इनकी कल्पना,
तब तुम इनमें अनुगत जान पड़ते हो,
और कल्पना की निवृत्ति हो जाने पर,
निर्विकल्प परमार्थस्वरूप तुम रह जाते हो ।

यह जगत प्रवाह है तीनों गुणों का,
देह, सुख-दुःख अदि सब कार्य उन्हीं के,
इनमें तुम्हारा सूक्ष्मरूप न जानने से,
देहाभिमानी कर्म-बंधन से बँधते रहते ।

अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर मिला मुझे,
पर मैं परमार्थ से हो गया असावधान,
बीत गयी मेरी यह आयु बस यों ही,
अब कृपा करो मुझ पर, हे भगवान !

प्रसव-गृह में ही आपने मुझसे कहा था,
तुम से जन्म लेता हूँ मैं हर युग में,
अजन्मा हूँ, पर धर्म-मर्यादा की रक्षा हेतु,
मैं अवतार ग्रहण करता हूँ हर युग में ।

अनेकों शरीर ग्रहण करते, छोड़ते रहते,
पर वास्तव में अनन्त, एकरस सत्ता हो,
कौन जान सकता योगमाया को तुम्हारी,
गाते रहते सब लोग तुम्हारे ही यश को ।

मुस्कुराकर विनय से झुक श्रीकृष्ण,
बोले हम तो बस हैं पुत्र ही आपके,
हमें लक्ष्य कर आपने ब्रह्मज्ञान दिया,
हम आपकी बातें युक्तियुक्त मानते ।

आप, भैया, मैं और समस्त चराचर,
आपने जैसा कहा सब हैं वैसे ही,
समझना चाहिए सबको ब्रह्मस्वरूप,
सब में जो आत्मा है, वो है एक ही ।

गुणों की सृष्टि कर लेता स्वयं में,
एक होने पर भी अनेक भासता,
स्वयं प्रकाश होने पर भी दृश्य,
नित्य होने पर भी अनित्य लगता ।

जैसे अपने कार्य से पञ्चमहाभूतों[73] में,
बड़े-छोटे, थोडा-अधिक की होती प्रतीति,
उसी प्रकार ही उपाधियों के भेद से,
आत्मा में नानात्वकी होती प्रतीति ।

इसलिए जो मैं हूँ, वही और सब हैं,
ठीक है आपका कहना, इस दृष्टि से,
यह सुन वसुदेवजी निसंकल्प हो गए,
आनन्दमग्न हो, हो गए मौन वाणी से ।

वहीँ बैठीं देवकीजी ने सुना हुआ था,
मरे गुरुपुत्र की वापसी के विषय में,
अब उन्हें उन पुत्रों की याद आ गयी,
जन्मते ही जिन्हें मार डाला कंस ने ।

बोलीं, जानती हूँ तुम आदिपुरुष नारायण हो,
भूमि का भार उतारने को लिया अवतार,
तुम्हारे पुरुषरूप अंश से उत्पन्न माया से,
होता है सत्त्व, रज, तम, त्रिगुणों का उभार ।

मरे पुत्र को वापस ला गुरुदक्षिणा दी,
योगीश्वरों के भी ईश्वर हो तुम दोनों,
मेरी अभिलाषा है, कंस ने जिन्हें मारा,
भर आँख देख लूँ मेरे उन पुत्रों को ला दो ।

---

[73] पञ्चमहाभूत-आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी अपने कार्य घट, कुण्डल आदि में प्रकट, अप्रकट, बड़े-छोटे, अधिक-थोड़े, एक और अनेक से प्रतीत होते हैं, पर वास्तव में वे एक ही रहते हैं ।

माता देवकी की यह बात सुनकर,
दोनों भाई गए सुतल लोक में,
दैत्यराज बलि सिर चरणों में रख,
भगवान की स्तुति कर लगे कहने ।

हे बलरामजी ! महान और अनन्त हैं आप,
शेष आदि सभी विग्रह हैं अन्तर्भूत आपके,
हे श्रीकृष्ण ! आप सकल जगत के सृष्टा,
प्रवर्तक ज्ञान और भक्तियोग दोनों के ।

दुर्लभ हैं आपके दर्शन प्राणियों के लिए,
उसपर भी हम रजोगुण, तमोगुण प्रधान,
प्रेम तो दूर, हम सदा वैर-भाव ही रखते,
पर आपका स्मरण कर देता कल्याण ।

कृपा कीजिए कि अब मेरी चित्त वृत्ति,
लगी रहे सदा आपके चरणकमलों में,
अब हमें आज्ञा देकर निष्पाप बनाइये,
तर जाते वे जो रहते आपकी आज्ञा में ।

श्रीकृष्ण ने कहा, स्वायम्भुव मन्वंतर में,
प्रजापति मरीचि के छः देवता-पुत्र हुए,
ब्रह्माजी पर हँसने से मिले शाप के कारण,
असुर योनि में हिरण्यकशिपु के पुत्र हुए ।

अब योगमाया ने उन्हें वहाँ से लाकर,
रखा एक-एक कर देवकी के गर्भ में,
जन्मते ही मार डाला कंस ने उनको,
और अब वे सब हैं तुम्हारे पास में ।

माता देवकी का शोक दूर करने के लिए,
ले जाएँगे उन सबको हम यहाँ से,
फिर चले जाएँगे वे अपने लोक में,
मुक्त हो जाएँगे ब्रह्माजी के शाप से ।

पूजा की बलि ने कृष्ण-बलराम की,
द्वारका आ गए वे बालकों को लेकर,
माता देवकी भाव-विह्वल हो गयी,
गद्गद् हो गयीं उन्हें छाती से लगाकर ।

दुग्धपान कर माता देवकी का,
और श्रीकृष्ण का अंगस्पर्श पाकर,
चले गए वे बालक देव-लोक को,
भगवद् कृपा से आत्मसाक्षात्कार कर ।

सुभद्रा-हरण; श्रीकृष्ण का एक साथ दो स्थान पर जाना

अर्जुन ने सुना कि बलरामजी चाह रहे,
सुभद्रा[74] का विवाह करा दें दुर्योधन से,
पर वसुदेव और कृष्ण सहमत नहीं थे,
अर्जुन ने चाहा विवाह करना उनसे ।

त्रिदण्डी वैष्णव का वेष धारण कर,
वर्षा ऋतु में अर्जुन रहे द्वारका में,
बलरामजी ने खूब किया सम्मान,
पर ये अर्जुन है, पता चला ना उन्हें ।

एक दिन जब अर्जुन थे निमन्त्रित,
बलरामजी के घर देखा सुभद्रा को,
अर्जुन और सुभद्रा दोनों सुन्दर थे,
दोनों ही चाहने लगे एक-दूजे को ।

कैसे सुभद्रा का हरण कर ले जाएँ,
अर्जुन करने लगे चिन्तन इसका,
एक दिन जब सुभद्रा दुर्ग से निकलीं,
अर्जुन ने हरण कर लिया उनका ।

देवकी-वसुदेव और कृष्ण की सहमती थी,
चल पड़े अर्जुन सुभद्रा को ले रथ पर,
यह समाचार सुन बहुत बिगड़े बलरामजी,
पर स्वजनों ने मना लिया समझाकर ।

[74] सुभद्रा-श्रीकृष्ण और बलरामजी की बहन और अर्जुन के मामा की पुत्री ।

इसके बाद प्रसन्न हो उन्होंने,
वर-वधु के लिए भेजे बहुत उपहार,
इस तरह समस्त यदुवंशियों ने,
इस विवाह को कर लिया स्वीकार ।

विदेह की राजधानी मिथिला में थे,
एक ब्राह्मण श्रुतदेव, भक्त कृष्ण के,
भगवद्भक्ति से ही पूर्ण मनोरथ,
परम शान्त, ज्ञानी और विरक्त थे ।

प्रारब्धवश जीवन निर्वाह भर के लिए,
प्रतिदिन मिल जाती थी सामग्री उन्हें,
वे उतने भर से ही संतुष्ट रहते थे,
तत्पर लगे रहते धर्मपालन करने में ।

उस देश के राजा बहुलाश्व भी,
ब्राह्मण के समान ही थे भक्तिमान,
अहंकार लेशमात्र भी ना था उनमें,
दोनों को प्यारे थे श्रीकृष्ण भगवान ।

एक बार भगवान श्रीकृष्ण ने प्रसन्न हो,
किया द्वारका से विदेह की ओर प्रस्थान,
साथ में नारद, व्यास आदि ऋषि-मुनि थे,
मार्ग में प्रजा को दे रहे अपना दर्शन-दान ।

स्वागत-सत्कार हुआ विदेह में सबका,
बहुलाश्व और श्रुतदेव गिर पड़े चरणों में,
दोनों ने एक साथ किया सबको निमन्त्रित,
जिसे स्वीकार कर लिया भगवान कृष्ण ने ।

एक ही समय पृथक-पृथक रूप से,
भगवान श्रीकृष्ण दोनों के घर पधारे,
मालूम न हुआ यह उन दोनों को,
कि भगवान कहीं और भी जा रहे ।

विधिपूर्वक पूजन किया बहुलाश्व ने,
चरण पखार चरणोंदक धरा सिर पर,
फिर भोजन कर जब सब तृप्त हो गए,
बहुलाश्व बोले भगवान की स्तुति कर ।

सब जीवों के आत्मा, साक्षी, स्वयंप्रकाश,
दर्शन दे कृतार्थ किया हमें आपने,
'मेरा अनन्य भक्त मुझे सर्वाधिक प्रिय है',
यह अपना वचन सत्य किया है आपने ।

अचिन्त्य ऐश्वर्य और माधुरी की निधि,
सच्चिदानन्दस्वरूप श्यामब्रह्म हैं आप,
मुनियों सहित कुछ दिन यहाँ रह कर,
इस निमिवंश को पवित्र कीजिए आप ।

उधर श्रुतदेव ने भी भगवान श्रीकृष्ण का,
मुनियों के सहित किया आदर-सत्कार,
आनन्दातिरेक से मतवाले हो गए वो,
चरणोंदक सिर धरा उनके चरण पखार ।

तुलसी आदि अनायास प्राप्त पूजा सामग्री,
और सत्त्वगुण वर्धक अन्न से की आराधना,
जब सब लोग आतिथ्य स्वीकार कर चुके,
चरणों से लग श्रुतदेव करने लगे प्रार्थना ।

प्रकृति और जीवों से परे पुरुषोत्तम,
मुझे आज ही दर्शन दिए हों, ऐसा नहीं,
सृष्टि में आत्मसत्ता के रूप में प्रवेश कर,
सब से तभी से मिले हुए हैं आप ही ।

जैसे स्वप्नदृष्टा अपना संसार रच लेता,
वैसे ही माया से रच लिया संसार आपने,
और अब इसमें प्रवेश कर आप स्वयं ही,
प्रकाशित हो रहे भिन्न-भिन्न रूपों में ।

आपका अर्चन-वन्दन और लीलाकथा श्रवण,
हृदय शुद्ध कर प्रकाशित कर देता आपको,
जो कर लेते अन्त:करण को सद्गुणसम्पन्न,
अग्राह्य होने पर भी पाते निकट आपको ।

जान लिया जिन्होंने आत्मतत्त्व को,
उनके आत्मा के रूप में स्थित हैं आप,
और जो मान बैठे शरीर को ही आत्मा,
उनके लिए मृत्यु के रूप में हैं आप ।

आपकी माया वश में रहती आपके,
पर ढक रखा उसने औरों की दृष्टि को,
जीवों के सभी क्लेश मिट जाते,
जब आपके दर्शन मिल जाते उनको ।

तब भगवान श्रुतदेव का हाथ पकड़ बोले,
ये मुनि पधारे हैं अनुग्रह करने तुम पर,
लोगों और लोकों को पवित्र करते हुए,
मेरे साथ ये ऋषि-मुनि रहे हैं विचर ।

देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो,
पवित्र करते लोगों को बहुत दिनों में,
परन्तु संत पुरुष अपनी दृष्टि मात्र से,
पवित्र कर देते लोगों को क्षण में ।

सब प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ हैं ब्राह्मण,
वे सर्ववेदमय हैं और मैं हूँ सर्वदेवमय,
तपस्वी और भक्त हों तो बात ही क्या,
अपने चतुर्भुजरूप से भी प्रिय अतिशय ।

इसे न जानकर दुर्बुद्धि मनुष्य,
मूर्ति आदि में ही पूज्यबुद्धि रखते,
और गुणों में दोष निकालकर वे,
जगद्गुरु ब्राह्मण का तिरस्कार करते ।

ब्रह्मर्षियों को मेरा ही स्वरूप समझ,
पूरी श्रद्धा से करो तुम पूजन इनका,
इससे अनायास कर लोगे मेरा पूजन,
और कोई साधन नहीं मेरी पूजा का ।

श्रुतदेव ने भगवान और ऋषियों की,
एकात्मभाव से तब करी आराधना,
भगवतस्वरूप को प्राप्त हो गए वो,
बहुलाश्व की भी सफल हुई साधना ।

जैसे भक्त करते भगवान की भक्ति,
वैसे ही भगवान भी करते भक्तों की,
कुछ दिन मिथिला में रुके भगवान,
फिर लौट गए अपनी द्वारका नगरी ।

वेदस्तुति

बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणों की,
सृष्टि करी भगवान ने जीवों के लिए,
ताकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का,
अर्जन कर सके इनसे वो अपने लिए[75] ।

सगुण का प्रतिपादन करने पर भी,
श्रुतियों का तात्पर्य है निर्गुण ब्रह्म,
सनकादि ने धारण किये उपनिषद,
जिनमें प्रतिपादित हुआ निर्गुण ब्रह्म ।

बद्रिकाश्रम मे भगवान नारायण से,
एक समय जा पूछा देवर्षि नारद ने,
श्रुतियों का विषय गुण है फिर कैसे,
निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन होता उनमें ?

भगवान नारायण बोले प्राचीन काल में,
ब्रह्मसत्र हुआ ब्रह्मा के मानस पुत्रो[76] में,
उस समय तुम वहाँ उपस्थित नहीं थे,
यही प्रश्न विचारा गया उस ब्रह्मसत्र में ।

चारों भाइयों में सनन्दन बने वक्ता,
और श्रोता बनकर बैठ गए भाई तीनों,
सनन्दन बोले, जैसे सम्राट जगाए जाते,
प्रलयान्त में श्रुतियाँ जगाती परमेश्वर को ।

[75] प्राणों के द्वारा जीवन-धारण, श्रवणादि इन्द्रियों द्वारा महावाक्य अदि का श्रवण, मन द्वारा मनन और बुद्धि द्वारा निश्चय करने पर श्रुतियों के तात्पर्य निर्गुण स्वरूप का साक्षात्कार हो सकता है ।

[76] जनलोक में वहाँ रहने वाले ब्रह्मा के मांस पुत्रों सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार आदि में ब्रह्मविषयक विचार का प्रवचन ।

श्रुतियाँ कहती हैं, आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं,
प्रभो ! कोई जीत नहीं सकता है आपको,
स्वभाव से ही समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण आप,
नष्ट कीजिए अपनी बन्धनकारी माया को ।

सत्त्व आदि गुण ग्रहण किए माया ने,
जीवों के सहज रूप को ढकने के लिए,
सब शक्तियों को जगाने वाले हैं आप,
माया को मिटाना सम्भव आपके ही लिए ।

असमर्थ आपका स्वरूपत: वर्णन करने में,
लेकिन जब कर लेते सगुण रूप धारण,
या जब आप लीला या क्रीड़ा करते हैं,
तब यतिकिंचिंत कर पाते आपका वर्णन ।

करते हम देवताओं का भी वर्णन,
पर ब्रह्मस्वरूप अनुभव करते जगत को,
बच रहते आप जब जगत नहीं रहता,
उसकी उत्पत्ति, प्रलय के आश्रय आप हो ।

कोई विकार नहीं, एकरस निर्विकार आप,
उत्पत्ति और प्रलय की बस आपमें प्रतीति होती,
जैसे घट आदि का वर्णन, मिट्टी का वर्णन,
वैसे ही देवताओं के रूप में स्तुति आपकी होती ।

ईंट, पत्थर या काठ पर रखा हो पाँव,
होगा तो वह पाँव रखा पृथ्वी पर ही,
वैसे ही हमारे द्वारा वर्णित सब नाम, रूप,
वह नाम और रूप है सब आपका ही ।

उलझ जाते लोग आपकी त्रिगुणी माया में,
पर आप हैं नचाने वाले उस माया को,
इसलिए आपकी लीलाकथा में गोता लगा,
मनस्वी धो-बहा देते अपने पाप-ताप को ।

आत्मज्ञान द्वारा मिटा दिए हैं,
राग-द्वेष और जरा-मरण जिन्होंने,
प्राप्त कर ली जीवन की सफलता,
भजन-सेवन द्वारा उन महापुरुषों ने ।

व्यर्थ है उन लोगों का जीना,
जो करते नहीं आपका आज्ञापालन,
उनके शरीर में श्वास का चलना,
लुहार की धौंकनी में हवा का चलन ।

महतत्त्व, अहंकार आदि सब कार्य करते,
आपकी आज्ञा और अनुग्रह के बल पर,
पञ्चकोषों[77] में होने वाली 'मैं-मैं' की स्फूर्ति,
और उनका अस्तित्व भी आप के बल पर ।

लेकिन समस्त कार्य-कारणों से परे,
और सबसे असंग हैं, हे प्रभो ! आप,
नेति-नेति से सबका निषेध हो जाता,
एकमात्र शेष रह जाते, हे प्रभु ! आप ।

हे प्रभु ! आपकी प्राप्ति के लिए,
अनेकों मार्ग माने हैं ऋषियों ने,
स्थूल दृष्टिवाले अग्निरूप से करते,
आपकी उपासना मणिपूरक चक्र में ।

अरुण्वंश के ऋषि उपासना करते,
परम सूक्ष्मस्वरूप दहर ब्रह्म की,
सब नाड़ियों के उद्गम स्थान हृदय में,
जहाँ से सुषुम्ना नाड़ी निकलती ।

हृदय से ही आपको प्राप्त करने का,
अति श्रेष्ठ मार्ग है सुषुम्ना नाड़ी,
हृदय से निकल ब्रह्मरन्ध्र तक गयी,
ज्योतिर्मय मार्ग है सुषुम्ना नाड़ी ।

प्राप्त कर लेता जो यह ज्योतिर्मय मार्ग,
और बढ़ता ऊपर की ओर इस मार्ग से,
पड़ता नहीं फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर में,
और मुक्त हो जाता है भव-बन्धन से ।

[77] पञ्चकोष-अन्नमय, प्रणम्य, मनोमय, विज्ञानमय और आन्नदमाय कोष ।

देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि,
सभी योनियाँ बनायी हैं आपने,
सदा-सर्वत्र सब रूपों में आप हैं ही,
सो प्रतीत होते प्रवेश किये हुए उनमें ।

विविध आकृतियों का अनुकरण कर,
कहीं उत्तम, कहीं अधम प्रतीत होते आप,
जैसे लकड़ियों और कर्मों के अनुरूप,
उत्तम-अधम और कम-ज्यादा लगती आग ।

लौकिक और पारलौकिक कर्मों से,
इसलिए संत पुरुष विरक्त हो जाते,
सत्य-असत्य, आत्मा-अनात्मा पहचान,
जगत के झूठे रूपों में नहीं फँसते ।

जिन शरीरों में रहता है जीव,
निर्मित होते वे उसके कर्मों द्वारा ही,
और वह कार्य-कारणरूप से रहित है,
क्योंकि उन आवरणों की सत्ता ही नहीं ।

समस्त शक्तियों को धारण करने वाले,
आपका ही स्वरूप, उसे तत्त्वज्ञानी कहते,
और आपका ही स्वरूप होने के कारण,
अंश न होने पर भी उसे अंश कहते ।

जीव के वास्तविक स्वरूप पर विचार कर,
विज्ञ उपासना करते आपके चरणकमलों की,
क्योंकि समस्त वैदिक कर्मों के समर्पण स्थान,
और मोक्षस्वरूप हैं आपके चरणकमल ही ।

अत्यन्त कठिन है परमात्मतत्त्व का ज्ञान,
इसके लिए ही आप अवतार ग्रहण करते,
उन्हीं लीलाकथाओं के अमृत-सागर में डूब,
आपके भक्त मोक्ष छोड़, मग्न हो रहते ।

यह शरीर आपकी सेवा का साधन हो,
जब आपके पथ का अनुरागी हो जाता,
तब हितैषी, सुहृद और प्रिय व्यक्ति सा,
यह आत्मा आचरण करने लग जाता ।

सच्चे हितैषी, प्रियतम और आत्मा जीव के,
आप सदा-सर्वदा उसे अपनाने को तत्पर,
वो अपनी ही आत्मा का हनन करते हैं जो,
रम जाते जगत में, आपके चरण छोडकर ।

योगाभ्यास द्वारा हृदय में उपासना कर,
पाते हैं योगी आपके जिस पद को,
आपसे वैरभाव रखने वाले शत्रु भी,
आपका स्मरण कर पा जाते हैं उसीको ।

किसी भी भाव से आपका स्मरण,
करता है कल्याण स्मरण करने वाले का,
क्योंकि आप स्वभाव से ही हैं समदर्शी,
भेद नहीं आपमें मित्र और शत्रु का ।

भगवन ! आप अनादि और अनन्त हैं,
और बहुत ही सीमित जीवों का ज्ञान,
जब आप सबको समेटकर सो जाते हैं,
तब कैसे कोई आपको सकता है जान ?

ना आकाश आदि स्थूल जगत रहता,
ना ही महतत्त्वादि सूक्ष्म जग्रत रहता,
सब शास्त्र भी आपमें ही समा जाते,
काल का भी तब अस्तित्व नहीं रहता ।

कुछ मानते उत्पत्ति असत जगत की,
कुछ दुखों के नाश को कहते मुक्ति,
कुछ लोग आत्मा को अनेक मानते,
कुछ कहते कर्मों से प्राप्त लोक की ।

संदेह नहीं, यह सब है भ्रम-मूलक,
वे आरोप[78] कर ही ऐसी बातें करते,
यह सब भेदभाव अज्ञान से ही होता,
और आप अज्ञान से हैं सर्वथा परे ।

[78] परमात्मा में आरोपित करना या कल्पना करना ।

यह त्रिगुणात्मक जगत कल्पना मन की,
और पुरुष[79] भी है कल्पनामात्र ही,
लेकिन आपकी सत्ता से प्रतीत हो रहा,
यह सत्य-सा, असत होने पर भी ।

इसलिए भोक्ता, भोग्य और इन्द्रियाँ,[80]
आत्मज्ञानी आत्मरूप से सत्य मानते,
जैसे सोने से बने कड़े और कुण्डल,
हैं तो सब-के-सब सोना ही असल में ।

ठीक इसी प्रकार यह सारा जगत ही,
आत्मा में ही कल्पित, व्याप्त उसीसे,
इसलिए आत्मरूप ही मानते हैं,
आत्मज्ञानी या तत्त्वज्ञानी पुरुष इसे ।

जो लोग यह समझते हैं कि आप हैं,
आधार और अधिष्ठान समस्त प्राणियों के,
सर्वात्म भाव से आपका भजन-सेवन कर,
मृत्यु को तुच्छ समझ, उसे जीत लेते ।

आपसे विमुख, कितने भी विद्वान हों,
कर्मबन्धन में आप उन्हें बाँध लेते,
और जिनका आपसे प्रेम का सम्बन्ध,
वे तो दूसरों को भी पवित्र कर देते ।

मन, बुद्धि और इन्द्रिय आदि करण,
और चिन्तन, कर्म आदि से रहित आप,
फिर भी अन्त:करण और ब्राह्य करणों की,
समस्त शक्तियों से सम्पन्न हैं आप ।

स्वत:सिद्ध, ज्ञानवान, और स्वयंप्रकाश,
आवश्यकता नहीं इन्द्रियों की आपको,
देवता लोगों से पूजा ग्रहण करते,
पर वे माया के अधीन, पूजते आपको ।

वे इस प्रकार आपकी पूजा करते,
कि आपकी आज्ञा का वे पालन करते,
आपने नियुक्त किया उन्हें जिसके लिए,
आपसे भयभीत वही कार्य करते रहते ।

हे मायातीत ! अपने संकल्प मात्र से,
माया के साथ आप जब क्रीड़ा करते,
सूक्ष्म शरीर, सुप्त कर्म-संस्कार जगा,
प्राणियों और जगत की उत्पत्ति करते ।

आकाश के समान सबमें सम होने से,
ना कोई आपका अपना, ना ही पराया,
मन और वाणी की गति नहीं आपमें,
ना ही कोई प्रपंच, ना ही कोई माया ।

जो कहते जान लिया उन्होंने आपको,
जाना उन्होंने बस बुद्धि के विषय को,
मति के द्वारा जितना जाना जाता,
मतियों की भिन्नता कारण उसमें तो ।

प्रकृति और पुरुष दोनों ही अजन्मा हैं,
उनका वास्तविक स्वरूप तो हैं आप,
जीव आपसे ही उत्पन्न होता है लेकिन,
परिणाम द्वारा जीव नहीं बनते आप ।

अपने आप में बुलबुला कुछ नहीं,
उसकी सृष्टि होती जल और वायु से,
प्रकृति, पुरुष में एक दूसरे की कल्पना,
जीव विविध नाम और गुण पाते इससे ।

लेकिन अन्त में उपाधि रहित होकर,
सब-के-सब समा जाते हैं एक आप में,
उनकी पृथक स्वतन्त्रता, सर्वव्यापकता आदि,
मानी जाती सत्य को ना जानने से ।

भटक रहे सब जीव माया से भ्रम में,
पृथक मान आवागमन के फेर में फँसे,
बुद्धिमान पुरुष इस भ्रम को समझ,
आपकी शरण में आते भक्तिभाव से ।

---

[79] पुरुष-परमात्मा और जगत से पृथक पुरुष (जीव) ।
[80] इन्द्रियाँ-भोक्ता और भोग्य का सम्बन्ध सिद्ध करने वाली इन्द्रियाँ ।

इन्द्रियों और प्राणों को तो किया वश में,
पर ली ना जिन्होंने शरण गुरु चरणों की,
समुद्र में बिना कर्णधार की नाव पर सवार,
व्यापारियों जैसी ही दशा होती है उनकी ।

आनन्दस्वरूप और शरणागतों की आत्मा,
आपके रहते क्या प्रयोजन अन्य किसी से,
आपको छोड़ जो उलझे रहते माया में,
भला वास्तव में वे सुख पा सकते कैसे ?

जो सर्वथा सब प्रकार के घमण्ड से दूर,
वे संतपुरुष हैं वास्तव में सच्चे तीर्थस्थान,
समस्त पाप-ताप को वो नष्ट कर देते,
क्योंकि उनका हृदय आपका निवासस्थान ।

सत् से बना जगत भी सत् है,
यह बात युक्तिसंगत नहीं लगती[81],
जिस प्रकार रस्सी में साँप देखना,
अविद्या के कारण होती यह प्रतीति ।

अविद्या और सत् के संयोग से ही,
समझना चाहिए उत्पत्ति इस जगत की,
जैसे रस्सी में साँप की प्रतीति मिथ्या है,
नाम-रूपात्मक जगत भी मिथ्या वैसे ही ।

यदि केवल व्यवहार की सिद्धि के लिए,
जगत की सत्ता अभीष्ट, तो आपत्ति नहीं,
क्योंकि यह एक व्यवहारिक सत्य है,
लेकिन यह सत्य परमार्थिक सत्य नहीं ।

यह भ्रम माने हुए काल के कारण,
चला आ रहा है अनादि काल से,
और अज्ञानीजन बिना विचार किए,
मानते आ रहे इसे अन्धपरम्परा से ।

कर्मफल को सत्य बताने वाली श्रुतियाँ,
केवल उन्हीं लोगों को डालती भ्रम में,
जो नहीं जानते कि उनकी प्रशंसा कर,
लगाना चाहती वे उन्हें उन कर्मों में ।

ना उत्पत्ति के पहले, ना प्रलय के बाद,
बस बीच में ही मिथ्या प्रकट हो रहा,
इसलिए ही हम श्रुतियाँ वर्णन करतीं,
उपमाओं के द्वार इस जगत का ।

माया से मोहित हो, अविद्या अपनाने से,
जीव के स्वरूपभूत आनन्दादि गुण ढक जाते,
गुणजन्य वृतियों इन्द्रियों और देहों में फँस,
देहों की जन्म-मृत्यु, अपनी समझने लग जाते ।

लेकिन प्रभु ! जैसे साँप केंचुल से असम्बद्ध,
आप भी माया-अविद्या से सम्बन्ध नही रखते,
अलग छोड़े रहते हैं उन्हें आप सदा-सर्वदा,
सो आपके ऐश्वर्य सदा आप ही के साथ रहते ।

अपरिमित और अनन्त हैं आपके ऐश्वर्य आदि,
आबद्ध नहीं देश-काल आदि की सीमा से,
लेकिन हृदय में रहने पर भी दुर्लभ हैं आप,
विषय-वासनाएँ जब तक उखड़ें ना जड़ से ।

आपके वास्तविक स्वरूप को जानने वाला,
पाप-पुण्य, कर्म-फल, दुःख आदि नहीं भोगता,
मुक्त हो जाता भोगी और भोक्ता भाव से,
कोई बन्धन उसके लिए शेष रह नहीं जाता ।

आपके स्वरूप से अनभिज्ञ भी यदि,
लीलाकथा सुन बैठा लेता आपको हृदय में,
तो आपका वह प्रेमीभक्त भी मुक्त हो,
मोक्षस्वरूप गति आपको पा जाता अन्त में ।

ब्रह्मा और इन्द्र आदि की तो बात ही क्या,
आप भी नहीं जानते आदि और अन्त अपना,
क्योंकि जब आपका आदि और अन्त ही नहीं,
भला कैसे कोई उसकी कर सकता है कल्पना ?

[81] जैसे पिता और पुत्र में कार्य-कारण-भाव होने पर भी वे एक-दूसरे से भिन्न हैं, वैसे ही कार्य-कारण की एकता सर्वत्र एक-सी नहीं देखी जाती ।

आकाश में उड़ते असंख्यों धुल-कणों से,
असंख्य अपरिमित ब्रह्माण्ड घूम रहे आपमें,
निषेध करते-करते अन्त में हम श्रुतियाँ भी,
सफल होतीं अपनी सत्ता को खोकर आपमें ।

यह उपदेश सुना भगवान नारायण ने कहा,
सनकादि ऋषि इसे सुन कृत-कृत्य हो गए,
समस्त वेद, पुराण और उपनिषदों का निचोड़,
इसे सुन नारदजी आप भी धन्य हो गए ।

जैसे गाढ़ निद्रा सुषुप्ति में मग्न पुरुष,
छोड़ देता है अपने शरीर का अनुसंधान,
वैसे ही जीव माया से मुक्त हो जाता,
पाकर माया और प्रकृति से अतीत भगवान ।

शिवजी का संकटमोचन

भगवान शिव ने त्याग रखे सब भोग,
पर उनके उपासक धन-सम्पन्न हो जाते,
और भगवान विष्णु लक्ष्मीपति हैं,
उनके उपासक प्राय: भोगों को नही पाते ।

त्याग और भोग की दृष्टि से देखा जाय,
तो वे दोनों हैं विपरीत स्वभाव वाले,
पर उनके स्वभाव के विपरीत फल पाते,
उन दोनों की उपासना करने वाले ।

शिवजी युक्त रहते सदा अपनी शक्ति से,
गुणों से युक्त अधिष्ठाता अहंकार के,
लेकिन श्रीहरि पुरुषोत्तम, गुणों से रहित,
प्रकृति से परे, साक्षी अन्त:करणों के ।

युधिष्ठिर के अश्वमेघ यज्ञ के बाद,
उनके पूछने पर श्रीकृष्ण ने कहा,
जिस पर मैं अपनी कृपा करता हूँ,
धीरे-धीरे छीन लेता धन-सम्पदा ।

जब वह निर्धन हो जाता है तब,
सगे-सम्बन्धी भी कर लेते किनारा,
धीरे-धीरे मैं उसे विरक्त कर देता,
मेरे प्रेमी भक्तों का तब लेता सहारा ।

तब उसपर करता हूँ अहैतुक कृपा,
जिससे प्राप्ति हो जाती परब्रह्म की,
इस प्रकार बहुत कठिन है मेरी आराधना,
सो लोग साधना करते अन्य देवों की ।

ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों ही,
समर्थ हैं शाप और वरदान देने में,
ब्रह्मा और महादेव शीघ्र प्रसन्न हो जाते,
और देर ना लगाते शाप भी देने में ।

इस बारे में एक प्राचीन कथा है,
कैसे भगवान शंकर पड़ गए संकट में,
और कैसे भगवान विष्णु ने उबारा,
उस घोर स्वनिर्मित संकट से उन्हें ।

वृकासुर नामक शकुनि का पुत्र था,
आराधना करने लगा वह शंकरजी की,
केदारक्षेत्र में अग्नि को उनका मुख मान,
आहुति देने लगा वो अपने अंगों की ।

सातवें दिन कुल्हाड़े से मस्तक काट,
सोचा उसकी आहुति देने की उसने,
लेकिन रोक लिया ऐसा करने से,
अग्नि से प्रकट हो शंकरजी ने ।

शंकरजी के द्वारा स्पर्श करते ही,
वृकासुर के अंग पूर्ववत हो गए,
बोले, मैं हो जाता जल से ही संतुष्ट,
क्यों स्वयं को पीड़ा देने लग गए ?

बोले, मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ,
जो चाहो मुझसे तुम वर माँग लो,
माँगा, जिसके सिर पर रख दूँ हाथ,
तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जाय वो ।

यह वर पा वह उच्छश्रृंखल हो गया,
सोचा क्यों न हर लूँ पार्वती ही को,
और उनके वर की परीक्षा लेने के लिए,
शंकरजी पर ही आजमाने चला वर को ।

अपने ही दिए वरदान से भयभीत हो,
काँपते हुए भागने लगे शंकरजी वहाँ से,
और वृकासुर को अपना पीछे आते देख,
सब दिशाओं में शंकरजी लगे दौड़ने ।

जब कोई उनकी सहायता कर ना सका,
शंकरजी चले प्रकाशमय बैकुण्ठ की ओर,
उनको बड़े संकट में देख भगवान नारायण,
ब्रह्मचारी बनकर चले वृकासुर की ओर ।

मूँज की मेखला, कुश, काला मृगचर्म,
दण्ड और रुद्राक्ष माला किए धारण,
अंग-प्रत्यंग से ऐसी ज्योति निकल रही,
मानों निकल रहीं हो आग की किरण ।

झुककर प्रणाम किया वृकासुर को उन्होंने,
बोले, दिख पड़ रहे हैं कुछ थके से आप,
लगता है कहीं दूर से चले आ रहे हैं,
तनिक सा विश्राम तो कर लीजिए आप ।

यह शरीर ही सारे सुखों की जड़ है,
सारी कामनाएँ पूरी होती हैं इसी से,
मेरे सुनने योग्य कुछ हो तो बताइए,
लोग काम बना लेते सहायको से ।

अमृत बरस रहा था शब्दों से उनके,
वृकासुर ने थकावट दूर की ठहरकर,
तपस्या और वर के विषय में बता,
बोला, आ रहा शंकर के पीछे दौड़कर ।

भगवन बोले यदि ऐसी बात है तो,
हम उसकी बात का विशवास नहीं करते,
दक्ष प्रजापति के शाप के कारण उसे तो,
पिशाचभाव प्राप्त हुआ, क्या नहीं जानते ?

दानवराज ! इतने बड़े होकर भी आप,
कैसे ऐसे ही किसी पर विशवास कर लेते,
यदि आप उसको जगद्गुरु मानते ही हैं तो,
क्यों नहीं सिर पर हाथ रख जाँच लेते ?

दानवशिरोमणि ! यदि यह बात असत्य निकले,
तो मार डालिए आप उस असत्यवादी को,
ऐसी अद्भुत और मीठी बात कही उन्होंने,
कि मोहित कर दिया उन्होंने वृकासुर को ।

उस दुर्बुद्धि ने सब कुछ भूलकर,
रख लिया हाथ अपने ही सिर पर,
तुरन्त ही सिर फट मर गया वो,
जैसे गिर गयी हो बिजली उस पर ।

तब भगवान ने शंकरजी से कहा,
यह दुष्ट मर गया अपने ही पापों से,
भला महापुरुषों का अपराध कर,
कौन ऐसा है जो कुशलता से रह सके ?

भृगुजी द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा; ब्राह्मण के मरे बालकों को लौटाना

एक बार सरस्वती नदी के तट पर,
वाद-विवाद चला ऋषि-मुनियों में,
कि त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश,
कौन बड़ा है इन तीनों देवों में ?

उन तीनों की परीक्षा लेने को भेजा,
ब्रह्माजी के पुत्र भृगुजी को उन्होंने,
जब ब्रह्माजी के पास गए भृगुजी,
ब्रह्माजी को प्रणाम किया ना उन्होंने ।

ना नमस्कार किया, ना स्तुति उनकी,
सो अतीव क्रोध से भर उठे ब्रह्माजी,
लेकिन अपने ही पुत्र भृगुजी को देख,
विवेकबुद्धि से शांत हो गए ब्रह्माजी ।

वहाँ से महर्षि भृगु कैलास में गए,
शिवजी ने आलिंगन करना चाहा उनका,
मर्यादा का उल्लंघन करते हो, उनसे कह,
भृगुजी ने तिरस्कार कर दिया उनका ।

क्रोध से तिलमिला कर शिवजी ने,
मार डालना चाहा उन्हें त्रिशूल उठाकर,
पर सतीजी ने रोक लिया शिवजी को,
शान्त किया उन्हें, चरणों में गिरकर ।

अब महर्षि भृगुजी गए बैकुण्ठ लोक में,
विष्णुजी लेटे थे शय्या पर बड़ी शान्ति से,
भृगुजी ने मारी वक्षःस्थल पर एक लात,
तुरन्त प्रणाम किया उन्होंने, उठ शय्या से ।

बोले, आपके आगमन का पता न था,
इसीसे मैं आपकी अगवानी कर न सका,
आपके चरणकमल अत्यन्त कोमल हैं,
और सहलाने लगे उन्हें, माँग कर क्षमा ।

फिर बोले, आपके चरणों का जल, महर्ष !
वो तो बनाने वाला है तीर्थों को भी तीर्थ,
आज उनसे बैकुण्ठ लोक को और मुझे,
और लोकपालों को भी कीजिए पवित्र ।

मेरे सारे पाप धुल गए हैं आज,
आपके इन चरणकमलों के छूने से,
लक्ष्मी का एकमात्र आश्रय हो गया मैं,
वे सदा बसेंगी मेरे ह्रदय में अब से ।

भाव-विभोर हो गए भृगुजी यह सुन,
भक्ति के उद्रेक से गला भर आया,
वहाँ से लौट, मुनियों के पास आ गए,
और जो कुछ घटा था सब कह सुनाया ।

सन्देह दूर हो गया सब ऋषि-मुनियों का,
भगवान विष्णु की सर्वोपरिता गए मान,
प्राप्त होता है सब भगवान विष्णु से ही,
धर्म, यश, वैराग्य, ऐश्वर्य और ज्ञान ।

द्वारकापुरी में किसी ब्राह्मण के घर,
एक बालक जन्मा और तुरन्त मर गया,
वह ब्राह्मण बालक का मृत शरीर ले,
राजमहल गया और द्वार पर रख दिया ।

बोला, बालक की असमय मृत्यु होती,
उस नगरी के राजा के कर्मदोष से,
हिंसापरायण, दुःशील, अजितेन्द्रिय राजा,
ऐसे राजा की प्रजा द्वारा सेवा करने से ।

बच्चे पैदा होते गए और मरते गए,
आठ बच्चे इस प्रकार मर गए उसके,
नवें बच्चे के वक्त अर्जुन बैठे थे वहाँ,
बोले क्या द्वारका में क्षत्रिय नहीं रहते ?

लगता है यदुवंशी बैठे हैं यज्ञ में,
जिनके राज्य में दुखी हैं ब्राह्मण,
मैं आपकी सन्तान की रक्षा करूँगा,
वरना आग में कूद दे दूँगा जीवन ।

कृष्ण-बलराम आदि भी जब बचा न सके,
ब्राह्मण बोला, तुम बचा सकोगे कैसे,
सचमुच यह मूर्खतापूर्ण बात है तुम्हारी,
तुम्हारी इस बात को मैं मानूँ कैसे ?

श्रीकृष्ण, बलराम या प्रद्युम्न नहीं,
गाण्डीवधारी अर्जुन हूँ, कहा अर्जुन ने,
मेरा बल-पराक्रम जानते नहीं हैं आप,
मृत्यु से भी लड़ जाऊँगा इसके लिए मैं ।

अर्जुन द्वारा ऐसे विश्वास दिलाने से,
उनका गुणगान करता चला गया वो,
जब अगले प्रसव का समय निकट आया,
ब्राह्मण लेने चला गया अर्जुन को ।

आचमन और शंकरजी को नमस्कार कर,
अर्जुन चले अपने दिव्य अस्त्रों को लेकर,
बाणों का पिंजड़ा सा बना दिया सूतिकागृह,
स्वयं पहरा दे रहे गाण्डीव हाथ में लेकर ।

तभी जन्म लिया ब्राह्मण के बालक ने,
बार-बार रो रहा था वो प्रसवगृह में,
परन्तु सब के देखते-देखते ही बालक,
सशरीर अन्तर्धान हो गया नभ में ।

अब वह ब्राह्मण श्रीकृष्ण के सामने ही,
विलाप कर, निंदा करने लगा अर्जुन की,
तभी योगबल से अर्जुन ने यमपुरी आदि,
कई लोकों में तलाश की उस बालक की ।

लेकिन मिला नहीं वह बालक कहीं भी,
तो सोचने लगे अर्जुन अग्नि में प्रवेश की,
श्रीकृष्ण बोले, अपना तिरस्कार न करो,
ब्राह्मण के सभी बालक दिखा देता हूँ अभी ।

अपने दिव्य रथ पर बैठा अर्जुन को,
भगवान श्रीक्रष्ण चले पश्चिम दिशा में,
अनेक पर्वत, द्वीप और समुद्र लाँघ,
प्रवेश किया उन्होंने घोर अन्धकार में ।

इतना घोर अन्धकार था उस जगह पर,
कि उनके रथ के घोड़े भी हो गए भ्रमित,
तब भगवान श्रीक्रष्ण ने दी आज्ञा चक्र को,
कि वे आगे-आगे चले करें मार्ग प्रकाशित ।

भगवान से ही उपजे उस अन्धकार को,
पार कर वे पहुँचे अंतिम सीमा पर,
जहाँ जगमगा रही थी परम ज्योति,
अर्जुन के नेत्र बंद हो गए चौंधिया कर ।

दिव्य जलराशि में फिर प्रवेश किया,
तेज आँधी से तरंगे उठ रहीं थी उसमें,
बड़ी भली वे तरंगे मालूम हो रहीं थी,
एक बड़ा महल बना था उनके बीच में ।

मणियों के सहस्त्र-सहस्त्र खम्बे,
शोभा बढ़ा रहे थे चमक-चमककर,
चहुँ ओर फ़ैल रही उज्ज्वल ज्योति,
भगवान शेषजी विराज रहे वहीँ पर ।

अत्यन्त भयानक और अद्भुत शरीर,
सहस्त्रों फण, मणियाँ जड़ी जिन पर,
कैलास के समान श्वेतवर्ण शरीर उनका,
विष्णुजी लेटे हुए उनकी शय्या पर ।

सर्वव्यापक, परम-पुरुषोत्तम भगवान,
सजल मेघ वर्ण सी कान्ति उनकी,
अत्यन्त सुन्दर पीत वस्त्र धारण किए,
आभा विलक्षण कमल-सदृश नेत्रों की ।

बहुमूल्य मणियों से जटित मुकुट,
और मकराकृत कुण्डल कानों में,
लंबी-लंबी सुन्दर आठ भुजाएँ हैं,
कौस्तुभ मणि धारण किए गले में ।

श्रीवत्स का चिन्ह वक्ष:स्थल पर,
और वनमाला घुटनों तक लटक रही,
पार्षद, आयुध, शक्तियाँ और ऋद्धियाँ,
सब[82] श्रीभगवान की सेवा कर रहीं ।

प्रणाम किया भगवान श्रीकृष्ण ने,
अपने ही स्वरूप श्रीअनन्त भगवान को,
फिर अर्जुन ने भी किया प्रणाम,
और हाथ जोड़कर खड़े हो गए वो ।

मुस्कुराकर और गम्भीर वाणी से तब,
कहा लोकपालों के स्वामी भूमा पुरुष ने,
मैंने ही तुम दोनों को देखने के लिए,
ब्राह्मण-बालकों को मँगाया पास अपने ।

धर्म की रक्षा हेतु मेरी कलाओं के साथ,
अवतार ग्रहण किया है तुम दोनों ने,
पृथ्वी के भाररूप दैत्यों का संहार कर,
शीघ्र-से-शीघ्र लौट आओ मेरे पास में ।

[82] नन्द, सुनन्द आदि पार्षद; चक्र-सुदर्शन आदि मूर्तिमान आयुध; पुष्टि, श्री, कीर्ति और अजा-चारों शक्तियाँ एवं सम्पूर्ण ऋद्धियाँ ।

ऋषिवर नर और नारायण हो तुम,
यद्दपि पूर्णकाम और सर्वश्रेष्ठ हो,
जगत की स्थिति और लोकसंग्रह हेतु,
फिर भी धर्म का आचरण करो ।

आदेश सुन भूमा पुरुष भगवान का,
स्वीकार कर उसे, उन्हें नमस्कार किया,
आनन्द सहित ब्राह्मण बालकों को लेकर,
उसी मार्ग से द्वारका में प्रवेश किया ।

ब्राह्मण के बालक हो गए थे
बड़े-बड़े अपनी आयु के अनुसार,
सौंप दिया उन्हें उनके पिता को,
अर्जुन की प्रतिज्ञा के अनुसार ।

भगवान विष्णु के उस परमधाम को देख,
हो रहा था बहुत आश्चर्य अर्जुन को,
जान लिया जीवों में जो बल-पौरुष है,
भगवान श्रीकृष्ण से ही मिलता उनको ।

भगवान ने और भी अनेक लीलाएँ की,
लोकदृष्टि में संसार का भी भोग किया,
आदर्श महापुरुषों सा आचरण करते,
समस्त प्रजावर्गों का मनोरथ पूरा किया ।

मार डाले बहुत से अधर्मी राजा स्वयं ने,
बहुतों को अर्जुन आदि से मरवा डाला,
इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर आदि से,
पृथ्वी पर धर्म-मर्यादा की करी स्थापना ।

भगवान कृष्ण का लीला-विहार

अद्भुत वैभव सम्पन्न थी द्वारका नगरी,
नगरी स्वयं लक्ष्मीपति भगवान कृष्ण की,
सुन्दर पुरवासी, सब सम्पत्तियों से भरपूर,
शत्रुओं द्वारा अजेय, खान सभी सुखों की ।

सोलह हजार पत्नियों संग रहते,
सबके जीवन सर्वस्व, हृदयेश्वर श्रीकृष्ण,
रानियों का चित्त उन्हीं में लगा रहता,
उन्हीं के प्रेम में सदा रहतीं वे मग्न ।

इसी प्रेम से परमपद पा लिया,
पति मान सेवा करी श्रीकृष्ण की,
हर समय श्रीकृष्ण हृदय में रहते,
श्रीकृष्णमय वे रानियाँ स्वयं हो गयीं ।

आठ पटरानियाँ, अठारह महारथी पुत्र,
बहुत विशाल था परिवार श्रीकृष्ण का,
ब्राह्मणों के शाप से जन्में मूसल से,
समय आने पर नाश हुआ यदुवंश का ।

प्राचीन काल में देवासुर संग्राम में,
मारे गए थे भयंकर असुर बहुत से,
वे ही फिर जन्में मनुष्य बनकर,
और सताने लगे लोगों को घमण्ड से ।

उन दुष्टों का दमन करने के लिए,
देवताओं ने लिया यदुवंश में अवतार,
एक-सौ-एक थी उनके कुलों की संख्या,
श्रीकृष्ण को स्वामी किया स्वीकार ।

उनके चित्त लगे रहते थे कृष्ण में,
करते रहते थे वे उनका ही चिन्तन,
अपने शत्रुओं का भी उद्धार कर देते,
भक्तों को तो स्वयं को दे देते श्रीकृष्ण ।

धर्म-मर्यादा की रक्षा के लिए भगवान ने,
दिव्य लीला शरीर को ग्रहण किया,
और उस लीला शरीर के अनुरूप उन्होंने,
अनेकों अद्भुत चरित्रों का अभिनय किया ।

उनकी एक-एक लीला कथा का स्मरण,
काट डालने वाला है कर्म-बन्धनों को,
जो उनके चरणों की सेवा करना चाहे,
सुनना चाहिए उसे उनकी लीलाओं को ।

उनकी कथाओं का श्रवण, चिन्तन,
पहुँचा देती भगवान के परमधाम में,
यद्दपि काल से पार पाना कठिन है,
पर चलती नहीं काल की परमधाम में ।

इसलिए सब प्रपंच छोड़ मनुष्य की,
एकमात्र भगवान श्रीकृष्ण में ही गति हो,
हे परम पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण !
आपकी सदा-सर्वदा जय हो, जय हो ।

हे भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण !
हमारी भक्ति आपमें सदा अटल हो,
हे दीनानाथ ! दया करो दीनों पर,
आपकी सदा-सर्वदा जय हो, जय हो ।

उपसंहार

पृथ्वी का सम्पूर्ण भार उतरने में,
बस एक यदुकुल ही रह गया बाकी,
उस समय बड़े-बड़े ऋषि-मुनि सब,
पिण्डारक क्षेत्र[83] के हो रहे थे निवासी ।

एक दिन यदुवंश के कुछ उद्दण्ड कुमार,
खेलते-खेलते जा निकले पास उनके,
जाम्बवतीनन्दन साम्ब को स्त्री वेश में सजा,
प्रश्न पूछने ले गए वे पास उनके ।

बनावटी नम्रता से प्रणाम कर उनको,
कहने लगे यह सुन्दरी है गर्भवती,
चाहती है आपसे एक प्रश्न पूछना,
लेकिन स्वयं पूछने में सकुचाती ।

अमोघ, अबाध है आप लोगों का ज्ञान,
इसे पुत्र पाने की है लालसा बड़ी,
अब प्रसव का समय निकट आ रहा,
इसे पुत्र जन्मेगा या जन्मेगी पुत्री ?

जब उन कुमारों ने यों धोखा देना चाहा,
प्रेरित हो ऋषि-मुनियों ने कहा क्रोध से,
बोले, मूर्खों यह ऐसा मूसल पैदा करेगी,
होगा नाश तुम्हारे पूरे कुल का जिससे ।

बहुत डर गए वे बालक यह सुनकर,
पेट खोलकर देखा तो मिला मूसल,
पछताने लगे वे यह क्या कर डाला,
लाकर भरी सभा में रख दिया मूसल ।

कह सुनाया सब राजा उग्रसेन को,
मूसल को देख सब पड़े चिंता में,
चूरा-चूरा करा बचे हुए टुकड़े सहित,
सारा-का-सारा फेंक दिया समुद्र में ।

कोई सलाह ना ली उन्होंने कृष्ण से,
शायद ऐसी ही प्रेरणा थी उनकी,
यदुवंशी निश्चिन्त हुए इस उपाय से,
सोचने लगे कि टल गयी विपत्ति ।

वह टुकड़ा निगल गयी एक मछली,
और चूरा बह-बहकर आ लगा किनारे,
थोड़े ही दिनों में मिट्टी में मिलकर,
एरक[84] बन उग आया समुद्र किनारे ।

पकड़ी गयी वह मछली मछुआरो द्वारा
निकला उसके पेट से लौहे का टुकड़ा,
जरा नामक व्याध ने उनसे लेकर,
बाण की नोक में लगा लिया वह टुकड़ा ।

[83] द्वारका के समीप ही ।

[84] एरक-बिना गाँठ की एक तरह की कठोर घास ।

तब ब्रह्माजी और देवतागण आदि आए,
स्तुति कर भगवान की वे लगे कहने,
हम लोगों का काम पूर्ण कर दिया,
उचित लगे तो परमधाम पधारिए अपने ।

प्रभु बोले, मैं कर चुका निश्चय,
पृथ्वी का भार हो गया है हल्का,
लेकिन एक काम अभी बाकी है,
यदुवंशियों से सम्बन्ध है इसका ।

उन्मत्त हो रहे ये धन और बल से,
तुल रहे सारी पृथ्वी को ग्रस लेने पर,
रोक रखा है इन्हें अभी तक मैंने,
वरना रख देंगे ये सबका संहार कर ।

ब्राह्मणों के शाप से इस वंश का,
आरम्भ हो चुका है नष्ट होना,
इसका अन्त हो जाने पर होगा,
मेरा अपने धाम में वापस लौटना ।

लौट गए जब वापस ब्रह्माजी आदि,
बड़े-बड़े अपशकुन होने लगे द्वारका में,
प्रभासक्षेत्र की महिमा बखान श्रीकृष्ण,
बोले वहीं चलें शाप का समाधान खोजने ।

निश्चय कर यदुवंशी तैयार हो गए,
पर उद्धवजी गए मिलने श्रीकृष्ण से,
बोले, हे देवाधिदेवों के भी अधीश्वर !
आप चाहते तो बचा सकते थे शाप से ।

समझ गया इससे यदुवंश का संहार कर,
आप परित्याग कर देंगे इस लोक का,
मुझे भी साथ अपने लोक ले चलिए,
आपका वियोग जरा भी सह नहीं सकता ।

बोले श्रीकृष्ण, तुमने जो कहा,
करना चाहता हूँ मैं वैसा ही,
ब्रह्मा, शंकर, इन्द्रादि लोकपाल,
वे भी चाहते हैं मैं करूँ ऐसा ही ।

ब्राह्मणों का शाप-ग्रसित यह यदुवंश,
पारस्परिक फूट और युद्ध से नष्ट होगा,
आज के सातवें दिन इस द्वारका को,
समुद्र अपने पानी में डुबाकर लील लेगा ।

मेरे मृत्यलोक के परित्याग करते ही,
इसका सारा मंगल नष्ट हो जाएगा,
द्वापर का यह अंतिम चरण है,
थोड़े समय में कलियुग शुरू हो जाएगा ।

जब मैं पृथ्वी का त्याग कर दूँ,
तब तुम इस पृथ्वी पर मत रहना,
अधिकाँश लोग अधर्म में प्रवृत होंगे,
तुम अनन्य प्रेम से मुझमें मग्न रहना ।

जो कुछ सोचा-कहा जाता इस जग में,
और इन्द्रियों से जो अनुभव किया जाता,
सपने सा मन का विलास और नाशवान है,
इसलिए मायामात्र और मिथ्या कहा जाता ।

अशान्त और असंयत है मन जिसका,
उसीको अनेक वस्तुएँ पड़ती हैं दिखाई,
वास्तव में यह चित्त का ही भ्रम है,
गुण और दोष तभी पड़ते हैं दिखाई ।

कर्म, अकर्म और विकर्मरूप भेद,
उसीके लिए प्रतिपादन हुआ इनका,
इसलिए सभी इन्द्रियों को वश में कर,
निग्रह करो चित्त की समस्त वृत्तियों का ।

फिर अनुभव करो कि सारा जगत,
फैला हुआ है अपने ही आत्मा में,
अभिन्न है और कोई भेद नहीं है,
आत्मा और मुझ सर्वात्म ब्रह्म में ।

जब वेदों के तात्पर्य-निश्चयरूप ज्ञान,
और सम्पन्न हो अनुभवरूप विज्ञान से,
आत्मा के अनुभव में आनन्दमग्न रहोगे,
हो जाओगे आत्मा सभी तन-धारियों के ।

श्रुतियों के तात्पर्य के यथार्थ ज्ञान को,
प्राप्त कर, साक्षात्कार जिसने कर लिया हो,
और हो गया हो अटल निश्चय से सम्पन्न,
सभी जीवों का हितैषी और सुहृद होता है वो ।

समस्त प्रतीयमान विश्व को वह,
मेरा ही स्वरूप-आत्मरूप देखता,
इसलिए जन्म-मृत्यु के चक्कर में,
उसे फिर कभी नहीं पड़ना पड़ता ।

तरह-तरह से समझाया उद्धव को उन्होंने,
फिर सत्संग की महिमा का किया बखान,
जगत की सभी आसक्तियाँ नष्ट कर देता,
मुझे वश में करने का साधन सबसे महान ।

फिर बतलाई अपनी भक्ति की महिमा,
बोले, मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता,
योग, जप-तप, ज्ञान आदि से उतना नहीं,
जितना अनन्य भक्ति से मैं द्रवित होता ।

तब भक्ति का वरदान माँग उद्धवजी,
प्रभु की आज्ञा पाकर चले बदरीवन को,
स्त्री, बच्चों, बूढों को शंखोद्वार क्षेत्र भेज,
यदुवीरों सहित चले श्रीकृष्ण प्रभासक्षेत्र को ।

शान्तिपाठ और सब मंगलकृत्य किए,
परन्तु दैव ने हर ली बुद्धि उनकी,
करने लगे मैरेयक नामक मदिरा का पान,
जो भ्रष्ट कर देती है बुद्धि सबकी ।

पीने में मीठी, परिणाम में विनाशक,
उन्मत्त हो गए सब पीकर उसे,
लड़ने झगड़ने लगे बातों-बातों में,
मूढ़ हो रहे थे वे प्रभु की माया से ।

क्रोध में भर शस्त्रास्त्र उठा लिए,
धनुष-बाण, तलवार और भाले आदि,
रथों, हाथी, घोड़ों आदि पर सवार हो,
भिड़ गए आपस में जैसे जंगली हाथी ।

एक तरफ तो श्रीकृष्ण की माया,
ऊपर से मदिरा ने बनाया अंधा,
भाई, भाई से, मित्र, मित्र से लड़,
एक-दूसरे का काटने लग गए गला ।

जब धनुष टूट, बाण समाप्त हो गए,
नष्ट हो गए बाकी अस्त्र-शस्त्र भी,
तब वही एरक घास उखाड़ वहाँ से,
एक-दूसरे पर वार करने लगे उससे ही ।

यदुवंशियों के हाथ में आते ही,
बन गयी वह वज्र सी कठोर मुद्गर,
करने लगे उससे विपक्षियों पर प्रहार,
एक-दूसरे पर बड़े रोष में भर कर ।

जब भगवान श्रीकृष्ण ने मना किया तो,
उनको, बलराम को भी, शत्रु लगे समझने,
दौड़ पड़े यदुवंशी मारने को उन्हें भी,
वे भी दौड़े एरक घास को ले उन्हें मारने ।

बाँसों की रगड़ से उत्पन्न दावानल,
भस्म कर देती उन्हीं बाँसों को जैसे,
ब्रह्मशाप से ग्रस्त और माया से मोहित,
स्पर्धा से जन्में क्रोध ने भी किया वैसे ।

जब भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि,
समस्त यदुवंशियों का हो चुका संहार,
तब यह सोच साँस ली सन्तोष की,
कि उतर गया पृथ्वी का बचा-खुचा भार ।

बलरामजी वहीं समुद्र तट पर बैठकर,
एकाग्र चित्त से परमात्म चिन्तन करते,
आत्मस्वरूप में स्थिर कर अपना आत्मा,
मानव देह को छोड़ अपने लोक को चले ।

जब श्रीकृष्ण ने देखा बड़े भाई बलराम,
शरीर त्याग लीन हो गए परमपद में,
तब वे पीपल के पेड़ के तले जाकर,
चुपचाप धरती पर बैठ गए अकेले में ।

भगवान श्रीकृष्ण ने उस समय,
कर रखा था चतुर्भुज रूप धारण,
और धूम से रहित अग्नि के समान,
दिशाओं में बिखरा रहे थे प्रकाश-किरण ।

बैठे थे दाहिनी जाँघ पर बाँया चरण रख,
अपने दिव्य रूप में सुशोभित श्रीकृष्ण,
रक्तकमल सा चमक रहा था तलवा,
उनके आयुध थे उनकी सेवा में संलग्न ।

बना ली थी जरा नामक बहेलिये ने,
बाण की गाँसी[85] उस मूसल के टुकड़े से,
हिरन का मुख समझ भगवान का तलवा,
बींध दिया उसे उसने अपने उसी बाण से ।

पास आ चतुर्भुज पुरुष को देख,
गिर पड़ा बहेलिया उनके चरणों पर,
माँगने लगा वह उनसे अपराध की क्षमा,
उनकी शरणागतवत्सलता का वास्ता देकर ।

बोला, परम यशस्वी और निर्विकार आप,
आपके स्मरण से ही नष्ट हो जाता अज्ञान,
मैंने स्वयं कर दिया आपका ही अनिष्ट,
मुझे अभी-अभी मार डालिए, हे कृपानिधान !

भगवान श्रीकृष्ण बोले, तू डर मत,
तूने मेरे ही मन का किया है काम,
जा, मेरी आज्ञा से स्वर्ग में निवास कर,
जो बड़े पुण्यवानों के लिए है स्थान ।

जब भगवान ने उसे ऐसी आज्ञा दी,
प्रणाम किया उसने और परिक्रमा की,
तभी वहाँ पर दिव्य विमान आ गया,
उस पर चढ़ जरा ने स्वर्ग की यात्रा की ।

तुलसी माला की गंध सूंघते हुए दारुक,
आ पहुँचा पास भगवान श्रीकृष्ण के,
देखा पीपल के नीचे उन्हें आसन लगाए,
और सेवा में उपस्थित आयुध उनके ।

कहने लगा, आपके दर्शन न पाकर,
मेरे चारों ओर छा गया है अँधेरा,
अब दिशाएँ मुझे सूझती नहीं हैं,
ना ही हृदय में शान्ति का बसेरा ।

अभी दारुक यह सब कह ही रहा था,
कि अपनी पताका और घोड़ो के साथ,
चला गया गरुडध्वज रथ आकाश में,
पीछे-पीछे दिव्य आयुध भी चले साथ ।

आश्चर्य की सीमा ना रही दारुक की,
तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा उससे,
द्वारका जा बलरामजी की परमगति,
और मेरे स्वधामगमन का कहो उनसे ।

कहना कि परिवारसहित तुम लोगों को,
रहना नहीं चाहिए अब द्वारका में,
मेरे बिना समुद्र उस नगरी को डुबा देगा,
मेरे माता-पिता संग जाओ इन्द्रप्रस्थ में ।

दारुक के द्वारका के लिए चले जाने पर,
लोकपाल, प्रजापति आदि आए वहाँ पर,
करने लगे भगवान की लीलाओं का गान,
अपने-अपने विमानों से पुष्पों की वर्षा कर ।

अपने आत्मा को स्थित कर स्वरूप में,
कमल-सम नेत्र बंद कर लिए श्रीकृष्ण ने,
भक्तों के ध्यान-धारणा का आधार जान,
परमधाम को चले विग्रह के साथ अपने ।

भगवान के पीछे-पीछे इस लोक से,
सत्य, धैर्य, धर्म आदि भी चले गए,
मन और वाणी से परे भगवान की गति,
उन्हें जाते बड़े-बड़े देवता भी देख न सके ।

[85] गाँसी-बाण का अग्रभाग; बाण का नुकीला भाग ।

ब्रह्माजी और भगवान शंकर आदि,
भगवान की यह परमयोगमयी गति देख,
विस्मय के साथ उनकी प्रशंसा करते,
कर गए अपने-अपने लोकों में प्रवेश ।

जब दारुक ने द्वारका पहुँच सब बताया,
सब लोग व्याकुल हो पहुँचे उस स्थान,
देवकी, वसुदेव, रोहिणी ने प्राण तज दिए,
रानियों और स्त्रियों ने किया अग्निस्नान ।

अर्जुन पहले तो बहुत व्याकुल हो गए,
फिर संभले गीता का उपदेश स्मरण कर,
सबका विधिपूर्वक उन्होंने संस्कार करवाया,
समुद्र ने द्वारका डुबो दी सीमा लाँघकर ।

भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन,
और उनके अद्भुत चरित्र का श्रवण-कथन,
जो भी मनुष्य प्रेम सहित करता-कराता,
उसके सब पाप-ताप का हो जाता निवारण ।

हे परम भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण !
आपकी जय हो ! जय हो ! जय हो !
और आपके चरणों में हमारी भक्ती में,
नित्य निरन्तर, क्षण-प्रतिक्षण वृद्धि हो !

ॐ..... ॐ .....ॐ

लेखक की अन्य पुस्तकें:

प्रेम प्रवर्तक सूफी/ ISBN 817646422-8
नक्शबंदी सूफी संत/ISBN 9789386223982
बाइबिल सार-जन जन की भाषा में/ISBN 9788189341-61-0
श्रीमद्भगवद्गीता-जन जन की भाषा में
कुरआन सार-जन जन की भाषा में
रामचरितमानस-जन जन की भाषा में
मेरे तो राधा राम
सूफी संत मत/ISBN 817646584-4
101 सूफी कहानियां/ISBN 9789387587687
Yogis in Silence/ISBN 817646199-7
Sufism Beyond Religion/ISBN 817646411-2
Science and Philosophy of Spirituality/ISBN 817646545-3
Saints and Mahatmas of India/ ISBN 935050059-0
Autobiography of a Sufi/ ISBN 817646744-8
The Path of Sufis and Saints/ ISBN 9789350502716
The Golden Chain of Naqshbandi Sufis/ISBN 9789387587144
A Sufi in Police Uniform/ISBN 9789391145149